स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 13 ISSUE-01 (JANUARY 2021) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

अतिथि सम्पादक :
नरेन्द्र सोनी
शोधार्थी, पी–एच.डी. पत्रकारिता,
गुरु जम्भेश्वर वि.वि., हिसार

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सह आचार्य एवं शोध निर्देशक (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES
RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
कमरा नं. 175, लघु सचिवालय,
भिवानी–127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

उपकार्यालय :
सहदेव शास्त्री
शिवपुरी, नरवाना रोड़,
जीन्द (हरियाणा)
मो. 09416253826

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रित इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

☐ शोध पत्र 2000 शब्दों (4–5 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

☐ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

☐ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी, हरियाणा होगा।

☐ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट : सहयोग/सदस्यता राशि के ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ सम्पादकीय कार्यालय को भेजकर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	**नरेन्द्र सोनी**	7
2.	दयानंद सरस्वती के शैक्षिक दर्शन, सामाजिक, राजनीतिक विचार और हिंदी भाषा	**निधि 'मानसिंह'**	8
3.	आर्यसमाज के आलोक में संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के विकास का पर्यालोचनात्मक विश्लेषण	**डॉ. आशुतोष पारीक**	13
4.	स्वामी दयानंद सरस्वती का हिन्दी साहित्य में योगदान	**डॉ. बासुदेव प्रजापति**	14
5.	महर्षि दयानंद सरस्वती की जीवन यात्रा और हिन्दी	**दिलीप सिंह राजपूत**	17
6.	हिन्दी के प्रसार में आर्यसमाज का योगदान	**डॉ. अंगदकुमार सिंह**	20
7.	महर्षि दयानंद और हिन्दी	**डॉ. कुमार पुष्कर सिंह**	23
8.	महर्षि दयानंद सरस्वती और आर्य समाज का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान	**डॉ. बाबू लाल सैनी**	27
9.	आर्य समाज और हिंदी	**प्रा. डॉ. गजानन चव्हाण**	33
10.	वैदिक संस्कृत साहित्य का आर्य समाज और हिंदी साहित्य पर प्रभाव	**गोविन्द कुमार 'धारीवाल'**	35
11.	राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में भोजपुरी की भूमिका	**रजनीश त्रिपाठी**	39
12.	आर्य समाज और स्वामी दयानन्द	**के. कविता**	42
13.	आर्य समाज का हिंदी के प्रसार में योगदान	**डॉ. कुमारी उर्वशी**	46
14.	महर्षि दयानंद और हिंदी	**डॉ. किरण तिवारी**	53
15.	हिन्दी के प्रचार-प्रसार में स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान	**डॉ. मोहिनी दहिया**	54
16.	हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महर्षि दयानंद सरस्वती का योगदान	**वसावा महेशभाई नानसिंगभाई**	57
17.	हिंदी पत्रकारिता के विकास में आर्य समाज का योगदान	**नीलम धारीवाल**	59
18.	महर्षि दयानन्द सरस्वती और हिन्दी	**डॉ. निर्मल कौशिक**	63
19.	महर्षि दयानंद और हिंदी	**पूनम कुमारी**	67
20.	हिंदी आंदोलन	**पोपट भावराव बिरारी**	70
21.	कथा साहित्य पर आर्य समाज का प्रभाव	**प्रीति बाला आलोक**	74

22.	महर्षि दयानंद सरस्वती और आर्य समाज का हिंदी के प्रचार प्रसार में योगदान	**पूर्णिमा कुमारी**	77
23.	महर्षि दयानन्द सरस्वती और हिन्दी	**रजनी रजक**	81
24.	नवजागरण काल और स्वामी दयानन्द का नारी सुधार में योगदान	**रोहिणी तिवारी**	85
25.	महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का हिन्दी में योगदान	**संतोष कुमारी**	90
26.	हिन्दी भाषा के उत्थान में महर्षि दयानन्द सरस्वती का योगदान	**डॉ. सुबोध कुमार**	93
27.	महर्षि दयानंद सरस्वती और हिन्दी	**डॉ. विजय महादेव गाडे**	96
28.	गुरुकुल	**अभय प्रताप**	99
29.	वर्तमान में गुरुकुल शिक्षा पद्धति की महत्ता	**रवि कुमार**	102
30.	आर्य समाज : स्वदेशीयता का पुनर्जागरण	**डॉ. अतुला भास्कर**	104
31.	महर्षि दयानंद और हिंदी	**ज्योति कुमारी**	107
32.	महर्षि दयानंद सरस्वती का हिंदी साहित्य में योगदान	**सुप्रिया कुमारी**	110
33.	हिंदी साहित्य और पत्रकारिता पर महर्षि दयानंद सरस्वती का प्रभाव	**डॉ. जी. मोहन नायडू**	112
34.	भारतीय शिक्षा के विकास में स्वामी दयानंद सरस्वती का योगदान	**डॉ. महक**	116
35.	वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी भाषा का स्वरूप	**डॉ. मधु बाला सांखला**	118
36.	हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास	**डॉ. विजिता विजयन**	122
37.	हिन्दी और आर्य समाज	**शालिनी लोढी**	126
38.	महर्षि दयानन्द सरस्वती का हिंदी साहित्य में योगदान	**नीतू कुमारी**	131

सम्पादकीय–

स्वामी दयानंद जी के लिखे हुए ग्रंथों से दर्जनों महापुरुषों ने ज्ञान प्राप्त किया तथा लाखों–करोड़ों लोगों ने अच्छे मार्ग पर चलकर अपना जीवन परोपकार में लगा दिया। बालक मूल शंकर की शुद्ध चैतन्य से होकर स्वामी दयानंद सरस्वती बनते हुए महर्षि पद को पाना प्रेरणादायक पथ के समान है। स्वामी जी ने वेदों की शिक्षाओं को क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत किया। उनके द्वारा लिखित पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश वैदिक सिद्धांतों के साथ सच्चा न्याय करती है। इसलिए स्वामी दयानंद जी को राष्ट्र निर्माता संत भी कहा गया है।

शिवरात्रि जिसे लोग ऋषि बोधोत्सव के रूप में भी मनाते हैं हमें अपने कर्तव्यों का बोध कराती है। स्वामी जी ने योगानंद, ज्वालानंद, शिवानंद पुरी नामक योग विद्या के गुरुओं से योग की शिक्षा सीखी थी। प्रज्ञाचक्षु दंडी साधु गुरु विरजानंद अपने युग के विकट, विलक्षण और असाधारण महापुरुष थे। गुरु दक्षिणा के समय दंडी जी ने दयानंद से यह कठोर प्रतिज्ञा करवाई कि वह इस देश में पुनः विशुद्ध वैदिक धर्म को प्रतिस्थापित कर किंकर्तव्यविमूढ़ आर्यजाति को अपने पैरों पर खड़ा कर संसार में वैदिक ज्ञान निधि का प्रचार करने के लिए अपना सारा जीवन न्यौछावर कर दें। सन् 1867 ईस्वी में हरिद्वार के महाकुंभ के अवसर पर प्रख्यात 'पाखंडमर्दन पताका' फहराना उसी संकल्प का प्रतिफल था।

स्वामी जी ने वेदों का भाष्य जनवाणी हिंदी में करने का महान कार्य किया। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने अंग्रेजों की चाल को समझकर प्राचीन संस्कृत पठन–पाठन प्रणाली को पुनः संचालित करने का प्रयास किया। उनके बाद स्वामी श्रद्धानंद और स्वामी दर्शनानंद जैसे महापुरुषों ने संस्कृत भाषा के माध्यम से प्राचीन प्रणाली का पुनरुद्धार किया। गुरुकुल जैसे संस्थानों से ही वेद आदि शास्त्रों की सुरक्षा हुई। स्वामी जी ने वेद, धर्म, संस्कृति, शिक्षा, नारी उद्धार, शुद्धि एवं राष्ट्रीय एकता जैसे अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण एवं स्मरणीय योगदान दिया। उन्होंने जीवन में कभी भी गलत बातों के लिए समझौता नहीं किया। वह सत्य के पोषक थे। सत्य के लिए हंसते–हंसते जहर भी पी गए। स्वामी जी गृहस्थ को पंच यज्ञ के पालन का उपदेश देते थे। कहते थे ब्रह्मयज्ञ करने से विद्या, शिक्षा, धर्म–कर्म, सभ्यता आदि सद्गुणों की वृद्धि होती है। अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि और जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होता है और शुद्ध वायु के श्वास प्रश्वास, खानपान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होता है। इसलिए उसको देव यज्ञ कहते हैं क्योंकि वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर देता है। पितृ यज्ञ से जब माता–पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा की जाती है तो उस मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है और उसे सत्य असत्य का निर्णय कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके सुखी रहता है और कृतज्ञता का भाव बढ़ता है। बलिवैश्यदेव यज्ञ से प्राणी मात्र को अन्नादि देने से परोपकार की भावना बढ़ती है और अतिथि यज्ञों से सर्वत्र गृहस्थ को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने स्वयं गुजराती भाषी होते हुए भी हिंदी को अपने प्रचार की भाषा माना इसलिए बोहल शोध मंजूषा अंतरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल के संपादक श्री नरेश सिहाग जी भिवानी एवं शांतिधर्मी मासिक पत्रिका के संपादक श्री सहदेव समर्पित जी जींद ने विचार किया कि ऋषि को श्रद्धांजलि देते हुए हिंदी दिवस पर एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की जाए। इस संगोष्ठी में बौद्धिक जगत के विभिन्न विद्वानों ने भाग लिया। विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोधार्थियों, कॉलेजों के प्रोफेसरों ने अपने रिसर्च पेपर प्रस्तुत किए। उन्हीं को संकलित करती हुई यह पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है।

–नरेन्द्र सोनी
सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग
दयानंद कॉलेज, हिसार
पीएचडी शोधार्थी
गुरु जंभेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
हिसार, हरियाणा
9812787018
narendersoni24@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 8-12
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दयानंद सरस्वती के शैक्षिक दर्शन, सामाजिक, राजनीतिक विचार और हिंदी भाषा

निधि 'मानसिंह'

सार

स्वामी दयानंद एक महान शिक्षाविद् समाज सुधारक और एक सांस्कृतिक राष्ट्रवादी भी थे। दयानंद सरस्वती का सबसे बड़ा योगदान आर्य समाज की नींव थी जिसने शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में एक कांन्ति ला दी। स्वामी दयानंद सरस्वती उन सबसे महत्त्वपूर्ण सुधारकों और आध्यात्मिक बलों में से एक हैं जिन्हें भारत ने हाल के दिनों में जाना गया है। दयानंद सरस्वती के दर्शन को उनके तीन प्रसिद्ध योगदान ''सत्यार्थ प्रकाश'', ''वेद भाष्य भूमिका और वेद भाष्य" से जाना जा सकता है। इसके अलावा उनके द्वारा संपादित पत्रिका '' आर्य पत्रिका '' भी उनके विचार को दर्शाती है। आर्य समाज के महान संस्थापक स्वामी दयानंद आधुनिक भारत के राजनीतिक विचारों के इतिहास में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। जब भारत के पढ़े–लिखे युवक यूरोपीय सभ्यता के सतही पहलुओं की नकल कर रहे थे और भारतीय लोगों की प्रतिभा और संस्कृति पर कोई ध्यान दिए बिना इंग्लैंड की राजनीतिक संस्थाओं को भारत की धरती में रोपित करने के लिए आंदोलन कर रहे थे, वेपश्चिम के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वर्चस्व के खिलाफ थे। स्वामी दयानंद, भारत–आर्य संस्कृति और सभ्यता के सबसे बड़े प्रतिपादक साबित हुए। वह मूर्तिपूजा, जाति प्रथा कर्मकांड, भाग्यवाद, नशाखोरी के खिलाफ थे। वे दबे–कुचले वर्ग के उत्थान के लिए भी खड़े थे। वेद और हिंदुओं के वर्चस्व को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म का विरोध किया और संधी आंदोलन को हिंदू संप्रदाय के अन्य संप्रदायों को फिर से संगठित करने की वकालत की।

परिचय

स्वामी दयानंद एक महान शिक्षाविद, समाज सुधारक और एक सांस्कृतिक राष्ट्रवादी भी थे। दयानंद सरस्वती का सबसे बड़ा योगदान आर्य समाज की नींव थी जिसने शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में एक क्रान्ति ला दी। स्वामी दयानंद सरस्वती उन सबसे महत्त्वपूर्ण सुधारकों और आध्यात्मिक बलों में से एक हैं जिन्हें भारत ने हाल के दिनों में जाना है। दयानंद सरस्वती के व्यक्ति्व की प्रमुखता आर्य समाज आंदोलन की पौरुष क्षमता थी। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान सराहनीय है। डॉ . एस। राधाकृष्ण के अनुसार '' आधुनिक भारत के मदिरों में, जिन्होंने लोगों के आध्यात्मिक उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और देशभक्ति की आग को जलाया है।

जीवन रेखा

दयानंद का जन्म 1824 में काठियावाड़ के मोरवी राज्य के टंकारा में एक रूढ़िवादी ब्राम्हण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम करसमाजी तिवारी था जो एक शिव मंदिर में पुजारी के रूप में सेवा करते थे। दयानंद का बचपन का नाम मुलसी दयाराम या मूलशंकर था। अपने पिता की प्यार भरी देखभाल के तहत दयानंद ने बचपन से ही वेद, संस्कृति व्याकरण और संस्कृति भाषा में दक्षता हासिल कर ली थी। जीवन के चार साधारण दृश्यों के साक्षी होने के बाद, जैसे ही गौतम बुद्ध बने, एक घटना के बाद दयानंद की जीवन शैली बदल गई। जब वे चौदह वर्ष के थे तो उन्होंने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ शिवरात्रि के दिन उपवास रखा। रात में परिवार के अन्य सदस्य शिव की पूजा करने

के बाद सोने लगे लेकिन मूलजी सत रहे। उन्होंने भक्तों द्वारा शिव को अर्पित किए गए चूहे को खाते हुए देखा। इस घटना ने उन्हें यह सोचने के लिए प्रेरित किया कि शिव की मूर्ति वास्तविक भगवान नहीं हो सकती है। जब मूर्ति उसके लिए दी गई भेंट की रक्षा नहीं कर सकती थी, तो वह कभी भी पूरी दुनिया की रक्षा नहीं कर सकती थी। वह मूर्ति पूजा की निरर्थकता के बारे में आश्वस्त हो गया।

इस अनुभव ने उनकी अंतरात्मा को जगा दिया और दयानंद हिंदू धर्म की कटटरता के विरुद्ध हो गए। उनके पिता ने उनके स्वतंत्र दिमाग पर प्रतिबंध लगाने की द्रष्टि से विवाह के माध्यम से उन्हें पारिवारिक जीवन में शामिल करने की कोशिश की। दयानंद पारिवारिक जीवन के बंधन में बंधने को तैयार नहीं थे। 1861 में मथुरा में दयानंद स्वामी बृहजानंद के समीप में आए। यह संस्कृति उनके करियर में निर्णायक साधक हुई है। वे उनके शिष्य बन गए और प्राचीन धार्मिक साहित्य, विभिन्न पौराणिक पुस्तकों और संस्कृति व्याकरण का अध्ययन किया। मूलशंकर दयानंद सरस्वती बन गए और अपने गुरु वृजनंद के निर्देश से वेद का संदेश फैलाने और रूढ़िवादी हिंदू धर्म और गलत परंपराओं के खिलाफ लड़ने के लिए खुद को समर्पित कर दिया। हालांकि दयानंद का ब्रम्ह समाज से लगाव बहुत ज्यादा है वे वेदों की सर्वोच्चता और आत्मा के संचरण को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। अपने जीवन के मिशन को पूरा करने के लिए, उन्होंने 10 अप्रैल, 1875 को बॉम्बे में आर्य समाज की स्थापना की और विभिन्न स्थानों पर आर्य समाज की शाखाए स्थापित करने में अपना शेष जीवन व्यतीत किया। दयानंद के सुधारवादी उत्साह ने रूढ़िवादी हिंदुओं को परेशान किया। 30 अक्टूबर, 1883 को खाद्य विषाक्ता से उनकी मृत्यु हो गई।

शैक्षिक दर्शन

दयानंद सरस्वती के दर्शन को उनके तीन प्रसिद्ध योगदान ''सत्यार्थ प्रकाश'', ''वेद भाष्य भूमिका'' और वेद भाष्य से जाना जा सकता है। इसके अलावा उनके द्वारा संपादित पत्रिका ''आर्य पत्रिका भी उनके विचार को दर्शाती है। दयानंद ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' के दो अध्यायों (2 और 3) को शिशुओं और किशोरों के लिए शिक्षा के विषय के लिए समर्पित किया है। स्वामी दयानंद सरस्वती वर्तमान शिक्षा प्रणाली की भी आलोचना करते। यह अच्छे छात्र का उत्पादन नहीं कर रहा है। एक शिक्षित व्यक्ति को विनम्र होना चाहिए और अच्छे चरित्र को धारण करना चाहिए। उन्हें भाषण और दिमाग पर नियंत्रण रखना, उर्जावान होना, माता–पिता, शिक्षकों, बड़ों और अतिथि का सम्मान करना, नोबेल पथ का पालन करना और बुरे तरीकों से दूर रहना विद्वानों की संगती का आनंद लेना था। उन्होंने बुकलेट लिखी जिसका नाम है व्यवरभानुक्त। इस पुस्तक में उन्होंने एक पंडित विद्वान व्यक्तित्व के गुणों को चित्रित किया। स्वास्थ्य का विज्ञानय धनुर्वेद युद्ध का विज्ञान गंधर्ववेद सौंदर्य कला अर्थवेद, व्यावसायिक प्रशिक्षण, खगोल विज्ञान, बीजगणित, अंकगणित, भूविज्ञान अंतरिक्ष विज्ञान आदि। यह निश्चित रूप से व्यापक–आधारित मूलभूत शिक्षा की एक योजना थी। शिक्षा के माध्यम के रूप में, इस व्यक्ति्व के दोनों अलग–अलग विचार हैं दयानंद, ने भारत की भाषा में अपनी रचनाओं को लिखने के लिए चुना, जिसे उन्होंने आर्यभाषा कहा, ताकि उनका संदेश जनता तक पहुँच सके। भाषा, उसके लिए ज्ञान और स्वस्थ और धर्मिक सिद्धांतों के संचार का माध्यम था। उसी समय उन्होंने संस्कृत की वकालत भी की, लेकिन अंग्रेजी का समर्थन नहीं किया, जबकि स्वामीजी ने मातृभाषा पर बहुत जोर दिया।

जहाँ पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी में महारत हासिल करने के लिए अंग्रेजी आवश्यक है, वहीं संस्कृति हमारे विशाल भंडार की गहराई में प्रवेश करती है। निहितार्थ यह है कि यदि भाषा लोगों के एक छोटे वर्ग का विशेषाधिकार नहीं रहती है, तो सामाजिक एकता अपरिवर्तित आगे बढ़ेगी। उन्होंने हिंदू धर्म को इसके निहितार्थ से शुद्ध करने और इसे संस्कृति संगत आधार प्रदान करने का प्रयास किया।

एक समाज सुधारक के रूप में दयानंद पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित नहीं थे, लेकिन हिंदू धर्म के सच्चे प्रतीक थे। हिंदू धर्म की लड़ाई की भावना को मजबूत करने के लिए उनका द्रष्टिकोण सुधारवादी था। गुरुकुलों गर्ल्स गुरुकुलों और डीएवी कॉलेजों का दयानंद का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान था। वास्तव में स्वामी दयानंद के प्रयासों ने लोगों को पश्चिमी शिक्षा के चंगुल से मुक्त किया। दयानंद सरस्वती ने लोकतंत्र और राष्ट्रीय जागृति के विकास में भी योगदान दिया। ऐसा कहा जाता है कि राजनीतिक स्वतंत्रता दयानंद के पहले उदेश्यों में से एक थी। वास्तव में वह 'स्वराज'शब्द का प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान सराहनीय है। शिक्षा संस्थानों की स्थापना, विशेष रूप से भारत के उत्तरी और पूर्वी हिस्सों में, और हरिद्वारमें गुरुकुला अकादमी के गठन से हिंदू शिक्षा के प्राचीन आदर्श और परंपराओं को पुनर्जीवित करने के लिए कई समाजवादियों की बहुत ही सही उत्सुकता का प्रतीक है।

भारत में राजनीति में सबसे उन्नत विचारों के सबसे बड़े प्रतिपादक, स्वामी दयानंद, इंडो–आर्यन संस्कृति और सभ्यता के सबसे बड़े प्रेरित भी साबित हुए स्वामी जी अपने उदारवाद और राष्ट्रवाद के विचारों को ग्रामीण भारत के बहुत दिल तक ले जाने में सफल रहे। एक कुशल चिकित्सक की तरह उन्होंने उन विकृतियों का सही ढंग से निदान किया जिनसे भारत पीड़ित था और निर्धारित उपचार, जिसे ठीक से प्रशासित किया जा रहा था, उसे फिर से मजबूत, सशक्त और आत्मविश्वासी बना देगा। स्वामी दयानंद शिक्षा दर्शन, हम कह सकते हैं कि उनकी शिक्षा की योजना इसके रचनात्मक व्यापक चरित्र को प्रकाश में लाती है। उसे पता चलता है कि शिक्षा के माध्यम से ही समाज का उत्थान संभव है। मनुष्य की गरिमा की भावना तब बढ़ती है जब वह अपनी आंतरिक आत्मा के प्रति सचेत हो जाता है, और यही शिक्षा का उदेश्य है। उन्होंने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति के माध्यम से लाए गए नए मूल्यों के साथ भारत के पारंपरिक मूल्यों का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। यह नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से मनुष्य के परिवर्तन में है कि वह सभी सामाजिक बुराइयों का हल ढूँढता है। अपने स्वयं के दर्शन और संस्कृति के आधार पर शिक्षा प्राप्त करना, वह आज की सामाजिक और वैश्विक बीमारी के लिए सर्वोउतम उपचार दिखाता है। स्वामी दयानंद मूर्ति पूजा, जाति व्यवस्था, कर्मकांड, भाग्यवाद, अनैतिकता, दूल्हे की बिक्री आदि के खिलाफ थे। वे महिलाओं की मुक्ति और दबे–कुचले वर्ग के उत्थान के लिए भी खड़े थे। वेद और हिंदुओं के वर्चस्व को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म का विरोध किया और शुद्धिआंदोलन से हिंदू संप्रदाय के अन्य संप्रदायों को फिर से संगठित करने की वकालत की।

वास्तव में स्वामी दयानंद के प्रयासों ने लोगों को पश्चिमी शिक्षा के चंगुल से मुक्त किया। दयानंद सरस्वती ने लोकतंत्र और राष्ट्रीय जागृति के विकास में भी योगदान दिया। भारत में निर्मित स्वदेशी चीजों का उपयोग करने और विदेशी चीजों को त्यागने के लिए लोगों से आग्रह करने वाले वह पहले व्यक्ति थे। वह हिंदी को भारत की राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता देने वाले पहले व्यक्ति थे। दयानंद सरस्वती लोकतंत्र और स्वयं सरकार के प्रबल मतदाता थे। उन्होंने घोषणा की कि अच्छी सरकार स्व–सरकार का कोई विकल्प नहीं है। उन्होंने ग्रामीण भारत के उत्थान पर अत्यधिक ध्यान दिया। कई मायनों में दयानंद ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में महात्मा गाँधी की आशा की। उनका आर्य समाज लोकतांत्रिक चुनाव की प्रक्रिया के माध्यम से गठित किया गया था . स्वामी दयानंद ने एक संक्रमणकालीन चरण का प्रतिनिधित्व किया और शिक्षा के माध्यम से हिंदू समाज के पूर्ण ओवरहाल के अपने द्रष्टिकोण के साथ भविष्य के विकास का उद्घाटन किया। दयानंद ने 1875 में बंबई में पहला आर्य समाज और 1877 में लाहौर में एक और आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज दयानंद के दर्शन का संस्थागत प्रतीक था। समाज ने सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र में शानदार काम किया था। दयानंद–लाला हंसराज पंडित गुरु दया और लाला लाजपत राय के तीन उपहारित उतराधिकारियों के सराहनीय योगदान के कारण इस समाज की सफलता बहुत अधिक रही है। आर्य समाज का उदेश्य आर्य संस्कृति के विस्मृत मूल्यों को पुनर्प्राप्त और पुनर्जीवित करना था, भारतीयों को अतीत के महान आर्य आदर्श के साथ प्रेरित करने और आंतरिक और साथ ही बाहरी चुनौतियों का जवाब देकर भारत की महानता को फिर से स्थापित करना था। आर्य समाज के सदस्यों को '' दस सिद्धांतों '' द्वारा निर्देशित किया गया था, जिनमें से पहला वेद के महत्त्व का अध्ययन और एहसास करना था। अन्य सिद्धांत नैतिक और सदाचारी जीवन जीने पर जोर देते हैं। आर्य समाजवादी एक सुप्रीम बीइंग में विश्वास करते हैं, जो सर्वशक्तिमान, शाश्वत और सभी का निर्माता है। दयानंद अकेले भगवान में विश्वास करते थे और अंतर नहीं चाहते थे कि लोग पदार्थ के लिए छाया की गलती करें। आर्य समाजियों ने भी शिक्षा के विस्तार और निरक्षरता के उन्मूलन पर जोर दिया। वे कर्म और पुनर्जन्म में भी विश्वास करते थे जो दुनिया की भलाई के लिए है। आर्य समाजवादी मूर्तिपूजा, अनुष्ठान और पुरोहितवाद के विरोधी थे और विशेष रूप से प्रचलित जाति व्यवस्था और लोकप्रिय हिंदू धर्म के रूप में रूढ़िवादी ब्राम्हणों द्वारा प्रचारित थे। वे सामाजिक सुधार महिलाओं के अभिवर्धन और दबे–कुचले वर्ग और शिक्षा के प्रसार के प्रबल पक्षधर भी थे। आर्य समाजवादी सामाजिक समानता के लिए खड़े हुए और सामाजिक एकजुटता और समेकन का समर्थन किया। आर्य समाज का एक उदेश्य अन्य धर्मों के लिए हिंदुओं के धर्मांतरण को रोकना और उन हिंदुओं को फिर से संगठित करना था जिन्हें शुद्धि नामक एक शांति समारोह के माध्यम से इस्लाम और ईसाई धर्म जैसे अन्य धर्मों में परिवर्तित किया गया था . अपनी बहु–आयामी गतिविधियों के माध्यम से आर्य समाज आंदोलन ने रूढ़िवादी और रूढ़िवादी तत्वों की पकड़ को कमजोर कर दिया। इसने भारत में एक नई राष्ट्रीय चेतना के विकास में ब्रम्ह समाज के तर्कसंगत आंदोलन से अधिक योगदान दिया। भारत की सांस्कृतिक विरासत के अवलोकन के साथ समापन करने के लिए आर्य समाज दयानंद लेखन का बड़ा हिस्सा है, और यह उनके बहुमुखी व्यक्तित्व को दर्शाता है। इसमें संतों दार्शनिकों आयोजकों विद्वानों, विचारकों और विभिन्न गुणों

में परिलक्षित होने वाले सभी, शक्तिशाली तरीकों से, नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों के तेजस्वी पुत्र प्रकाश का प्रकाश है जो दयानंद ने मूर्त रूप दिया। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनका व्यक्तित्व मानवता पर अपना प्रभाव छोड़ देगा और एक बढ़ते हुए माप में भारत और दुनिया के धार्मिक इतिहास को प्रभावित करेगा। ईश्वर की रचना से प्रेम करना ईश्वर से प्रेम करना है '– इसलिए उन्होंने लोगों को सिखाया। लोगों को सुस्ती से जगाने के लिए, स्वामी जी ने पूरे भारत की यात्रा की, जहा भी वे गए, उन्होंने जाति व्यवस्था, मूर्ति पूजा, बाल विवाह और अन्य हानिकारक रीति–रिवाजों और परंपराओं की निंदा की।

उन्होंने उपदेश दिया कि महिलाओं को पुरुषों के साथ समान अधिकार होना चाहिए और जीवन में शुद्ध आचरण पर जोर देना चाहिए। स्वामी दयानंद की शिक्षाओं के साथ ही सच्चा हिंदू धर्म चमक उठा। हजारों युवा जो पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित थे और ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले थे, वे पीछे हट गए और वैदिक धर्म के अनुयायी बन गए। कुछ समय बाद जो हिंदू दूसरे धर्मों में चले गए थे, वे वापस आने की कामना करते हैं। स्वामी दयानंद ने ईसाई और मुस्लिमों को उनके लिए शुद्धि संस्कार देकर हिंदू धर्म में परिवर्तित कर दिया। तो यह कहा जा सकता है कि दयानंद भारतीयों के सामाजिक जीवन में एक क्रांति लेकर आए। उन्होंने महिलाओं की समानता पर विशेष जोर दिया। वे कहते थे कि भारत इतनी दयनीय स्थिति में गिर गया था क्योंकि महिलाओं को शिक्षा नहीं दी जाती थी बल्कि उन्हें अज्ञानता में रखा जाता था। जब तक महिलाएँ पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों की कैदी थीं, प्रगति एक दर्पण में गहनों के बंडल के प्रतिबिंब की तरह पहुँच से परे थी। उन्हें अपनी मुरादें पूरी कर लेनी चाहिए। सीता और सावित्री को इसलिए याद नहीं किया जाता क्योंकि वे पुरोहित के पीछे थीं, बल्कि उनकी शुद्धता और गुण के कारण थी।

दयानंद ने अ–छूत का विरोध किया। '' अन–टूचबिलिटी हमारे समाज का एक भयानक अभिशाप है। प्रत्येक जीवित व्यक्ति में एक आत्मा होती है, जो स्नेह की पात्र होती हैय प्रत्येक मनुष्य में एक आत्मा सम्मान के योग्य होती है। जो कोई भी इस मूल सिद्धांत को नहीं जानता है, वह वैदिक का सही अर्थ नहीं समझ सकता है। दयानंद पूरी तरह से आश्वस्त थे कि जब तक शिक्षा का प्रसार नहीं होगा तब तक राष्ट्र समृद्ध नहीं हो सकता। लेकिन हमारी शिक्षा प्रणाली पश्चिमी प्रकार की शिक्षा की मात्र कार्बन प्रति नहीं होनी चाहिए। माता–पिता को हर उस लड़के या लड़की को स्कूलभेजने के लिए बाध्य करने का कानून होना चाहिए जो आठ साल का है। हर लड़के और हर लड़की को गुरुकुलों में भेजा जाना चाहिए जहाँ वे अपने गुरुओं के साथ रहते हैं। लड़के और लड़कियों के लिए अलग–अलग गुरुकुल होने चाहिए। राजा के बेटे और किसान के बेटे को एक गुरुकुल में बराबर होना चाहिए। उन्हें सभी को समान रूप से काम करना चाहिए। गुरुकुलों को शहर और शहर से दूर स्थित होना चाहिए और शांत और शांति का आनंद लेना चाहिए। हमारी संस्कृति और वेद जैसी महान पुस्तकों को हमारे छात्रों से मिलवाना चाहिए।

आर्य समाज के 10 सिद्धांत ईश्वर सभी सच्चे ज्ञान और ज्ञान के माध्यम से ज्ञात सभी का कुशल कारण है। ईश्वर अस्तित्ववान बुद्धिमान और आनंदित है। वह निराकार, सर्वज्ञ, न्यायी, दयालु, अजन्मा, अनंत अपरिवर्तनीय आरंभ–कम, असमान सभी का समर्थन करने वाला, सर्वव्यापी, अमर निर्भय अनन्त और पवित्र है और सभी का निर्माता। वह अकेला ही पूजा करने के योग्य है। वेद सभी सच्चे ज्ञान के शास्त्र हैं। यह सभी आर्यों का सर्वोपरि कर्तव्य है कि वे उन्हें पढ़ें, उन्हें पढ़ाएँ, उन्हें पढ़ाएँ और उन्हें पढ़ा जा रहा है।

सत्य को स्वीकार करने और असत्य को त्यागने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। सभी व्यक्ति्यों को धर्म के अनुसार चलना चाहिए, जो कि सही और गलत रास्ता बताता है।

☐आर्य समाज का मुख्य उदेश्य दुनिया का भला करना है, अर्थात सभी के भौतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक अच्छे को बढ़ावा देना है। सभी के प्रति हमारे आचरण को प्रेम धार्मिकता और न्याय द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। हमें अविद्या (अज्ञान) को दूर करना चाहिए और विद्या (ज्ञान) को बढ़ावा देना चाहिए।

☐किसी को केवल उसकी भलाई को बढ़ावा देने से संतुष्ट नहीं करना चाहिए इसके विपरीत, किसी को सभी की भलाई को बढ़ावा देने में उसकी भलाई की तलाश करनी चाहिए।

☐सभी के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए गणना की गई समाज के नियमों का पालन करने के लिए प्रतिबंध के तहत स्वयं का संबंध रखना चाहिए जबकि व्यक्तिगत कल्याण के नियमों का पालन करना चाहिए।

राजनीतिक विचार

दयानंद के राजनीतिक विचार इस प्रकार हैंः स्वामी दयानंद राजनीति में एक आदर्शवादी थे और उन्होंने वेदों के

अध्ययन से अपनी प्रेरणा पाई। वेदों की व्याख्या करने का उनका तरीका स्याना और महिधर की पारंपरिक पद्धति से काफी अलग था। उन्होंने युग–युग की परंपरा के साथ शुरू किया कि वेदों में सत्य हैं जो उनके अनुप्रयोग में सार्वभौमिक हैं और जो तीव्र कारण और खोज विज्ञान की कसौटी पर खड़े हो सकते हैं। भारतीय परंपरा यह है कि चिकित्सा, गणित, संगीत, खगोल विज्ञान, राजनीति और अर्थशास्त्र जैसे विज्ञान भी वेदों पर आधारित हैं। राज्य का सिद्धांतः स्वामी दयानंद राज्य की उत्पति के बारे में कोई पूछताछ नहीं करते हैं। वह प्रशासन के सभी अंगों के साथ एक पूर्ण संगठित राज्य के चरित्र की चर्चा पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। उनके अनुसार, राज्य जीवन की उच्चतम वस्तुओं की प्राप्ति के लिए है। राज्य का उदेश्य केवल नागरिकों के धर्मनिरपेक्ष और भौतिक कल्याण को देखना नहीं है, बल्कि मानव जीवन की चार गुना वस्तुओं, अर्थात् धर्म, भौतिक समृद्धि, भोग और मोक्ष का वादा करना है।

निष्कर्ष

स्वामी दयानंद शैक्षिक और धार्मिक निकायों को स्वायलम्बता प्रदान करते हैं। आम तौर पर राजनीतिक या विधान सभा को शैक्षिक और धार्मिक सभाओं में आने वाले निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। लेकिन विधान सभा शैक्षिक और अविश्वसनीय मामलों में पूरी तरह से अलग नहीं हो सकती। कानून का नियमः स्वामी दयानंद ने अकेले कानून को वास्तविक राजा के रूप में रखा। वह सभी को वैदिक पाठ के शिक्षण को याद करने का आवान करता है, जो कहता है कि '' वास्तव में एकमात्र कानून ही सच्चा राजा है, बस कानून ही सच्चा धर्म है। '' वह राजा के उपर कानून को एक अवैयक्तिक कानून के उपर लिखे गए विधान में रखता हैः '' कानून अकेला सच्चा राज्यपाल है जो लोगों के बीच व्यवस्था बनाए रखता है। अकेले कानून ही उनके रक्षक हैं। कानून जागृत रहता है, जबकि सभी लोग जल्दी सो जाते हैं, इसलिए, बुद्धिमान अकेले धर्म या अधिकार के रूप में कानून को देखता हैं। जब सही तरीके से प्रशासित किया गया कानून सभी पुरुषों को खुश करता है लेकिन जब गलत तरीके से प्रशासित किया जाता है, तो न्याय की आवश्यकताओं के अनुसार उचित विचार किए बिना यह राजा को बर्बाद कर देता है। सही ढंग से प्रशासित कानून पुण्य के अभ्यास को बढ़ावा देता है धन का अधिग्रहण करता है और अपने लोगों की दिल से महसूस की गई इच्छाओं को प्राप्त करता है। स्वामी दयानंद राजा और अन्य उच्च अधिकारियों के परीक्षण के लिए न्यायिक अदालतों का एक अलग सेट प्रदान करना पसंद नहीं करते हैं। वह इस तानाशाही को उठाता है और उसे यह बताते हुए विस्तृत करता है कि राजा को दी गई सजा एक सामान्य व्यक्ति की तुलना में हजार गुना भारी होनी चाहिए। सरकार के कार्य स्वामी दयानंद को, सरकार समुदाय का एजेंट है।

संदर्भ

1. स्वामी दयानंद सरस्वतीः उनके जीवन और कार्य का अध्ययन, 1987
2. दयानंद सरस्वती की आत्मकथा, 1987
3. स्वामी दयानंद सरस्वती गैर–आर्य समाजवादी आँखों के माध्यम से, 1990–भगवान दयालः आधुनिक शिक्षा, बोमबाई, 1955
4. चौबे,एसपी का विकास। कुछ महान भारतीय शिक्षक, आगरा, 1957
5. RV&I&104-3; 105-8। ईट। ब्राम्हण। VII-3; Tait-Sam-III-9-4-49। बैठ गया। Barah-V-3-4।
6. छाजू सिंह,बावाः दयानंद सरस्वती का जीवन और शिक्षा, लाहोर, 1903

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 13

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आर्यसमाज के आलोक में संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के विकास का पर्यालोचनात्मक विश्लेषण

डॉ. आशुतोष पारीक
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय विद्यालय, अजमेर

आधुनिक भारत में जब अंग्रेजी भाषा के प्रचार–प्रसार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जा रहा था, उसी काल में आर्य समाज के संस्थापक और सामाजिक चेतना के संवाहक स्वामी दयानंद सरस्वती ने संस्कृत भाषा और हिंदी भाषा के माध्यम से भारत को जोड़ने और भारत के गौरव को आत्मसात् करने के लिए संबोधित करना प्रारंभ किया। स्वामी दयानंद सरस्वती का यह निश्चित मत था कि भारत में यदि हम एक भाषा, एक राष्ट्र के रूप में स्थापित नहीं हो पाते हैं तो हम सदियों तक गुलाम बने रहेंगे। इसी उद्देश्य से सर्वप्रथम स्वामी दयानंद ने संस्कृत भाषा के माध्यम से अपने विचारों को संप्रेषित करना शुरु किया, लेकिन स्वामी दयानंद ने देखा कि भारत में संस्कृत भाषा को जानने और उसे अपने दैनिक व्यवहार में प्रयोग करने वालों की संख्या बहुत कम थी तो उन्होंने हिंदी भाषा को अपने प्रवचनों एवं साहित्य के आधार के रूप में चुना। स्वामी दयानंद का यह निश्चित मत था कि हिंदी भाषा के माध्यम से यद्यपि हम समाज को जोड़ने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे लेकिन साथ–साथ भारत के शास्त्रादि व प्राचीन साहित्य परंपरा एवं भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा के स्वर्णिम काल का ज्ञान होना भी हमारे लिए आवश्यक है। अतः हिंदी एवं संस्कृत इन दोनों भाषाओं के साथ ही एक भारतीय को आगे बढ़ना होगा और इसी कारण स्वामी दयानंद ने अपने साहित्य में अनेकत्र संस्कृत भाषा के अध्ययन की आवश्यकता पर भी बल दिया और साथ में भारतीयों को आपस में जोड़ने एवं एक सशक्त समाज के निर्माण में हिंदी भाषा के योगदान की भी महत्ता को समझाया।

मेरे इस शोध पत्र का उद्देश्य यही है कि स्वामी दयानंद के विचारों को भाषा के संबंध में एक पूर्णता के साथ ग्रहण करने का प्रयास किया जाए एवं वर्तमान भारतीय विचारधारा में संस्कृत एवं हिंदी इन दोनों को एक सामंजस्य पूर्ण तरीके से बढ़ाने में योगदान दिया जाए। स्वामी दयानंद ने जिस प्रकार से दोनों ही भाषाओं की महत्ता को स्वीकार किया था उसी प्रकार वर्तमान समाज को इन दोनों भाषाओं के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भारतीय ज्ञान–विज्ञान के उस परम वैभव को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करने के लिए अग्रसर होना चाहिए। इति।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 14-16

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वामी दयानंद सरस्वती का हिन्दी साहित्य में योगदान

डॉ. बासुदेव प्रजापति
सहायक प्राध्यापक
के ० बी ० कॉलेज, बेरमो (बोकारो) पिन–829113
मो–9430142502, 7992472758

भारत की पवित्र भूमि पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया है जिनमें एक नाम महान समाज सुधारक स्वामी दयानंद सरस्वती का भी है। जिन्होंने सच्चे ज्ञान की खोज के लिए घर–बार छोड़ दिया। पूरे भारत का भ्रमण किया, जंगल–जंगल छान मारे, फिर भी ज्ञान न मिला। अंत में गुरु विरजानंद ने उन्हें ज्ञान का मार्ग दिखाया। बंगाल के दो मनीषियों के सुझाव पर वे अपने प्रचार में देशी भाषा (आर्य भाषा) का प्रयोग किया। [1] हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में स्वामी दयानंद सरस्वती का कोई प्रत्यक्ष देन नही है, फिर भी आज हिन्दी के स्वरुप और स्थान के लिए इसे सशक्त और समर्थ बनाने में उनका अप्रतिम योगदान है। स्वामी दयानंद सरस्वती समाज सुधारक, चिंतक और विचारक थे। हिन्दी भाषा और साहित्य को इस सुधारवादी धार्मिक विचारक ने कई प्रकार से प्रभावित किया। हिन्दी भाषा के तत्समीकरण और संस्तिकरण पर स्वामी जी का ही प्रभाव है। उन्होंने इस भाषा को वाद–विवाद, खण्डन–मण्डन, शास्त्रार्थ के अनुकूल बनाया और तार्किकता के साथ–साथ इसे व्यंग्य और कटाक्ष की शक्ति सम्पन्न किया। [2]

आर्षपाठविधि की शिक्षा में स्वामी दयानंद ने सर्वाधिक महत्त्व संस्कृत भाषा को दिया है जबकि शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्राथमिक माध्यम–भाषा, व्यवहार भाषा और राजभाषा के रूप में आर्यभाषा (हिन्दी) को महत्त्व दिया है। इसके साथ–साथ स्वामी दयानंद ने मातृभाषा तथा विष्व की अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं की यथायोग्य उपयोगिता आधारित शिक्षा को भी आवश्यक माना है। मातृभाषा से लेकर विदेशी भाषा तक के अध्ययन का निर्देश देने से स्वामी दयानंद की शिक्षा–सम्बन्धी दूरदर्शिता एवं उदारता का परिचय मिलता है। स्वामी जी का मानना था कि जिस बालक–बालिका की जो भी मातृभाषा है, चाहे वह स्वदेश में बोली जाने वाली गुजराती, मराठी, बंगला, तमिल, कन्नड़ आदि हैं अथवा विदेशी बोली जाने वाली उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि हैं, इनका भी ज्ञान बच्चों को होना चाहिये। चुंकि बच्चें पहले मातृभाषा ही सीखता–समझता है। उसी से उसका व्यवहार संपन्न होता है। अतः मातृभाषा का ज्ञान आवश्यक है। [3]

हिन्दी (आर्यभाषा) का प्रचार-प्रसार

आर्षपाठविधि के पठन–पाठन में संस्कृत के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान आर्यभाषा (हिन्दी) का है। स्वामी दयानंद ने हिन्दी को 'सहयोगी माध्यम भाषा' माना है। क्योंकि स्वामी जी संस्कृत को भारत की स्वभाविक मातृभाषा मानते थे और इसी की शिक्षा के माध्यम से देशोन्नति संभव है। जिसके कारण स्वामी जी पहले संस्कृत में ही लेखन और भाषण देते थे किन्तु कलकता में केशवचन्द्र सेन के अनुरोध पर उन्होंने 1873 ई0 से हिन्दी में बोलना और लिखना प्रारम्भ किया। उन्होंने देखा की देश में संस्कृत का प्रचलन नहीं है, अधिकांश भारतीय भू–भाग में हिन्दी ही समझी और बोली जाती है, अतः हिन्दी के माध्यम से ही जनसमान्य को वैदिक संस्ति की ओर लौटाया जा सकता है। इस सच्चाई को उन्होंने मन से स्वीकार किया और इसके प्रचार –प्रसार के लिए सभी संभव प्रयास किये। गुजराती भाषा–भाषी होते हुए भी उन्होंने हिन्दी को स्वीकार किया और उसे राजभाषा बनाने का प्रयास किया। यह उनकी उदारता, महानता और दूरदर्शिता का परिचय था। स्वामी दयानंद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी को सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में पिरोने में समर्थ भाषा माना। अप्रैल 1875 ई0 में आर्य समाज की स्थापना के साथ ही उन्होंने आर्यभाषा (हिन्दी) अथवा संस्कृत

का ज्ञान आर्यो के लिए आवश्यक घोषित किया। उन्होंने हिन्दी के पठन–पाठन, प्रचार–प्रसार के लिए राजाओं को भी प्रेरणा दी। उदयपुराधीष महाराणा सज्जनसिंह को मनुस्मृति आदि का अध्यापन हिन्दी के माध्यम से ही कराया। उन्हीं की प्रेरणा से उदयपुराधीश ने अपनी समितियों के नाम हिन्दी में 'महद्राजसभा', 'सैन्य सभा', 'शिल्प सभा' आदि रखे। स्वामी दयानंद ने अपने अमरग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' 1874 ई0, संस्कार विधि 1875 ई0 आदि हिन्दी में ही लिखे और अन्य ग्रंथ जो संस्कृत में लिखे थे उनका भी हिन्दीं में अनुवाद किया व कराया। वेदभाष्य संस्कृत के साथ–साथ हिन्दी में भी लिखा। स्वामी जी के प्रेरणा से आर्य पाठशालाओं में हिन्दी भाषा पढ़ायी जाती थी और आर्यसमाजों की ओर से हिन्दी में समाचारपत्रों का प्रकाशन होता था। जिसमें–'आर्यदर्पण' (शाहजहाँपुर–1870) आर्यभूषण–1876, 'भारत सुदशा प्रवर्तक–1879 फर्रुखाबाद प्रमुख थे। स्वामी जी का ज्यादातर पत्रव्यवहार भी हिन्दी में होता था और विज्ञापन भी हिन्दी में निकालते थे। इस प्रकार स्वामीजी ने अपने प्रयत्नों से हिन्दी को राजमहलों में स्थापित किया, वहीं जनसामान्य में भी उसे लोकप्रिय बनाया। [4]

हिन्दी और उसके प्रचार–प्रसार हेतु स्वामी दयानंद द्वारा निम्न–लिखित प्रयास किये गये :–

(i) आर्षपाठविधि में सर्वप्रथम आर्यभाषा (हिन्दी) की शिक्षा। सत्यार्थप्रकाश में शिक्षा के क्रम में स्वामी दयानंद ने माता के लिए बालकों को सर्वप्रथम देवनागरी (हिन्दी) सिखाने का निर्देश दिया है, जिससे वह संस्कृत आधारित आर्षग्रंथों को भलीभांति समझ सके। उसके बाद अन्य भाषाओं की शिक्षा का निर्देश दिया।

(ii) जोधपुर नरेश को हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा।

(ii) हिन्दी को राजभाषा और शिक्षा का माध्यम बनवाने के प्रयास। आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रचार–प्रसार में स्वामी दयानन्द ने हिंदी को राजभाषा और तत्कालीन शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रयत्न भी किया।

स्वामी दयानन्द के कार्यकाल में राजकार्य और शिक्षा कार्य या तो उर्दू–फारसी में या अंग्रेजी में चल रहा था। जनता की ओर से सरकार के सामने समय–समय पर यह मांग उठती रहती थी कि उक्त कार्यो में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाये। अंग्रेजी सरकार ने 1882 ई0 में डॉ0 हंटर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया, जिसका उद्देश्य भारतीयों का मत जानकर उक्त कार्यो में हिन्दी को राजभाषा बनाया जाये या नहीं, यह निर्णय करना था। स्वामी दयानंद ने हिन्दी को राजभाषा बनाने का बहुत ही उपयुक्त मौका देखकर यथासंभव प्रयास किये और अधिक से अधिक लोगों तथा आर्य समाजों को पत्र लिखकर कमीशन को ज्ञापन देने के लिए प्रेरित किया। स्वामी दयानंद के प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि अकेले उतर–प्रदेश से ही 200 से अधिक ज्ञापन हंटर कमीशन को भेजे गये। ऐसे ही ज्ञापन मेरठ, कानपुर, लाहौर, मुलतान, फर्रुखाबाद आदि आर्य समाज के लोगों द्वारा भेजे गये थे। [5]

1975 ई0 में स्वामी दयानंद सरस्वती की आत्मकथा प्रकाशित हुई। उस आत्मकथा में स्वामी दयानंद सरस्वती के जीवन के विविध पक्षों यथा–ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, विदवता सत्यनिष्ठा, और निर्भीकता आदि का सजीव चित्रण किया गया है। सत्यानंद अग्निहोत्री कृत 'मुझमें देव जीवन का विकास' का पहला खण्ड–1909 और दूसरा खण्ड–1918 में प्रकाशित हुआ। इस आत्मकथा में आत्मश्लाधा की प्रधानता है। 1921 ई0 में भाई परमानंद की आत्मकथा 'आपबीती' प्रकाशित हुई। इसे किसी क्रांतिकारी की प्रथम आत्मकथा माना जा सकता है। इसमें लेखक ने स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान, अपनी जेल यात्रा और अपने ऊपर पड़े आर्यसमाज के प्रभाव को रेखांकित किया है। 1942 ई0 में स्वामी श्रद्धानंद की आत्मकथा 'कल्याणमार्ग का पथीक' प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने अपने जीवन संघर्षो और आत्मोत्थान का वर्णन किया है। [6]

इस प्रकार स्वामी दयानंद द्वारा हिन्दी के लिए बहुपक्षीय प्रयत्न किया गया। हिन्दी भाषा एवं अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषाओं ने राष्ट्रीय स्वाभिमान और स्वतंत्रता–संग्राम के चैतन्य का शंखनाद घर–घर तक पहुँचाया। स्वामी दयानंद सरस्वती देश की सामाजिक आवष्यकताओं से अवगत थे और इन आवष्यकताओं के अनुकूल शिक्षा योजना बनाना चाहते थे। उनके शिक्षा सम्बंधी कार्यक्रम में व्यक्ति के व्यवहारिक अनुभव सम्मिलित है। इतना बहुमूल्य योगदान होते हुए भी हिन्दी के इतिहासकारों ने स्वामी दयानंद सरस्वती के कार्यो को पूर्वाग्रहों के कारण उपेक्षित कर दिया है।

निष्कर्ष

स्वामी दयानन्द सरस्वती गुजराती–भाषी होते हुए भी देश की उन्नति, एकता और अखंडता के लिए संस्कृत और हिंदी को राजभाषा (राष्ट्रभाषा) बनाने और शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए सक्रिय प्रयास करने वाले स्वामी दयानन्द पहले जननायक थे। चिंतारहित शिक्षा प्राप्ति और अच्छे शिक्षा का वातावरण के निर्माण के लिए उन्होंने जो गाँवों नगरों

से दूर एकांत शांत प्रदेश में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा सम्पूर्ण आवासीय पद्धति का जो सिद्धांत प्रस्तुत किया था, उसे आज के ख्याति प्राप्त पब्लिक स्कूलों ने सत्य सिद्ध कर दिखाया है। पब्लिक स्कूलों में प्रवेश के समय माता–पिता का भी साक्षात्कार लेने की जो प्रथा प्रचलित हुई है उसे वर्षो पूर्व स्वामी दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति यह कहकर सम्मलित कर लिया था कि 8 वर्ष तक संतान कि शिक्षा का दायित्व माता–पिता की है और माता–पिता को सुशिक्षित होना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं की स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति एक सम्पूर्ण और विश्व की व्यापकतम पाठविधि है। इसमें संसार की सम्पूर्ण सहित्यिक, वैज्ञानिक, व्यवसायिक और शिल्प विधाओ का समावेश है। इस प्रकार स्वामी दयानन्द की शिक्षा पद्धति राष्ट्र निर्माण के साथ–साथ आदमी से ' मनुष्य य मनुष्य से देव य और देव से ''ऋषि '': बनाने वाली पद्धति है। अर्थात ' मानव को ' महामानव ' बनाने वाली शिक्षा पद्धति है।

सन्दर्भ

1. विनोद तिवारी, स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली–2002 पृष्ठ–53
2. International journal Of Enhanced Research In Educational Development ISSN : 2320 - 8708 , VOL , 3 Issue 6, November - December , 2015.
3. डॉ० सुरेन्द्र कुमार, महर्षि दयानंदवर्णित शिक्षा पद्धति, राधा प्रेस, दिल्ली–2004. पृष्ठ–180.
4. वही, पृष्ठ –183, 184
5. वही, पृष्ठ–184, 185
6. उपरोक्त, पृष्ठ–48

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 17-19

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद सरस्वती की जीवन यात्रा और हिन्दी

दिलीप सिंह राजपूत
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
कला एवं मानविकी अध्ययनषाला, मैट्स विष्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबाइल नम्बर – 9098771548
email : dilip61286@gmail.com

महर्षि दयानंद सरस्वती 19 वीं शताब्दी के एक महान विचारक एवं समाज सुधारक थे। इनकी विचारधारा आर्य समाज की स्थापना की आधार बनी। इन्होंने जन जागरण हेतु 'आर्य समाज' की स्थापना की और आजीवन इस संस्था को अपने विचारों तथा श्रम से सिंचित व पल्लवित किया। इन्होंने मूर्ति पूजा का घोर विरोध किया तथा मानव सेवा को श्रेष्ठ धर्म माना।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी का जन्म 12 फरवरी सन् 1824 को टंकारा, गुजरात में हुआ। ये जाति से ब्राह्मण थे। इनका बचपन का नाम मूलशंकर तिवारी था। इनके पिता का नाम अंबाशंकर तिवारी तथा माता का नाम अमृत बाई था। अंबाशंकर तिवारी एक नौकरी पेशा व्यक्ति थे अतः इनका परिवार आर्थिक रुप से संपन्न था फिर भी संपन्नता ने मूलशंकर को संन्यासी बनने से रोक न सका।

घटना सन् 1846 की है, 21 वर्ष की अल्पायु में ही मूलशंकर ने संन्यासी जीवन जीने को ठाना और घर तथा सांसारिक जीवन का परित्याग कर दिया। इस परित्याग का मूल कारण यह था कि मूलशंकर जीवन के सच को जानना चाहते थे, जो कि सांसारिक होकर जान पाना असंभव था। इनके इस निर्णय से पिता अंबाशंकर बहुत क्रोधित हुए। फलस्वरुप पिता व पुत्र के मध्य विवाद हो गया, अंततः मूलशंकर के दृढ़ इच्छाशक्ति के आगे पिता को झुकना पड़ा।

एक घटना और स्मरण होता है। मूलशंकर में, जाति से ब्राह्मण होने के कारण धार्मिकता का भाव कूट–कूट कर भरा था। साथ ही पिता के धार्मिक जीवन का भी इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। एक बार पिताजी ने इन्हें महाशिवरात्रि के अवसर पर उपवास रखने को कहा। इस कार्य को मूलशंकर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस हेतु उन्हें विधि–विधान से दिनभर पूजा पाठ करना था और शिवालय में रात्रि जागरण करना था। मूलशंकर ने दिन भर उपवास रख कर रात्रि में शिवालय में आसन लगाकर मंत्र जाप में रम गये। तभी इन्होंने देखा कि कुछ चूहे शिवलिंग के पास रखे प्रसाद को उठा–उठाकर ले जा रहे थे। इस दृश्य को देख कर इन के मन में प्रश्न उठा कि क्या यह शिवलिंग केवल एक पत्थर है? क्या यह अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता? क्या यह अपनी रक्षा हेतु अन्य पर आश्रित है? इत्यादि। इस घटना के बाद इन्होंने मूर्ति पूजा का खंडन करना प्रारंभ कर दिया तथा समाज को भी मूर्ति पूजा नहीं करने तथा मानव सेवा करने हेतु प्रेरित किया। इस प्रकार, मूलशंकर अपने विचारों के प्रभाव से महर्षि दयानंद सरस्वती के नाम से जाना जाने लगा।

स्वामी दयानंद जी, जब घर का परित्याग कर जन–समूह के बीच गए, तब जाना कि ब्रिटिश सत्ता के अधीन समाज कितना पीड़ित है। उन पर कितना अत्याचार, शोषण है। इन्होंने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लोगों के आक्रोश को आंदोलन की दिशा में उन्मुख किया। महर्षि जी को विश्वास हो गया कि लोगों में ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध आक्रोश तो है, केवल दिशा ही सही नहीं है। इन्होंने आंदोलन को दिशा प्रदान करने हेतु लोगों को एकत्र कर अपने विचारों से अभिभूत करना प्रारंभ कर दिया। दयानंद जी के विचार इतने प्रभावी व ओजपूर्ण थे कि लोग उनसे जुड़ते चले गए। विभिन्न क्रांतिकारी जैसे नाना साहेब पेशवा, तात्या टोपे, हाजी मुल्ला खाँ आदि ने स्वामी जी के विचारों के अनुरुप कार्य करना प्रारंभ कर

दिया। स्वामी जी जन–जन तक पहुँच कर उन्हें आजादी का अर्थ समझाया और अपने प्रभावी विचारों से लोगों में स्वतंत्रता की इच्छा जागृत करते गए। यद्यपि 1857 की क्रांति विफल रही, लेकिन स्वामी जी ने लोगों में स्वतंत्रता की चाहत कम ना होने दिया। अनवरत जागरण का काम करते रहे। जन समूहों को इस बात का विश्वास दिलाया कि इतनी लंबी गुलामी के बाद आजादी के लिए लगातार संघर्षों की जरुरत है। हमें एक विफलता से रुकना नहीं है। अपितु विफलता के कारणों पर चिंतन व सुधार करके आजादी के अलख को जगाए रखना है।

जब से मूलशंकर ने संन्यासी जीवन व्यतीत करने हेतु घर का परित्याग किया था, तब से ही उनके मन में ज्ञान प्राप्ति की उत्कट इच्छा थी। इस इच्छा की पूर्ति हेतु वे स्वामी विरजानंद जी के शरण में पहुँचे। विरजानंद जी, दयानंद सरस्वती को देखकर बहुत प्रभावित हुए तथा दयानंद जी द्वारा गुरु शरण में लिए जाने की आग्रह को सहर्श स्वीकार कर लिया। इस प्रकार, दयानंद सरस्वती स्वामी विरजानंद के शिष्य कहलाए। गुरु विरजानंद ने दयानंद जी को वैदिक शास्त्र तथा योग शास्त्र की शिक्षा दी। जब इनकी शिक्षा प्रक्रिया पूर्ण हुई, तब दयानंद जी को गुरु दक्षिणा देने की इच्छा जागी। इन्होंने अपने गुरु से गुरु दक्षिणा के विषय में पूछा, तो गुरुजी ने कहा कि ''यदि तुम समाज सुधार करोगे, समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वास को मिटाने का प्रयास करोगे, परोपकार का महत्त्व और वैदिक शास्त्रों का ज्ञान जन–जन तक पहुँचाओगे तो यह मेरे प्रति तुम्हारी सच्ची गुरु दक्षिणा होगी। ''

महर्षि दयानंद जी ने गुरु की इच्छा को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया तथा जन जागरण हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। इन्होंने सभी धर्मों में व्याप्त बुराइयों एवं कुरीतियों का जमकर विरोध किया। यहाँ तक कि सनातन धर्म में व्याप्त कुरीतियों का भी खुलकर विरोध किया। इस दिशा में इन्होंने वेदो में निहित ज्ञान को ही सर्वोपरि मानते हुए लोगों को वेदों के मूल भाव से परिचय कराते हुए आर्य समाज की नींव डाली।

'गुड़ी पड़वा' का अवसर था। इसी दिन सन् 1875 में स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना की। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य समाज में ज्ञान का अलख जगाना था। इन्होंने ज्ञान, कर्म, निःस्वार्थ सेवा, परोपकार आदि को जीवन का मुख्य आधार बताया। 'आर्य समाज' ने लोगों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांप्रदायिक चेतना का विकास किया। इस संस्था के स्थापना के बाद से ही विभिन्न मतावलंबीयों ने स्वामी जी का विरोध करना प्रारंभ कर दिया लेकिन विरोधियों की एक ना चली। स्वामी जी के ज्ञान और चेतना के आगे विद्रोहियों ने घुटने टेक लिए। इस प्रकार समाज में अंधविश्वास, कुरीतियों आदि की जो काली घटा छाई हुई थी उसे स्वामी जी के ज्ञान रूपी बरसात ने साफ कर दिया।

चूंकि स्वामी जी ब्राम्हण परिवार से थे इसलिए बचपन से ही उन्हें संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था, वे जहाँ भी अपना व्याख्यान देते, संस्कृत में ही देते थे। साथ ही संस्कृत भाषा ज्ञान का लाभ यह हुआ कि वे वेदों को भी आसानी से पढ़ सके तथा उसमें छिपी ज्ञान–गंगा में गोता लगा सके। एक बार स्वामी जी एक कार्यक्रम के सिलसिले में कलकत्ता गए हुए थे। उन्होंने अपना व्याख्यान संस्कृत में पढ़ा। कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात जब केशवचंद्र सेन, जो कि स्वामी जी से अत्यधिक प्रभावित थे, स्वामी जी से मिले तो उन्होंने स्वामी जी से आग्रह किया कि वे अपना व्याख्यान संस्कृत भाषा में ना देकर हिन्दी में दें, क्योंकि इस समय हिन्दी, जनमानस की भाषा बन चुकी थी। हिन्दी के माध्यम से जन–जन तक पहुँचा जा सकता था। केशवचंद्र सेन जी के आग्रह को स्वामी जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा उन्हें आश्वस्त किया कि आगे होने वाली सभी व्याख्यान वे हिन्दी में ही देंगे। स्वामी जी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प लेकर 1862 से हिन्दी में भाषण, व्याख्यान आदि देने लगे। स्वामी जी ने स्वयं अनुभव किया कि वे हिन्दी के प्रयोग से ज्यादा से ज्यादा लोगों से जुड़ सके। लोगों को उनकी बातें समझ में आने लगी तथा धीरे–धीरे अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। इस प्रकार, उन्होंने हिन्दी में अपने विचार व्यक्त करने के साथ–साथ हिन्दी के विकास के लिए भी निरंतर प्रयास किया।

स्वामी जी निरंतर हिन्दी के पोषण करते रहे। इन्होंने सती प्रथा, बाल विवाह, वर्ण भेद, अष्पृष्यता आदि का भी जमकर विरोध किया तथा नारी शिक्षा एवं समानता, विधवा पुनर्विवाह आदि पर बल दिया। इन्होंने लोगों में भाईचारे तथा देशप्रेम की भावना जागृत की तथा अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखाया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि अंग्रेजी सत्ता इनके विचारों से भय खाने लगी। अंग्रेजी हुकूमत ने स्वामी जी के विरुद्ध अनेक प्रकार के षड्यंत्र रचे, उन्हें मारने हेतु तरह–तरह के यत्न हुए किंतु स्वामी जी की योग साधना ने उनका प्राण बचाए रखा।

स्वामी जी को मारने का अंतिम षड्घ्यंत्र 1883 में रची गई, जो कि राजनीतिक ना होकर अधिकार प्राप्त करने की इच्छा से थी। जब स्वामी जी जोधपुर के राजा यशवंत सिंह के यहाँ गए थे तब उनकी विलासता को देखकर स्वामी जी ने राजा को समझाते हुए कहा कि ''भोग–विलास का यह जीवन ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में बाधक है। '' स्वामी जी

के इन बातों से प्रभावित होकर राजा ने भोग–विलास का परित्याग कर दिया। परंतु राजा से आलिंगन करने वाली एक नर्तकी की अपने अधिकारों को छीनते देख, रसोइये के साथ मिलकर उन के भोजन में कांच का टुकड़ा मिला दिया, इसे स्वामी जी के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ा। यद्यपि स्वामी जी ने उस नर्तकी को तो माफ कर दिया, लेकिन यह घटना उनके मृत्यु का कारण बना। अंततः 30 अक्टूबर 1883 को 59 वर्ष की आयु में स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने अंतिम सांस ली।

इस प्रकार, स्वामी जी ने 'आर्य समाज' की स्थापना के रूप में समाज को एक नई ऊर्जा व साहस देने का प्रयत्न किया। उनके विचार युगों–युगों तक जनमानस को ज्ञान प्राप्ति हेतु प्रेरित करते रहेंगे। स्वामी जी के संस्कृत से हिन्दी में आगमन होते ही हिन्दी के विकास हेतु लगातार प्रयत्नशील रहे और इसे राष्ट्रभाषा बनाने की दिशा में संघर्षरत रहे। हिन्दी भाषा के उन्नति एवं विकास हेतु स्वामी दयानंद सरस्वती जी का प्रयास जन–जन को सदैव उत्प्रेरित करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1- https://hi-m-wikipedia.org
2- https://www-deepawali-co.in
3- https://hindi-webdunia.com
4- https://book-google-co.in>books

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 20-22

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी के प्रसार में आर्यसमाज का योगदान

डॉ. अंगदकुमार सिंह
असिस्टेण्ट प्रोफेसर हिन्दी
जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, बाँसगाँव
गोरखपुर (उ.प्र.), भारत–273403
ई–मेलः anagadkumarsingh01@gmail.com
मो.नं. –7460856206

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द की प्रेरणा से 12 अप्रैल, 1875 को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। यह आन्दोलन समाज में फैली कुरीतियों और पाखण्डों को जड़ से उखाड़ फेकने के साथ ही विदेशियों की गुलामी की बेड़ियों से जकड़ी जन्मभूमि को मुक्त करने का आह्वान भी था। आर्यसमाजी शुद्ध वैदिक परम्परा में विश्वास करते हैं और मूर्तिपूजा, अवतारवाद, बलि, कर्मकाण्ड तथा अंधविश्वास को नहीं मानते, इसमें समाज में व्याप्त छुआछूत और जातिगत भेद को समाप्त कर बेहतर समाज की स्थापना पर बल दिया गया है, इसलिए स्त्रियों और शूद्रों को भी यज्ञोपवीत धारण करने तथा वेद पढ़ने का अधिकार दिया गया। आर्यसमाज वैदिक धर्म की व्याख्या तर्क की कसौटी पर कसकर करता है और वेदों में लिखे वाक्य को दुहराते हुए कहता है कि, 'ईश्वर की कोई प्रतिमा नहीं है, वह अन्तर्यामी है। इसलिए उसे किसी भी स्थान विशेष में सीमित करके नहीं रखा जा सकता। वह अजर, अमर और अभय है तथा इस संसार की उत्पति करने वाला है। उसी सर्वशक्तिमान की उपासना यज्ञादि कर्मों द्वारा की जाती है। ''सत्यार्थप्रकाश'' नामक ग्रन्थ आर्य समाज का आधार ग्रन्थ है जिसकी रचना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दीभाषा में की। आर्यसमाज का आदर्श वाक्य है –'कृण्वन्तों विश्वमार्यम', अर्थात् विश्व को आर्य बनाते चलो। प्रसिद्ध आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय, गंगाप्रसाद उपध्याय, डॉ. चिरंजीव भारद्वाज, मेहता जैमिनी, पण्डित चमूपति, पण्डित गुरुदत्त, स्वामी आनन्दबोध सरस्वती, स्वामी अछूतानन्द, चौधरी छोटूराम, चौधरी चरण सिंह, पण्डित बन्देमातरम, रामचन्द्र राव, बाबा रामदेव, डॉ. दयाशंकर विद्यालंकार, डॉ. प्रेरणा आर्य आदि हैं।

आर्यसमाज ने सम्पूर्ण देश में स्वराज, धर्म और हिन्दीभाषा के लिए आन्दोलन किया और ये आन्दोलनकारी 'हिन्दी' को आर्यभाषा की अभिसंज्ञा से सम्बोधित करते हुए अपने सभी कामकाज इसी भाषा में करते थे। आर्यसमाज के 28 नियमों में हिन्दी पढ़ना भी एक नियम था जो पाँचवें क्रम पर आता था। इस समाज ने अपने नन्हें–नन्हें कदमों को आगे बढ़ाते हुए 24 जनवरी, 1877 को लाहौर में एक और शाखा की स्थापना की। आर्यसमाज के सत्संग और सम्मेलन हिन्दीभाषा में ही होते थे, एतदर्थ हिन्दीभाषा को फलने–फूलने का खूब अवसर मिला। आगे चलकर इस समाज द्वारा गुरुकुल, कन्या पाठशाला और अनेक महिला महाविद्यालय की स्थापना की गयी जिनमें हिन्दी की अनिवार्यता को प्रमुखता से रखा गया। गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम हिन्दीभाषा में विज्ञान की शिक्षा के लिए अवसर उपलब्ध कराया। इस पर टिप्पणी करते हुए श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने कहा है कि, "भारत में पहला शिक्षणालय, जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया– गुरुकुल काँगड़ी था।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती हिन्दीभाषा के उन्नायक रूप में अवतरित होते हैं। वे हिन्दीभाषा को सिर्फ अपने उपदेश का साधन न बनाकर अपने मिशन के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं तथा भविष्य में इसी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा बनाने के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। 'सत्यार्थप्रकाश' का पहला संस्करण 1875 में जब आया तो स्वामी जी ने जिस हिन्दी का प्रयोग किया था वह बहुत अधिक शुद्ध, परिमार्जित नहीं थी परन्तु, दूसरे संस्करण तक अर्थात् 1882 आते–आते

इनकी हिन्दी–लेखन शक्ति का पूर्ण विकास हो गया और बड़े–बड़े साहित्यकारों और राजनेताओं ने इनकी खूब प्रशंसा की।

नये विचारों के प्रचारार्थ स्वामी जी ने हिन्दीभाषा को अपना हथियार बनाया। स्वामी जी और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र दोनों ने देशभक्ति और आत्मगौरव की भावना उत्तरभारत में हिन्दी के माध्यम से लोगों में पैदा की। तत्कालीन समय में हिन्दी–उर्दू, खड़ीबोली–ब्रजभाषा का विवाद चरम पर था, सरकार भी इसको हवा देकर हिन्दी के विरोध में माहौल बनाती नजर आ रही थी, ऐसे विषाक्त वातावरण में हिन्दी की वकालत करना साधारण कार्य न होकर साहस से भरा हुआ कार्य था। ये लोग राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने के लिए भाषा की एकता जरूरी समझते थे। स्वामी जी ने आर्यभाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। वे खुद गुजराती तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी लोगों को हिन्दीभाषा पढ़ने के लिए प्रेरित करते और आन्दोलन का नेतृत्त्व भी करते।

दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों की तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करने के पक्षधर थे, उनसे प्रेरणा लेकर अनेक साहित्यकार अपने साहित्य का सृजन करने लगे। आधुनिक काल की राष्ट्रीयता और सामाजिकता का मेरूदण्ड दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा संचालित आन्दोलन को कहा जाता है। इस काल के प्रमुख और बड़े साहित्यकार कहीं न कहीं आर्यसमाज के संस्थापक या उनकी संस्था से प्रभावित थे। स्वामी जी भाषावैज्ञानिक भी थे।

स्वामी दयानन्द जी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आरूढ़ देखना चाहते थे इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को हिन्दी अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते रहते। राष्ट्रभाषा के प्रचार–प्रसार–हेतु जो कार्य आर्यसमाज ने किया वह इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में दर्ज है, इसके माध्यम से ज्ञानात्मक और रसात्मक दोनों प्रकार के साहित्य के सृजन में तेजी आयी। आर्यसमाज के हिन्दीप्रेम का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इनके द्वारा भारत ही नहीं अफ्रीका, गायना, फिजी आदि देशों में रहने वाले भारतीयों तक हिन्दी का प्रसार–प्रचार किया गया तथा हिन्दी के प्रचार के लिए अनेक शिक्षण–संस्थाएँ भी देश तथा विदेश में स्थापित की गयीं।

पंजाब में हिन्दीभाषा की समस्या आने पर आर्यसमाज द्वारा सत्याग्रह आन्दोलन चलाया गया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने और उचित स्थान दिलाने में संविधान सभा के आर्यसमाजी सदस्यों का विशेष योगदान रहा है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्वाण के पश्चात आर्यसमाज ने शिक्षा–सम्बन्धी अपने कार्यक्रम में और तेजी लाया तथा दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेजों के माध्यम से हिन्दी की पढ़ाई पर जोर दिया। आर्यसमाज ने स्त्री–शिक्षा के लिए बहुत उल्लेखनीय कार्य किया। उस समय यह एक क्रांतिकारी और साहसिक कदम था, इसके द्वारा नारियों में सांस्कृतिक जागरण का उद्‌भव हुआ। स्त्री–शिक्षा की ही देन है कि महिलापयोगी पत्र–पत्रिकाओं की संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है। आर्यसमाज के हस्तक्षेप के कारण उर्दूमय पंजाब हिन्दीमय हुआ।

दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार–प्रसार स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से हुआ। वर्तमान समय में जो प्रेम हिन्दी के प्रति दक्षिण भारतीयों में दिखलायी देता है वह आर्यसमाज की ही देन है। सम्पूर्ण दक्षिण भारत में आर्यसमाज का सबसे अधिक प्रभाव आन्ध्र प्रदेश में देखने को मिलता है। आर्यसमाजी विद्वानों और नेताओं ने अनेक हिन्दीसेवी संस्थाओं की स्थापना कर महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया तथा वेद, उपनिषद्, वैदिक सूक्तों, वैदिक ऋचाओं की हिन्दीभाषा में व्याख्या प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य को वैदिक ज्ञान से लबरेज कर दिया। उपनिषद्–साहित्य को लोकभाषा के द्वारा जनमानस तक पहुँचाने का कार्य आर्यसमाजियों ने बखूबी किया। आर्यसमाजी विद्वानों ने निरुक्त पर भाष्य लिखा तो षड्‌दर्शन पर टीका, भाष्य, व्याख्या और विवेचना भी की। इसके अतिरिक्त इनके और भी अनेक मौलिक कृति का सृजन किया गया तो मौलिक दार्शनिक साहित्य का लेखन भी खूब हुआ।

आर्यसमाज के विद्वान् लेखकों ने रामायण और महाभारत की टीका लिखी तो अनुवाद भी प्रस्तुत किया। ये प्रत्येक शास्त्रों के प्रति वैज्ञानिक और तर्कशील दृष्टि रखते हैं। भर्तृहरि के शतकों, चाणक्य नीति, पंचतन्त्र की कहानियों और हितोपदेश की कथा का हिन्दीभाषा में अनुवाद आर्यसमाज की प्रेरणा से किया गया तथा समाज की विभिन्न समस्याओं पर अनेक पुस्तकों का लेखन–कार्य भी हुआ।

ऋषि दयानन्द जी ने धर्म का प्रचार व्यापक रूप में करने के लिए समाजियों को पत्र–पत्रिका निकालने के लिए प्रोत्साहित किया और 'देश हितैषी' पत्र का प्रकाशन इन्हीं की प्रेरणा स्वरूप हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र स्वामी दयानन्द जी से इतने प्रभावित हुए की वे अपनी पत्रिका 'कविवचन सुधा' के सम्पादक मण्डल में स्थान दिये। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की अनेक पत्रिकाओं को प्रकाशित करने में आर्यसमाज ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया तथा लोगों

में गद्य के प्रति आकर्षण पैदा किया एवम् स्वभाषा प्रेम को जनता में जगाने का कार्य किया। द्विवेदी युग की हिन्दी पत्रकारिता को आर्यसमाज की बहुत बड़ी देन यह रही है कि गुरुकुलों के जो स्नातक पत्रकारिता के क्षेत्र में पत्रों के सम्पादन का पद सम्भला वे हिन्दी के प्रति लगाव रखते थे, इसलिए हिन्दी के फलने–फूलने का अवसर स्वतरू निकल आया। आर्यसमाज के लोगों द्वारा अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया। जैसे– 'पवमान', 'आत्मशुद्धिपथ', 'वैदिक गर्जना' 'आर्य संकल्प', 'वैदिक रवि', 'विश्वज्योति', 'सत्यार्थ सौरभ', 'दयानन्द सन्देश', 'महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश', 'तपोभूमि', 'नूतन निष्काम पत्रिका', 'आर्यप्रेरणा', 'सुधाकर', 'टंकारा समाचार', 'अग्निदूत', 'आर्यसेवक', 'भारतोदय', 'आर्य मुसाफिर', 'आय सन्देश', 'आर्य जगत', 'आर्य प्रतिनिधि', 'आर्य जीवन', 'परोपकारी', 'सम्वर्द्धिनी', आदि मासिक, पाक्षिक व वार्षिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं, जिनसे हिन्दी पत्रकारिता को नया प्रकाश मिल रहा है। आर्यसमाज अपने सभी विचारों को हिन्दीभाषा में प्रचारित–प्रसारित करता रहा है। हिन्दी पत्रकारिता के विकास में आर्यसमाज ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

आर्यसमाज ने हिन्दी के उपन्यासकार, साहित्यकार, गद्य–काव्य लेखक और नाटककार को उत्पन्न किया जो आर्यसमाज के धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विचारों को कलात्मक ढंग से अपनी रचनाओं द्वारा जनता तक पहुचाएँ। महर्षि दयानन्द जी ने स्वयं गुजराती भाषाभाषी होतेजमजम हुए भी हिन्दीभाषा में अपनी आत्मकथा प्रकाशित करायी तो श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा 'कल्याणमार्ग का पथिक' हिन्दीभाषा में लिखी। अमर शहीद रामप्रसाद विस्मिल ने अपनी आत्मकथा 'ओजस्वी आत्मचरित' नाम से हिन्दीभाषा में लिखा तो लाला लाजपत राय द्वारा लिखित उर्दू आत्मकथा को पण्डित भीमसेन विद्यालंकार ने हिन्दीभाषा में अनूदित करने का सराहनीय कार्य किया। स्वामी भवानी लाल ने अपनी आत्मकथा 'प्रवासी की आत्मकथा' शीर्षक से लिखी जिसमें इतिहास, उपन्यास, यात्रा–वर्णन, संस्मरण आदि का आनन्द एक साथ मिलता है। पद्मसिंह शर्मा, इन्द्र वाचस्पति, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डॉ. नगेन्द्र, प्रिंसिपल दीवानचन्द आदि ने संस्मरण का लेखन कर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की तो निबन्ध का प्रणयन भी आर्यसमाजी विद्वानों जैसे– रूद्रदत्त शर्मा, पण्डित पद्मसिंह शर्मा, सत्यदेव परिब्राजक, डॉ. हरिमोहन शर्मा 'बेढब', डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. धर्मवीर भारती, श्री क्षेमचन्द सुमन द्वारा किया गया।

इतना ही नहीं आर्यसमाजी विद्वानों यथा– पं. रूद्रदत्त, नारायणप्रसाद 'बेताब', तुलसीराम, मुंशी प्रेमचन्द, सुदर्शन, चन्द्रगुप्त 'विद्यालंकार' आदि ने अनेक महत्त्वपूर्ण नाटकों का प्रणयन किया जिस पर आर्यसमाज का स्पष्ट प्रभाव दिखलायी देता है तो आलोचना का भी विकास इस युग में हुआ। इस युग के प्रमुख आलोचक पद्मसिंह शर्मा, डॉ. विजेन्द्र स्नातक हैं जो अपने आलोचना–कर्म से महानता को प्राप्त हुए और हिन्दी आलोचनाकाश में चमकते हुए अपना प्रकाश विकीर्ण कर रहे हैं।

आर्यसमाज से सम्बद्ध लेखकों डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. नगेन्द्र आदि ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन और सम्पादन का भी कार्य किया तो पं. नरेन्द्रदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने डायरी साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शंकर, श्रीनारायण कविरत्न आदि कवियों ने आर्यसमाज से प्रभावित होकर अपनी लेखनी की धार को तीक्ष्ण बनाकर समाजोपयोगी साहित्य का सृजन किया जो मानव को प्रेरणा देने का कार्य कर रहा है। छायावाद भी आर्यसमाज के प्रभाव से अपने को बचा नहीं पाया। छायावाद के प्रमुख कवि महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त आदि की कृतियों पर इसका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। आर्यसमाज ने गायकों को भी प्रश्रय देने का कार्य किया, इस विचारधारा के प्रमुख गायकों में अमीचन्द मेहता, चौधरी नवल सिंह, पण्डित बस्तीराम, कुँवर सुखपाल आर्य आदि हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि आर्यसमाज ने हिन्दी एवम् साहित्य के सम्प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इसके द्वारा हिन्दीभाषा को नयी दिशा और तीव्र गति मिली तथा राष्ट्रीयता, आध्यात्मिकता एवम् सांस्कृतिकता का विकास व्यापक पैमाने पर हुआ। आज भी आर्यसमाज हिन्दीभाषा के विकास एवम् सम्वर्द्धन के लिए पथप्रदर्शक की भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 23-26

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद और हिन्दी

डॉ. कुमार पुष्कर सिंह
सहा. प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
जे.एन.कॉलेज, धुर्वा, राँची–834004.. राँची विश्वविद्यालय, राँची

स्वामी दयानंद सरस्वती जो आर्य समाज के संस्थापक के रूप मे पूजनीय हैं। यह एक महान देशभक्ति एवं मार्गदर्शक थे, जिन्होंने अपने कार्यों से समाज को न्यायिक दिशाएँ एवं ऊर्जा दी। महात्मा गाँधी एवं कई वीर पुरुषों स्वामी दयानंद जी के विचारों से प्रभावित थे, इनका जन्म 12 फरवरी 1824 ई. को हुआ, ये जाति से एक ब्राह्मण थे और इन्होंने ब्राह्मण शब्द को अपने कर्मों से परिभाषित किया–'ब्राह्मण वही होता है जो ज्ञान का उपासक हो, और अज्ञानी को ज्ञान देने वाला हो।'[9]

स्वामी जी ने जीवन भर वेदों और उपनिषदों का पाठ किया, और संसार के लोगों को उस ज्ञान से लाभान्वित किया। इन्होंने मूर्ति पूजा को व्यर्थ बताया, निराकार ओमकार मे ईश्वर का अस्तित्व है, यह कह कर इन्होंने वैदिक धर्म को श्रेष्ठ बताया। 1875 ई. में स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना की। 1857 ई. के क्रांति में भी स्वामी जी ने अपना अमूल्य योगदान दिया, और अंग्रेजी हूकूमत से जमकर लोहा लिया, किन्तु उनके खिलाफ एक षड्यंत्र के चलते 31 अक्टूबर 1883 ई. को उनकी मृत्यु हो गई।

स्वामी जी वैदिक धर्म में विश्वास रखते थे, उन्होंने राष्ट्र में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासो का सदैव विरोध किया है, इन्होंने समाज को न्यायिक दिशा एवं वैदिक ज्ञान का महत्त्व समझाया। इतना ही नहीं इन्होंने कर्मे के फल को ही जीवन का मूल सिद्धांत बताया, यह एक महान विचारक थे, महर्षि जी ने अपने विचारों से समाज को धार्मिक आडंबर से दूर करने का प्रयास किया। यह एक महान देशभक्ति थे, जिन्होंने स्वराज्य का संदेश दिया जिसे बाद मे बालगंगाधर तिलक ने अपनाया, और 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा दिया। देश के कई महान सपूत स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों से प्रेरित थे, और उनके दिखाए मार्ग पर चलकर ही उन सपूतों ने देश को आजादी दिलाई। महर्षि जी का प्रारंभिक नाम 'मूलशंकर अंबाशंकर' था।

एक घटना के बाद इनके जीवन मे बदलाव आया और इन्होंने 1846 ई. (21वर्ष की आयु) संन्यासी जीवन का चयन किया, और अपने घर से विदा ली, उनमे जीवन सच को जानने की इच्छा प्रबल थी, इस कारण उन्हें सांसारिक जीवन व्यर्थ दिखाई दे रहा था, इसलिए इन्होंने अपने विवाह के प्रस्ताव को न बोल दिया। इस विषय पर इनके और इनके पिता के बीच काफी विवाद हुआ, लेकिन इनकी प्रबल इच्छा के आगे पिता को झुकना पडा, इनके इस व्यवहार से स्पष्ट था कि इनमे विरोध करने और खुल कर अपने विचार व्यक्त करने की कला जन्म से ही निहित थी, इसी कारण इन्होंने अंग्रेजी हुकूमत का कडा विरोध किया और देश को आर्य भाषा अर्थात हिन्दी के प्रति जागरूक बनाया।

भारतवर्ष के इतिहास में महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अहिन्दी भाषी गुजराती होते हुए पराधीन भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए हिन्दी को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जानकर मन, वचन व कर्म से इसका प्रचार–प्रसार किया। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि हिन्दी, जिसे स्वामी दयानन्द जी ने आर्यभाषा का नाम दिया, शीघ्र लोकप्रिय हो गई। स्वतन्त्र भारत में संविधान सभा द्वारा 14 सितम्बर 1947 को सर्वसम्मति से हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया जाना भी स्वामी दयानन्द के इससे 77 वर्ष पूर्व आरम्भ किए गये कार्यों का ही सुपरिणाम था।

प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार विष्णु प्रभाकर हमारे राष्ट्रीय जीवन के अनेक पहलुओं पर स्वामी दयानन्द का अक्षुण प्रभाव स्वीकार करते हैं और हिन्दी पर साम्राज्यवादी होने के आरोपों को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि यदि

साम्राज्यवाद शब्द का हिन्दी वालों पर कुछ प्रभाव है भी, तो उसका सारा दोष अहिन्दी भाषियों का है। इन अहिन्दीभाषियों का अग्रणीय वह स्वामी दयानन्द को मानते हैं और लिखते हैं कि इसके लिए उन्हें प्रेरित भी किसी हिन्दी भाषी ने नहीं अपितुं एक बंगाली सज्जन श्री केशव चन्द्र सेन ने किया था।

स्वामी दयानन्द का जन्म 14 फरवरी, 1825 को गुजरात राज्य के राजकोट जनपद में होने के कारण गुजराती उनकी स्वाभाविक रूप से मातृभाषा थी। उनका अध्ययन–अध्यापन संस्कृत में हुआ। इसी कारण वह संस्कृत में ही वार्तालाप, व्याख्यान, लेखन, शास्त्रार्थ, शंका–समाधान आदि किया करते थे। 16 दिसम्बर, 1872 को स्वामीजी वैदिक मान्यताओं के प्रचारार्थ भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता पहुँचे थे और वहाँ उन्होंनें अनेक सभाओं में व्याख्यान दिये। ऐसी ही एक सभा में स्वामी दयानन्द के संस्कृत भाषण का बंगला में अनुवाद गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के उपाचार्य पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न कर रहे थे। दुभाषिये वा अनुवादक का धर्म वक्ता के आशय को स्पष्ट करना होता है परन्तु श्री न्यायरत्न महाशय ने स्वामी जी के वक्तव्य को अनेक स्थानों पर व्याख्यान को अनुदित न कर अपनी उनसे विपरीत मान्यताओं को सम्मिलित कर वक्ता के आशय के विपरीत प्रकट किया जिससे व्याख्यान में उपस्थित संस्कृत कालेज के छात्रों ने उनका विरोघ किया। विरोध के कारण श्री न्यायरत्न बीच में ही सभा छोड़कर चले गये थे। प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी नेता श्री केशवचन्द्र सेन भी इस सभा में उपस्थित थे। बाद में इस घटना का विवेचन कर उन्होंने स्वामी जी को सुझाव दिया कि वह संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा हिन्दी को अपनायें। गुण ग्राहक स्वाभाव वाले स्वामी दयानन्द जी ने तत्काल यह सुझाव स्वीकार कर लिया। यह दिन हिन्दी के इतिहास की एक प्रमुख घटना थी कि जब एक 48 वर्षीय गुजराती मातृभाषा के संस्कृत के अद्वितीय विद्वान ने हिन्दी को अपना लिया। ऐसा दूसरा उदाहरण इतिहास में अनुपलब्ध है। इसके प्श्चात स्वामी दयानन्द जी ने जो प्रवचन किए उनमें वह हिन्दी का ही प्रयोग करने लगे।

सत्यार्थ प्रकाश स्वामीजी की प्रसिद्ध रचना है जो देश–विदेश में विगत 139 वर्षों से उत्सुकता एवं श्रद्धा से पढ़ी जाती है। फरवरी, 1872 में हिन्दी को स्वीकार करने के लगभग 2 वर्ष पश्चात ही स्वामीजी ने 2 जून 1874 को उदयपुर में इसका प्रणयन आरम्भ किया और लगभग 3 महीनों में पूरा कर डाला। श्री विष्णु प्रभाकर इतने अल्प समय में स्वामीजी द्वारा हिन्दी में सत्यार्थ प्रकाश जैसा उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखने पर इसे आश्चर्यजनक घटना मानते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात वेदों एवं वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ स्वामीजी ने अनेक ग्रन्थ लिखे जो सभी हिन्दी में हैं। उनके ग्रन्थ उनके जीवनकाल में ही देश की सीमा पार कर विदेशों में भी लोकप्रिय हुए। विश्वविख्यात विद्वान प्रो. मैक्समूलर ने स्वामी दयानन्द की पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने हुए लिखा कि वैदिक साहित्य का आरभ ऋग्वेद से एवं अन्त स्वामी दयानन्द जी की ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर होता है। स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश एवं अन्य ग्रन्थों को इस बात का गौरव प्राप्त है कि धर्म, दर्शन एवं संस्कृति जैसे क्लिष्ट विषय को सर्वप्रथम उनके द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत कर उसे सर्वजनसुलभ किया जबकि इससे पूर्व इस पर संस्कृत निष्णात ब्राह्मण वर्ग का ही अधिकार था जिसने इन्हें संकीर्ण एवं संकुचित कर दिया था। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका संस्कृत व हिन्दी दोनों भाषाओं में है। दोनों भाषाओं के देवनागरी लिपि में होने के कारण प्रो. मैक्समूलर व इस ग्रन्थ के अन्य पाठकों व विद्वानों का हिन्दी से परिचय हो गया था। हिन्दीतर संस्कृत विद्वानों को हिन्दी से परिचित कराने हेतु स्वामी दयानन्द जी की यह अनोखी सूझ महत्त्वपूर्ण एवं अनुकरणीय है। इसी पद्धति को उन्होंने अपने वेद भाष्य में भी अपनाया है।

थियोसोफिकल सोसासयटी की नेत्री मैडम बैलेवेटेस्की ने स्वामी दयानन्द से उनके ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद की अनुमति मांगी तो स्वामी दयानन्द जी ने 31 जुलाई 1879 को विस्तृत पत्र लिख कर उन्हें अनुवाद से हिन्दी के प्रचार–प्रसार एवं प्रगति में आने वाली बाधाओं से परिचित कराया। स्वामी जी ने लिखा कि अंग्रेजी अनुवाद सुलभ होने पर देश–विदेश में जो लोग उनके ग्रन्थों को समझने के लिए संस्कृत व हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं, वह समाप्त हो जायेगा। हिन्दी के इतिहास में शायद कोई विरला ही व्यक्ति होगा जिसने अपनी हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद इसलिए नहीं होने दिया जिससे अनुदित पुस्तक के पाठक हिन्दी सीखने से विरत होकर हिन्दी प्रसार में बाधक हो सकते थे।

हरिद्वार में एक बार व्याख्यान देते समय पंजाब के एक श्रद्धालु भक्त द्वारा स्वामीजी से उनकी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद कराने की प्रार्थना करने पर उन्होंने आवेश पूर्ण शब्दों में कहा था कि अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है। देवनागरी के अक्षर सरल होने से थोड़े ही दिनों में सीखे जा सकते हैं। हिन्दी भाषा भी सरल होने से आसानी से कुछ ही समय में सीखी जा सकती है। हिन्दी न जानने वाले एवं इसे सीखने का प्रयत्न न करने वालों से उन्होंने पूछा कि जो व्यक्ति इस देश में उत्पन्न होकर यहाँ की भाषा हिन्दी को सीखने में परिश्रम नहीं करता उससे और क्या

आशा की जा सकती है? श्रोताओं को सम्बोधित कर उन्होंने आगे कहा, ''आप तो मुझे अनुवाद की सम्मति देते हैं परन्तु दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार होगा।''२ इस स्वर्णिम स्वप्न के द्रष्टा स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में एक स्थान पर लिखा कि आर्यावर्त्त (भारत का प्राचीन नाम) भर में भाषा के एक्य सम्पादन करने के लिए ही उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों को आर्य भाषा (हिन्दी) में लिखा एवं प्रकाशित किया है। अनुवाद के संबंध में अपने हृदय में हिन्दी के प्रति सम्पूर्ण प्रेम को प्रकट करते हुए वह लिखते हैं, ''जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी, वह इस आर्यभाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेगें।''३यही नहीं आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए उन्होंने हिन्दी सीखना अनिवार्य किया था। भारतवर्ष की तत्कालीन अन्य संस्थाओं में हम ऐसी कोई संस्था नहीं पाते जहाँ एकमात्र हिन्दी के प्रयोग की बाध्यता रही हो।

सन् 1882 में ब्रिटिश सरकार ने डा. हण्टर की अध्यक्षता में एक कमीशन की स्थापना कर इससे राजकार्य के लिए उपयुक्त भाषा की सिफारिश करने को कहा। यह आयोग हण्टर कमीशन के नाम से जाना गया। यद्यपि उन दिनों सरकारी कामकाज में उर्दू–फारसी एवं अंग्रेजी का प्रयोग होता था परन्तु स्वामी दयानन्द के सन् 1872 से 1882 तक व्याख्यानों, पुस्तकों वा ग्रन्थों, शास्त्रार्थों तथा आर्य समाजों द्वारा मौखिक प्रचार एवं उसके अनुयायियों की हिन्दी निष्ठा से हिन्दी भी सर्वत्र लोकप्रिय हो गई थी। इस हण्टर कमीशन के माध्यम से हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए स्वामी जी ने देश की सभी आर्य समाजों को पत्र लिखकर बड़ी संख्या में हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन भेजने की प्रेरणा की और जहाँ से ज्ञापन नहीं भेजे गये उन्हें स्मरण पत्र भेज कर सावधान किया। आर्य समाज फर्रूखाबाद के स्तम्भ बाबू दुर्गादास को भेजे पत्र में स्वामी जी ने लिखा, ''यह काम एक के करने का नहीं है और चूक (भूल–चूक) होने पर वह अवसर पुनः आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ (अर्थात् हिन्दी राजभाषा बना दी गई) तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जायेगी।''४ स्वामीजी की प्रेरणा के परिणामस्वरूप आर्य समाजों द्वारा देश के कोने–कोने से आयोग को बड़ी संख्या में लोगों के हस्ताक्षर कराकर ज्ञापन भेजे गए। कानपुर से हण्टर कमीशन को दो सौ मैमोरियल भेजे गए जिन पर दो लाख लोगों ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के पक्ष में हस्ताक्षर किए थे। हिन्दी को गौरव प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द द्वारा किया गया यह कार्य भी इतिहास में अन्यतम घटना है। हमें इस सन्दर्भ में दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि हिन्दी के विद्वानों ने स्वामी दयानन्द के इस योगदान की जाने अनजाने घोर उपेक्षा की है। हमें इसमें उनके पक्षपातपूर्ण व्यवहार की गन्ध आती है। स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से अनेक लोगों ने हिन्दी सीखी। इन प्रमुख लोगों में जहाँ अनेक रियासतों के राजपरिवारों के सदस्य हैं वहीं कर्नल एच.एस. आल्काट आदि विदेशी महानुभाव भी हैं जो इंग्लैण्ड में स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर उनसे मिलने भारत आयै थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शाहपुरा, उदयपुर, जोधपुर आदि अनेक स्वतन्त्र रियासतों के महाराजा स्वामी दयानन्द के अनुयायी थे और स्वामी जी की प्रेरणा पर उन्होंने अपनी रियासतों में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया था।

स्वामी दयानन्द संस्कृत व हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का भी आदर करते थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जब पुत्र–पुत्रियों की आयु पाँच वर्ष हो जाये तो उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करायें, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। स्वामीजी अन्य प्रादेशिक भाषाओं को हिन्दी व संस्कृत की भांति देवनागरी लिपि में लिखे जाने के समर्थक थे जो राष्ट्रीय एकता की पूरक है। अपने जीवनकाल में हिन्दी पत्रकारिता को भी आपने नई दिशा दी। आर्य दर्पण (शाहजहाँपुरः 1878), आर्य समाचार (मेरठः 1878), भारत सुदशा प्रवर्तक (फर्रूखाबादः 1879), देश हितैषी (अजमेरः 1882) आदि अनेक हिन्दी पत्र आपकी प्रेरणा से प्रकाशित हुए एवं पत्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

स्वामी दयानन्द ने हिन्दी में जो पत्रव्यवहार किया वह भी संख्या की दृष्टि से किसी एक व्यक्ति द्वारा किए गए पत्रव्यवहार में सर्वाधिक है। स्वामीजी के पत्रव्यवहार की खोज, उनकी उपलब्धि एवं सम्पादन कार्य में स्वामी श्रद्धानन्द, प्रसिद्ध वैदिक रिसर्च स्कालर पं. भवतद्दत्त, पं. युधिष्ठिर मीमांसक एवं श्री मामचन्द जी का विशेष योगदान रहा है। सम्प्रति स्वामीजी का समस्त पत्रव्यवहार चार खण्डों में पं. यधिष्ठिर मीमांसक के सम्पादन में प्रकाशित है जो रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत–हरयाणा से उपलब्ध है। इस पत्र व्यवहार का सम्प्रति दूसरा संस्करण ट्रस्ट से उपलब्ध हैं। स्वामी दयानन्द इतिहास में पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अहिन्दी भाषी होते हुए सर्वप्रथम अपनी आत्म–कथा हिन्दीं मे लिखी। सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि के उत्पत्तिकर्ता ईश्वर से वेदों की उत्पत्ति हुई थी। स्वामी दयानन्द के समय तक वेदों का भाष्य–व्याख्यायें–प्रवचन–लेखन व शास्त्रार्थ आदि संस्कृत में ही होता आया था। स्वामीजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वेदों का भाष्य संस्कृत के साथ–साथ जन–सामान्य की भाषा हिन्दी में भी करके सृष्टि के आरम्भ से जारी पद्धति को बदल दिया। न केवल वेदों का भाष्य अपितु अपने सभी सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, व्यवहार भानु आदि ग्रन्थ हिन्दी में लिखे जो धार्मिक जगत के इतिहास की अन्यतम घटना है। हमें लगता कि देश के सभी

राजनैतिक दलों एवं विद्वानों ने स्वामी दयानन्द के प्रति घोर पक्षपात का रवैया अपनाया है जिससे उनका पक्षपातरहित न्यायपूर्ण मूल्यांकन आज तक नहीं हो सका। प्राचीनतम धार्मिक साहित्य से सम्बन्धित यह घटना जहाँ वैदिक धर्म व संस्कृति की रक्षा से जुड़ी है वहीं भारत की एकता व अखण्डता से भी जुड़ी है। न केवल वेदों का ही अभूतपूर्व, सर्वोत्तम, सत्य व व्यवहारिक भाष्य उन्होंने हिन्दी में किया है अपितु मनुस्मृति एवं अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अपनी पुस्तकों में उल्लेख करते समय उनके उद्धरणों के हिन्दी में अर्थ भी किए हैं। स्वामी दयानन्द के साथ ही उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज एवं उनके अनुयायियों द्वारा स्थापित गुरुकुलों, डी.ए.वी. कालोजों, आश्रमों आदि द्वारा भी हिन्दी के प्रचार–प्रसार में उल्लेखनीय कार्य किया गया है। गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार में देश में सर्वप्रथम विज्ञान, गणित सहित सभी विषयों की पुस्तकें हिन्दी में तैयार करायीं एवं उनका सफल अध्यापन हिन्दी माध्यम से किया। इस्लाम मजहब की पुस्तक कुरआन को प्रमाणिकता के साथ हिन्दी में सबसे पहले अनुदित कराने का श्रेय भी स्वामी दयानन्द जी को है। इसका प्रकाशन भी किया जा सकता था परन्तु किन्हीं कारणों से यह कार्य नहीं हो सका। यह अनुदित ग्रन्थ उनकी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि जो व्यक्ति जिस देशभाषा को पढ़ता है उसको उसी का संस्कार होता है। अंग्रेजी या अन्यदेशीय भाषा पढ़ा व्यक्ति सत्य, ज्ञान व विज्ञान पर आधारित विश्व वरणीय वैदिक संस्कृति से सर्वथा दूर देखा जाता है। इसके अतिरिक्त वह पाश्चात्य एवं अन्य वाममार्गी आदि जीवन शैलियों की ओर उन्मुख देखा जाता है जबकि इनमें मानवीय संवेदनाओं व मर्यादाओं का अभाव देखा जाता है। इसका उदाहरण इनमें पशुओं के प्रति दया भाव के स्थान पर उन्हें मारकर उनके मांस को भोजन में सम्मिलित किया गया है जो कि भारतीय वैदिक धर्म व संस्कृति के विरुद्ध है। अतः स्वामी जी का यह निष्कर्ष भी उचित है कि हिन्दी व संस्कृत के स्थान पर अन्य देशीय भाषाओं को पढ़ने से मनुष्य वैदिक संस्कारों के स्थान पर उन–उन देशों के संस्कारों से प्रभावित होता है।

एक षडयन्त्र के अन्तर्गत विष देकर दीपावली सन् 1883 के दिन स्वामी दयानन्द की जीवनलीला समाप्त कर दी गई। यदि स्वामीजी कुछ वर्ष और जीवित रहे होते तो हिन्दी को और अधिक समृद्ध करते और इसका व्यापक प्रचार करते। इससे हिन्दी भाषा का वर्तमान स्वरूप व विस्तार आज से कहीं अधिक उन्नत, सरल व सुबोध होता। लेख को निम्न पंक्तियों से विराम देते हैं:

''कलम आज तू स्वामी दयानन्द की जय बोल,
हिन्दी प्रेमी रत्न वह कैसे थे अनमोल।''[५]

संदर्भ संकेत

1. जीवन चरित्र महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती, संपादक –प्रो.नवानीलाल भारतीय, प्र.–आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
2. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य
3. संस्कार प्रकाश अर्थात महर्षि दयानंद सरस्वती प्रगीत संस्कार विधि
4. वही
5. लेखक मनमोहन आर्य, महर्षि दयानंद और आर्य समाज के हिन्दी प्रचार प्रसार में योगदान।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 27-32
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद सरस्वती और आर्य समाज का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान

डॉ. बाबू लाल सैनी
प्राचार्य, श्री आदर्श महिला बी.एड.कॉलेज
श्रीमाधोपुर (सीकर) राजस्थान
सम्पर्क– 9413070538
email: blsaini1976@gmail.com

भारत की राष्ट्रीय अस्मिता को जगाने में आर्य समाज अग्रणी रहा। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने नया दर्शन प्रस्तुत नहीं किया अपितु ब्रह्मा से लेकर जैमिनी ऋषि पर्यन्त आर्ष विचारधारा को समाज के समक्ष प्रतिपादित किया। स्वामी दयानन्द जी ने स्त्रियों को वेदाधिकार से गौरवान्वित किया एवं आर्य समाज द्वारा हिन्दी भाषा को व्यापकता प्रदान की। महर्षि दयानन्द मूलरूप् से गुजराती थे। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित भी थे। महर्षि दयानन्द जी ने 1873 में बाबू केशव चन्द्र जी के परामर्श से जन भाषा हिन्दी को अपनाया। यदि स्वामी जी द्वारा भारत में सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली व समझी जाने वाली लोक भाषा हिन्दी में अपना भाषण दिया जाय तो लोग उनके उपदेशों से अधिक लाभ उठा सकेंगे। जिस समय हिन्दी को उर्दू के समक्ष सिर झुकाने की बात कही जा रही थी उस समय दयानन्द जी ने हिन्दी भाषा को 'आर्य भाषा' के गरिमामयी शब्द से अलंकृत किया था। विष्णु प्रभाकर जी के अनुसार– 'मथुरा के प्रज्ञाचक्षु दण्डी विरजानन्द के बाद बंगाल के महापुरुष ने ही स्वामी दयानन्द की शक्ति और क्षमता का सही आंकलन किया। वह क्षण निश्चय ही हिन्दी भाषा के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया।

आधुनिक काल की राष्ट्रीयता व सामाजिकता का मेरुदण्ड आर्य समाज के संस्थापक द्वारा चलाया गया आन्दोलन ही है। आर्य समाज की हिन्दी पत्रकारिता ने हिन्दी के प्रचार प्रसार में बहुमूल्य योगदान दिया है। आर्यसमाज और हिन्दी के विषय में महाकवि निराला जी ने लिखा है कि–''आज जो जागरण भारत में दिखाई पड़ता है उसका पूर्ण श्रेय आर्यसमाज को ही जाता है।'' राष्ट्र भाषा हिन्दी के भी स्वामी जी एक प्रवर्तक रहे हैं। आर्यसमाज के प्रचार की भाषा तो हिन्दी ही रही है। आर्य समाज ने हिन्दी पत्रकारिता के उन्नयन में ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया है।

पत्रकार और पत्रकारिता का अनन्य सम्बन्ध है जो रचनात्मक कार्य की प्रेरणा देता है। सूक्ष्म मन का स्वामी पत्रकार समाज की चेतना का सजग प्रहरी होता है। इन्द्रवाचस्पति जी ने पत्रकारिता को 'वर्तमान युग का प्रभावशाली आविष्कार' कहा है। आस्कर वाइल्ड ने पत्रकारिता के सम्बन्ध में लिखा है कि– ''आज तो प्रेस ही एकमात्र रियासत है।'' सत्यदेव विद्यालंकार जी ने इसे पाँचवा वेद माना है।

अकबर इलाहाबादी ने लिखा है–''जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।''

भारत में पत्र– पत्रिकाओं का आविर्भाव यूरोपीय जातियों के आगमन से हुआ। अंग्रेजी शासन की नींव सुस्थिर हो जाने के पश्चात् भारत में प्रथम समाचार पत्र 'बंगाल गजट' या 'कलकत्ता जर्नल एडवर्टाइजर' था जिसका प्रकाशन जेम्स ऑगस्ट हिक्की द्वारा 1780 में कलकत्ता से हुआ। ईसाई मिशनरी ने बंगला भाषा में 'दिग्दर्शन' मासिक पत्र निकाला। जब ईसाई प्रचारकों ने 'समाचार दर्पण'पत्र के द्वारा हिन्दू धर्म पर हमले करने प्रारम्भ किये तब राजाराम मोहन राय जी ने 'बंगदूत' पत्र निकाला जिसमें बंगला, हिन्दी और फारसी भाषा के लेख छपते थे। भारतवर्ष में हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ 19वीं शदी की तृतीय दशाब्दी से हुआ। हिन्दी के पत्र संचालन की प्रेरणा अंग्रेजी और बंगला भाषाओं से मिली। हिन्दी भाषा का प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' 30 मई 1826 को पं जुगल किशोर के सम्पादकत्व में कलकत्ता से

प्रकाशित हुआ। हिन्दी भाषी प्रदेश का प्रथम साप्ताहिक पत्र 'बनारस अखबार' 1845 में प्रकाशित हुआ। इस पत्र की भाषा उर्दूमयी थीं। 1850 में 'सुधाकर' नामक पत्र निकला जिसे अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने भाषा की शुद्धता की दृष्टि से हिन्दी का प्रथम पत्र स्वीकारा है। हिन्दी भाषा का सर्वप्रथम दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' 1854 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ जो कि द्वैभाषिक था। इसके बाद हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में 1857 के क्रान्ति युद्ध के बाद कुछ समय के लिए गतिरोध उत्पन्न हो गया क्योंकि समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

जिस समय मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना हुई और उसके नियम निर्धारित किये गये उस समय साप्ताहिक पत्र 'आर्य प्रकाश' के प्रकाशित किये जाने का संकल्प लिया गया। मुम्बई में निर्धारित नियम 5, 12 एवं 25 में 'आर्य प्रकाश' पत्रिका का उल्लेख इस प्रकार किया गया–

'प्रधान समाज' और एक 'आर्य प्रकाश' पत्र यथानुकूल आठ–आठ दिन में निकलेगा। नियम संख्या 12 पत्र की व्यवस्था के लिए आर्य सभासदों द्वारा धन दिये जाने तथा नियम संख्या 25 में 'आर्य प्रकाश' पत्र की दशा एवं उन्नति के लिए आर्य सभासदों को प्रवृत्त किया गया।

महर्षि दयानन्द पत्रकारिता द्वारा धर्म प्रचार व्यापक रूप से करना चाहते थे। वे स्वयं कोई पत्र नहीं निकाल सके परन्तु आर्य समाजियों को पत्रों को निकालने के लिए प्रोत्साहित किया। स्वामी जी के समकालीन नेताओं, सुधारकों एवं साहित्यकारों ने उसके विचारों से प्रभावित होकर हिन्दी प्रसार को अपने जीवन का ध्येय बनाया। गाँधी जी ने स्वामी जी के विचारों से प्रबल प्रेरणा ग्रहण की। भारतेन्दु जी ने 'कवि वचन सुधा' पत्रिका के सम्पादक मण्डल में स्वामी जी को समाविष्ट किया। हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में दयानन्द जी के महत्त्व का प्रतिदान करते हुए ज्ञानवती दरबार ने लिखा है कि–'स्वामी दयानन्द के खण्डन मण्डन के उत्साह के बिना क्या सहसा देश भर में हिन्दी पत्र पत्रिकाओं का उदय होना संभव था।''

स्वामी दयानन्द जी की आवश्यक सूचनाएँ, प्रतिपादित वैदिक धर्म के प्रति मिथ्या धारणाओं का निराकरण, विज्ञापन आदि तत्कालीन पत्र 'भारत मित्र' में छपा करते थे। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए आर्य समाज ने अपने पत्रों का संचालन प्रारम्भ किया। भारतेन्दु काल के पं राधाचरण गोस्वामी ने माना कि स्वामी दयानन्द प्रदर्शित मार्ग से ही हिन्दू धर्म की उन्नति हो सकती है। बाल कृष्ण भट्ट जी ने आर्य–समाज की कर्मठता तथा जीवन्तता को अनुभव करते हुए लिखा है कि 'जीवन यदि किसी सम्प्रदाय या समाज में है तो वह आर्य समाज में है। स्वामी दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्य समाज ने हिन्दी का प्रचार कर उर्दू के माहौल को हिन्दीमय बना दिया। आर्य समाज के माध्यम से ज्ञान मूलक व रसात्मक दोनों प्रकार से साहित्य की अभूतपूर्व वृद्धि हुई। आर्य समाज हिन्दी के सम्वर्द्धन के मैदान में अग्रगामी बना। भारत में प्रथम शिक्षणालय जिसमें हिन्दी भाषा के माध्यम से सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, वह गुरुकुल कांगड़ी है। आर्य समाज ने न केवल अपने सदस्यों को हिन्दी सीखने की प्रेरणा दी अपितु हिन्दी में कार्यवाही लिखने का आदेश भी दिया। आर्य समाज ने भवानीलाल संन्यासी, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय जैसे प्रतिभाशाली वक्ता प्रदत्त किये जो कि हिन्दी में ही व्याख्यान दिया करते थे। कांग्रेस के इतिहास में 1919 में अमृतसर में कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द का व्याख्यान हिन्दी का प्रथम व्याख्यान माना जाता है। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक जी ने 1919 में जर्मन रेडियो पर प्रथम हिन्दी व्याख्यान दिया। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जी ने लिखा है कि 'आर्य समाज के कारण व्याख्यानों की धूम मची जिससे हिन्दी भाषा का समस्त उत्तरी भारत में प्रचार हुआ। व्याख्यानों के समान आर्य समाजियों ने अनेक शास्त्रार्थ महारथी यथा–पंडित लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द, बुद्धदेव विद्यालंकार, पं. रुद्रदत शर्मा पैदा किये जिनके शास्त्रार्थों से हिन्दी का हित सम्पादन हुआ। इस सम्बन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि 'इन वाद–विवादों ने भाषा को बहुत समृद्ध किया और प्रौढ़ता प्रदान करने में बड़ी सहायता पहुँचायी। आर्य समाज के प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रभावों द्वारा हिन्दी को सुधारवादी जन आन्दोलन की भूमिका प्राप्त हुई।

आर्यसमाज के मन्तव्यों के प्रचारार्थ नये साधन को अपनाया गया, वह पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन था। 1822 में लाल रत्न चन्द बेरी द्वारा 'आर्य मैगजीन' नामक मासिक पत्र निकाला गया। लाला शालिग्राम के प्रस्ताव से दो पत्रिकाएँ यथा 'रीजनरेटर ऑफ आर्यावत' एवं 'देशोपकार' प्रकाशित हुई। इन पत्रिकाओं के प्रकाशन में लाला लाजपत राय, लाला हंसराज, लाला शिवनाथ, और पं. गुरुदत के नाम उल्लेखनीय हैं। आर्य समाज की हिन्दी पत्रकारिता ने देश को राष्ट्रीय संस्कृति, धर्म चिन्तन, स्वदेशी का पाठ पढ़ाया। लक्ष्मी नारायण दूबे जी ने लिखा है कि 'आर्य समाजी हिन्दी पत्रकारिता वास्तव में आधुनिक काल का इतिहास तथा भारतीय स्वतंत्रता समर की प्रेरणाप्रद गाथा है।

आर्य समाज के प्रारम्भिक काल में प्रमुख पत्र 'आर्य दर्पण', 'आर्य भूषण', 'आर्य समाचार', 'भारत सुदशा प्रवर्तक'

आदि पत्रों में मूर्ति पूजा, अवतारवाद, श्राद्ध, विधवा विवाह आदि विषयों पर विवाद चलते थे। आर्य समाज की पत्रकारिता के द्वितीय काल में विभिन्न शिक्षण संस्थाएँ, संस्कृत पाठशालाएँ, अनाथालय, विधवाश्रम, दलितोद्धार सभाएँ, शुद्धि सभाएँ आदि प्रचारित होने लगी। गुरुकुल कांगड़ी और जवालापुर से 'वैदिक मैगजीन' और 'भारतोदय' जैसे उत्कृष्ट पत्र निकले। सभाओं व संस्थाओं के अतिरिक्त व्यक्तिगत प्रयत्नों ने भी आर्य समाज की पत्रकारिता को प्रभावित किया। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का 'वैदिक धर्म', स्वामी विद्यानन्द की 'सविता', भारतेन्द्रनाथ का 'जनज्ञान' संस्था की अपेक्षा संचालकों के वैयक्तिक प्रयत्नों से उन्नति कर सके। 'सद्धर्म प्रचारक' ने भारतेन्दु युग में उर्दू को हिन्दीमय बनाने का कार्य किया गया।

भारतेन्दु युग की 'कवि वचन सुधा', 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' आदि पत्रिकाएँ व 'परोपकारी', 'आर्यमित्र', 'आर्य सेवक' आदि पत्र नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे। व्यापक प्रचार की दृष्टि से आर्य समाजी पत्र–पत्रिकाओं ने हिन्दी को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा मुंशीराम जी ने आदर्श पत्रकार के रूप में अपने गौरव को प्रतिष्ठित किया। जब वे महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बने तब 'सद्धर्म प्रचारक' के सम्पादन का कार्यभार अपने पुत्र को सौंपकर स्वयं गुरुकुल कांगड़ी से 'श्रद्धा' नामक साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया। साप्ताहिक पत्रकारिता से दैनिक पत्रकारिता की शिक्षा उन्होंने अपने शिष्यों को दी जोकि अत्यधिक फलवती हुई बल्कि कालान्तर में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने 'अर्जुन', 'वीर अर्जुन', 'नवराष्ट्र', 'जनसत्ता' दैनिक के सम्पादक के रूप में हिन्दी पत्रकारिता की जो नींव डाली उसी पर आज भव्य भवन की विनिर्मिति हुई है।

द्विवेदी युग के अन्त तक मुंशी प्रेमचन्द व सुदर्शन आर्यसमाज के प्रभाव से उर्दू से हिन्दी में शामिल हुए। द्विवेदी युग में उर्दू को हिन्दीमय बनाने में साप्ताहिक 'प्रकाश' का प्रमुख योगदान रहा। आर्य समाज की कन्या पाठशाला में कन्याओं को हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्रद त्त कर हिन्दीमय वातावरण तैयार किया। राजाराम शास्त्री व संतराम बी ए ने पंजाब से 'उषा' पत्रिका निकाली जबकि उषा शब्द भी पंजाबियों को कठिन प्रतीत होता था। इन्द्रविद्यावाचस्पति ने स्नातक बनने से पहले 'सद्धर्म प्रचारक' का सम्पादन करना प्रारम्भ कर दिया जबकि इन्द्रविद्यावाचस्पति ने दस पन्द्रह दिनों के लिए 'सद्धर्म प्रचारक' का दैनिक संस्करण भी प्रकाशित किया। 1918 में वाचस्पति जी ने दिल्ली का प्रथम दैनिक 'विजय' निकालना शुरु किया। पहले दिन विजय की 70 प्रतियां बिकी किन्तु देखते ही देखते इस पत्र की 15000 प्रतियां कम पड़ने लगी। स्त्री शिक्षा के कारण महिलोपयोगी पत्र–पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लिखा है कि 'दिल्ली उर्दू बेगम की दिलदाद दिल्ली में हिन्दी के दैनिक की इतनी खपत होती थी कि प्रत्येक आर्या देवी को विजय के साथ प्रेम था। राय बहादुरों तक की देवियां घर में पैर नहीं रखने देती थी जब तक वे ताजा 'विजय' का पर्चा हाथ में न लेकर आयें।

1923 में वाचस्पति जी ने दिल्ली से ही 'सत्यवादी' साप्ताहिक पत्र का का प्रकाशन किया व सप्ताह में दो दिन निकलने वाला वैभव भी सम्पादित किया। अर्जुन के दशाब्दी समारोह पर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पधारकर आशीर्वाद दिया कि ' वीर अर्जुन के रजत जयन्ती के अवसर पर मेरी हार्दिक बधाई। पिछले 25 वर्षों से दिल्ली के प्रभावशाली क्षेत्र में शक्ति पाकर देश की सेवा की है और हिन्दी का मान रखा–––वह चिरंजीवी हो और इन्द्र जी के करों में हिन्दी प्रेम गाण्डीव सदा राष्ट्रीयता की रक्षा करे। क्षेमेन्द्र सुमन जी ने इन्द्र जी को 'हिन्दी पत्रकारिता गगन का प्रकाशमान नक्षत्र' बतायाव उन्होंने लिखा है कि 'वास्तव में यदि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के क्रियाकलाप पर दृष्टि डालें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक काल के जितने भी प्रमुख साहित्यकार हुए हैं, वे सब आर्य समाज से प्रभावित विचारधारा के पोषक थे।

हिन्दी पत्रकारिता में भवानी लाल भारतीय जी का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने मासिक 'आर्यावर्त' व 'धर्मवीर' के सहकारी सम्पादक के रूप में पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया। 5 मई 1928 को निजी साप्ताहिक हिन्दी प्रारम्भ किया–'हिन्दी का प्रकाश फैलाने के लिए मैंने अपने तन का दिया, मन की बाती एवम् रक्त का तेल बनाया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सितम्बर 1948 को 'प्रवासी' पत्र अजमेर से शुरु किया जोकि प्रतिष्ठित पत्र माना जाता है।

उच्चकोटि के पत्र लाला देवराज ने दक्षिण भारत के आर्येतर भाषाभाषी प्रदेश का एकमेव हिन्दी दैनिक 'हिन्दी मिलाप' हैदराबाद से निकाला। अद्भुत सामर्थ्य समपन्न लेखनी से महाशय कृष्ण ने 1955 में 'वीर प्रताप' दैनिक जालन्धर से निकाला। आर्यसमाजी पत्रकारों ने आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने 'संजीवन' मासिक, कृष्णचन्द्र विद्यालंकार जी ने 'सम्पदा', राम नारायण जी ने 'भूगोल' विषयक पत्र निकाले। 18 आर्यसमाज की अधिकांश प्रान्तीय सभाएँ अपना मासिक पत्र प्रकाशित कर रही हैं। 'आर्य दर्पण' मुंशी बख्तावर सिंह के सम्पादकत्व में शाहजहाँपुर से निकला। फर्रुखाबाद से गणेशप्रसाद के सम्पादकत्व में 'भारत सुदशा प्रवर्तक' पत्र निकला। कानपुर से 'वेद प्रकाश', बरेली से 'आर्य पत्र', मेरठ

से 'आर्य समाचार' व 'दयानन्द पत्रिका', प्रयाग से 'आर्य सिद्धान्त' व 'वेदोदय', उत्तर प्रदेश का 'आर्य मित्र', जालन्धर की 'पाँचाल पण्डिता', नरसिंहपुर से 'आर्य सेवक', ज्वालापुर से 'भारतोदय', बनारस से 'वेदवाणी', अजमेर से 'अनाथ रक्षक'लखनउ से 'आर्य कुमार' व 'वेद ज्योति, अजमेर से 'वैदिक विज्ञान' व 'वेद मार्ग' इन्दौर से 'आर्यावर्त', बिजनौर से 'पुण्यलोक', दिल्ली से 'राजधर्म', मुजफफर नगर से 'संस्कृति संदेश', बहादुरगढ़ से 'आत्मशुद्धि पथ', मुम्बई से 'आर्य विनय', गाजियाबाद से 'महर्षि संदेश' आदि पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थी। भवानी लाल भारतीय जी ने आर्यसमाज की हिन्दी सेवा के बारे में लिखा है कि 'राष्ट्र भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए आर्यसमाज ने जो कार्य किया, वह तो इतिहास का एक अमर पृष्ठ बन चुका है।

आर्य समाज अपने जन्म से ही सार्वभौम मानव आन्दोलन के रूप में विकसित हुआ अतः यह स्वाभाविक था कि भारत से इतर देशों अफ्रीका, मॉरिशस, फिजी, गुआना, सूरीनाम, ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका आदि पश्चिमी देशों में प्रवासी भारतीयों को वैदिक धर्म व संस्कृति से परिचित करवाने हेतु विदेशों में अनेक आर्य सामाजिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका से 'धर्मवीर' नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। भवानी दयाल ने अपनी पत्नी जगरानी के आग्रह पर 'हिन्दी' नामक मासिक पत्रिका निकाली जो कि प्रवासी भारतीयों में अत्यधिक लोकप्रिय हुई। आर्य प्रतिनिधि सभा दक्षिण अफ्रीका का 'आर्य मित्र' नामक मुख पत्र भी निकला। आर्य प्रतिनिधि सभा पूर्वी अफ्रीका कीनिया 'प्रतिनिधि' नामक मुख पत्र भी निकला। आर्य समाज नैरोबी ने 'आर्य वीर' नामक पत्र निकला। मॉरिशस में आर्य समाज का प्रसार हिन्दी भाषी लोगों की संख्या पर आधारित है।

मॉरिशस से 'आर्य पत्रिका', 'आर्यवीर', 'आर्योदय', 'मारिशस मित्र' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ। टिनिडाड से 'आर्य संदेश' का प्रकाशन हुआ। सूरीनाम की आर्य दिवाकर सभा ने 'वैदिक संदेश', 'प्रकाश' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। फीजी द्वीप में कृष्ण शर्मा व विष्णुदत जी के सहयोग से साप्ताहिक पत्र 'वैदिक संदेश' व 'फीजी समाचार', 'जय फीजी', 'फीजी संदेश', 'जागृति' नामक पत्रों का प्रकाशन हुआ। सीलोन में क्रान्तिकारी आन्दोलन उद्घोष के परिणामस्वस्प अमेरिका में केशवदेव शास्त्री, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। वर्तमान समय में आर्य समाज से समन्वित विभिन्न सभाओं द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों से प्रसारित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं की सूची निम्नलिखित प्रकार है –

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन का 'पवमान', मासिक पत्र।
आत्म शुद्धि आश्रम, बहादुरगढ़ का 'आत्म शुद्धि पथ' मासिक पत्रिका।
आर्य प्रतिनिधि सभा, महाराष्ट का 'वैदिक गर्जना', मासिक पत्रिका।
आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार का 'आर्य संकल्प', मासिक पत्रिका।
मध्य भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा का 'वैदिक रवि', मासिक पत्रिका।
विश्वेश्वरा वैदिक शोध संस्थान, 'विश्वज्योति', मासिक पत्रिका।
श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास का 'सत्यार्थ सौरभ', मासिक पत्रिका।
आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 'दयानन्द संदेश', मासिक पत्रिका।
महर्षि दयानन्द स्मृति भवन न्यास का 'महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश', मासिक पत्रिका।
सत्यार्थ प्रकाशन, मथुरा का 'तपोभूमि', मासिक पत्रिका।
आर्य समाज, मुम्बई, 'नूतन निष्काम पत्रिका', मासिक पत्रिका।
आर्य समाज, दिल्ली, 'आर्य प्रेरणा', मासिक पत्रिका।
आर्य समाज, कोलकाता, 'आर्य संसार', मासिक पत्रिका।
गुरुकुल, झज्जर, 'सुधारक', मासिक पत्रिका।
श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक टस्ट का 'टंकारा समाचार', मासिक पत्रिका।
प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, छत्तीसगढ़, 'अग्निदूत', मासिक पत्रिका।
आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्य प्रदेश और विदर्भ, 'आर्य सेवक', मासिक पत्रिका।
गुरुकुल महाविद्यालय, जबलपुर, 'भारतोदय', मासिक पत्रिका।
केरल वैदिक मिशन, नई दिल्ली का 'आर्य मुसाफिर', मासिक पत्रिका।
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक 'आर्य सन्देश', साप्ताहिक पत्रिका।
आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का 'आर्य मर्यादा', साप्ताहिक पत्रिका।
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, 'आर्य जगत', साप्ताहिक पत्रिका।

आर्य प्रतिनिधि सभा, उतर प्रदेश का 'आर्य मित्र', साप्ताहिक पत्रिका।
आर्य प्रतिनिधि सभा, हरियाणा, का 'आर्य प्रतिनिधि', साप्ताहिक पत्रिका।
आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान, 'आर्य मार्त्तण्ड', पाक्षिक पत्रिका।
आर्य प्रतिनिधि सभा, आन्ध्र प्रदेश का 'आर्य जीवन', पाक्षिक पत्रिका।
आर्य परोपकारिणी सभा का 'परोपकारी', पाक्षिक पत्रिका।
आर्य सवंर्द्धनी सभा का 'सवंर्द्धनी', वार्षिक पत्रिका।

आर्य समाज के साहित्यकारों ने मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता को नव्य आलोक प्रदान किया। आर्य समाज के माध्यम से हिन्दी साहित्य व पत्रकारिता की जो सेवा हुई है, वह इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसके उल्लेख के बिना साहित्य और पत्रकारिता का इतिहास अधूरा रह जाता है। आर्य समाज हिन्दी भाषा व साहित्य के लिए सदैव पथ प्रदर्शक रहा है। आर्य समाज ऐसा भट्ठा है जिसने पिछले सौ वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता के भवन को अगणित चट्टानें, ईटें, स्वर्णिम कलश कंगूरे प्रदान किये हैं। आर्य समाज द्वारा अपनाये गये उपादान हिन्दी भाषा व साहित्य को नवीनतम दिशा प्रदान करते रहेंगे।

सारांश

आर्य समाज हिन्दी के सम्वर्धन के मैदान में अग्रगामी बना। आर्य समाज की हिन्दी पत्रकारिता ने देश को राष्ट्रीय संस्कृति, धर्म चिन्तन, स्वदेशी का पाठ पढ़ाया। आर्यसमाज के माध्यम से ज्ञानमूलक व रसात्मक दोनों प्रकार से साहित्य की अभूतपूर्व वृद्धि हुई। आधुनिक काल की राष्ट्रीयता व सामाजिकता का मेरुदण्ड आर्य समाज के संस्थापक द्वारा चलाया गया आन्दोलन है। आर्य समाज की हिन्दी पत्रकारिता ने हिन्दी के प्रचार प्रसार में बहुमूल्य योगदान दिया है। हिन्दी भाषा का प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' 30 मई 1826 को पं जुगल किशोर के सम्पादकत्व में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। ऋषि दयानन्द पत्रकारिता द्वारा धर्म प्रचार व्यापक रूप से करना चाहते थे, वे स्वयं कोई पत्र नहीं निकाल सके परन्तु आर्य समाजिकों को पत्रों को निकालने के लिए प्रोत्साहित किया। आर्यसमाज के प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रभावों द्वारा हिन्दी को सुधारवादी जन आन्दोलन की भूमिका प्राप्त हुई। हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए आर्यसमाज ने जो कार्य किया, वह तो इतिहास का एक अमर पृष्ठ बन चुका है। आर्य समाज की विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रसारित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं में 'पवमान', 'आत्म शुद्धि पथ', 'वैदिक गर्जना', 'आर्य संकल्प', 'वैदिक रवि', 'विश्वज्योति', 'सत्यार्थ सौरभ', 'दयानन्द संदेश', 'महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश', 'तपोभूमि', 'नूतन निष्काम पत्रिका', 'आर्य प्रेरणा', 'आर्य संसार', 'सुधारक', 'टंकारा समाचार', 'अग्निदूत', 'आर्य सेवक', 'भारतोदय', 'आर्य मुसाफिर', 'आर्य सन्देश', 'आर्य मर्यादा', 'आर्य जगत', 'आर्य मित्र', 'आर्य प्रतिनिधि', 'आर्य मार्तण्ड', 'आर्य जीवन', 'परोपकारी', 'सवंर्द्धनी'आदि मासिक, पाक्षिक व वार्षिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिससे हिन्दी पत्रकारिता को नव्य आलोक मिल रहा है। आर्य समाज के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता की जो सेवा हुई है, वह इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसके उल्लेख के बिना साहित्य और पत्रकारिता का इतिहास अधूरा रह जाता है। आर्य समाज ऐसा भट्ठा है जिसने पिछले सौ वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता के भवन को अगणित चट्टानें, ईटें, स्वर्णिम कलश कंगूरे प्रदान किये हैं। आर्य समाज द्वारा अपनाये गये उपादान हिन्दी भाषा व साहित्य को नवीनतम दिशा प्रदान करते रहेंगे।

कलम आज तू स्वामी दयानन्द की जय बोल।
हिन्दी प्रेमी वे कैसे थे अनमोल।।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 भवानी लाल भारतीय, वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाज दर्शन, व्याख्यान माला, पृ० 409।
2 महाकवि निराला, लेख महर्षि दयानन्द और युगान्तर ग्रन्थ, पृ० 9।
3 संतराम बी ए, हिन्दी साहित्य सम्मेलन–रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ, मुझे क्यों और कैसे हिन्दी से प्रेम हुआ, पृ० 67।
4 कमलापति त्रिपाठी, पत्र और पत्रकार, पृ० 13।
5 सत्यदेव विद्यालंकार, समाचार पत्र–सूची की प्रस्तावना, पृ० 6।
6 चन्द्रभानु सोनवणे, आर्य समाज और हिन्दी साहित्य, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ० 257।
7 सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास, पांचवां भाग, सत्रहवां अध्याय, पृ० 424।
8 ज्ञानवती दरबार, भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा, पृ० 239।

9 भवानी लाल भारतीय, हिन्दी काव्य को आर्य समाज की देन, राम लाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, पृ० 43।
10 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1941, पृ० 58।
11 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 173।
12 लक्ष्मी नारायण दूबे, हिन्दी साहित्य में आर्य समाज की अभिव्यक्ति, पृ० 72।
13 चन्द्रभानु सोनटक्के, आर्य समाज और हिन्दी साहित्य, पृ० 251।
14 इन्द्र वाचस्पति, पत्रकारिता के अनुभव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ० 82।
15 सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास, पांचवा भाग, सत्रहवां अध्याय, आर्य स्वाध्याय केन्द्र, नई दिल्ली, 1982, पृ०427।
16 स्वामी श्रद्धानन्द, कल्याण मार्ग का पथिक, महर्षि दयानन्द भवन, दिल्ली, पृ० 74।
17 क्षेमेन्द्र सुमन, दिवंगत हिन्दी सेवी, सन्दर्भ ग्रन्थ, खण्ड 1, मधुर प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 248।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 33-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आर्य समाज और हिंदी

प्रा. डॉ. गजानन चव्हाण
हिंदी विभाग प्रमुख, श्रीमती गंगाबाई खिवराज घोडावत कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपुर।
Email: chavangajanan1980@gmail.com
दूरभाष –9890277316

19वीं शताब्दी में भारतीय पुर्नजागरण के अनेक कारण थे। जिसमें चार प्रमुख थे। ब्रिटिश शासन की स्थापना, प्राच्यवदियों द्वारा भारत के अतीत को वैभवशाली बताना, उत्कृष्ट रचनात्मक साहित्य तथा ईसाई धर्मप्रचारकों का दुष्प्रभाव था। जिनकी यह मान्यता थी कि भारत में ईसाई धर्म के प्रचार से ब्रिटिश साम्राज्य सुरक्षित रहेगा। यह सभी कारण भारतीय समाज सुधार की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय समाज में सुधार आंदोलनों में प्रमुख रूप से चार प्रवृत्तियाँ मिलती हैं– 1. आन्तरिक सुधार 2.विधानों या कानूनों के माध्यम से सुधार 3.परिवर्तन के प्रतीकों के माध्यम से सुधार 4. सामाजिक कार्यों के माध्यम से सुधार। इनमें से सामाजिक कार्यों के माध्यम से सुधार में विशेषतया महर्षि दयानंद सरस्वती के आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन और महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की प्रमुखता रही है। इनमें विशेष रूप से आर्य समाज ने हिंदी को प्रभावित किया है। 1875 ई. में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की थी। कुछ वर्ष बाद आर्य समाज का मुख्यालय लाहौर में स्थापित किया गया। महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदु धर्म में सुधार के लिए प्रारंभ किया। जिसमें शुद्ध वैदिक परंपरा में विश्वास करते थे। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, बलि, झूठे कर्मकांड एवं अंधविश्वास का विरोध किया। साथ ही आर्य समाज ने चार्तुवर्ण समाज व्यवस्था का जन्म के बदले कर्म के आधार पर स्वीकार किया। सामाजिक तथा शैक्षिक मामलों में स्त्री–पुरुष समान अधिकारों का समर्थन किया। छुआछूत, जातिभेद, बाल–विवाह का भी विरोध किया तथा विधवा पुनर्विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया। आर्य समाज से जुड़े लोग ही भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ–साथ भारत की संस्कृति, भाषा, धर्म, शिक्षा आदि के क्षेत्र में सक्रीय रूप से जुड़े रहे। स्वामी दयानंद की मातृभाषा गुजराती थी और उनका संस्कृत का ज्ञान बहुत अच्छा था, किंतु केशवचंद्र सेन की सलाह से उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिंदी में की थी। स्वामी दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा क्रांतिकारी ग्रंथ हिंदी में लिखकर हिंदी को एक प्रतिष्ठा दी। आर्य समाज ने हिंदी को 'आर्यभाषा' पद से सम्मानित किया। सभी आर्य समाजियों के लिए हिंदी का ज्ञान होना आवश्यक बताया तो स्वामी दयानंद ने वेदों की व्याख्या संस्कृत के साथ–साथ हिंदी में की। आगे जाकर संस्कृत भाषण की जगह हिंदी भाषा में व्याख्यान देकर जनसाधरण में हिंदी को प्रचलित बनाने का प्रयास किया। स्वामी दयानंद सरस्वती की इच्छा थी कि जनभाषा हिंदी ही राजमहलों से लेकर गरीब की झोपड़ी तक पहुँचनेवाली संपर्क भाषा है। हिंदी के प्रचार को मुख्य सुधार की नींव मानकर उसे राजभाषा का स्थान प्रदान करने की दृष्टि से अंग्रेजी शासन में स्वामीजी ने प्रयत्न किए थे।

आर्य समाज ने भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। स्वामी दयानंद ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम को असफल होते देखा था। वह असफल होने का मुख्य कारण भारतीय समाज में एकता की कमी होना था। आर्य समाज के प्रभाव से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर स्वदेशी आंदोलन हुआ था। उस समय आर्य समाज ही सर्वाधिक शक्तिशाली आंदोलन था। स्वामी दयानंद जी ने स्वतंत्रता आदोलन को नजदिकी से देखा था। भारत देश को एक सूत्र में जोड़ना है तो उसकी एक भाषा होना अत्यंत आवश्यक है। स्वामी दयानंद जी इस समस्या के समाधान के लिए हिंदी भाषा को ही इसके योग्य समझा। स्वयं की गुजराती भाषा होते हुए भी उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में गौरवान्वित किया। अपने जीवनकाल में भाषण, लेखन, शास्त्रार्थ, उपदेश एवं आर्य समाज

का कार्य हिंदी में ही शुरू किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने सभी ग्रंथ हिंदी भाषा में लिखे थे। जैसे– सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेद भाष्य, वेदभाष्य की भूमिका आदि रचनाएँ। इन सभी ग्रंथों के सैकडों संस्करण छपे और देश के सभी भागों में प्रचार और प्रसार के लिए हिंदी भाषा का उपयोग किया जो आगे जाकर सभी आर्य समाजी ने इसका पालन किया। हिंदी को आर्य भाषा मानने के लिए हिंदी साहित्यकार में भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्री प्रताप नारायण मिश्र, श्री. बालकृष्ण भट्ट, श्री बद्रीनाथ चौधरी 'प्रेमधन' और राधाचरण गोस्वामी भी स्वामी दयानंद की एक बैठक में उपस्थित थे और स्वीकार भी करते हैं। "स्वामीजी ने हिंदी के प्रचार की मुख्य सुधार की नींव मानकर उसे राजभाषा का स्थान प्रदान करने की दृष्टि से शासन दरबार में प्रयत्न भी किए। स्वामीजी ने देशी राज्यों के शासकों को हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए प्रेरित किया। इसीकारण 1950 में क. आ. मुंशी ने कहा था–'पचास वर्ष के लगभग हुए मैंने स्वामी दयानंद की शिक्षा प्रभाव अनुभव किया कि देश की एकता के लिए हिंदी का राजभाषा होना आवश्यक है।'"[1] स्वामीजी के निधन के बाद आर्य समाज के सदस्यों ने हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए बहुत बड़ा योगदान दिया। आर्य समाजी ने पूरे भारत में लाखों पुस्तकें हिंदी भाषा में अलग–अलग विषयों को केंद्र में रखकर लिखा। साथ ही गद्य–पद्य, काव्य, निबंध आदि साहित्य प्रकार हिंदी भाषा में लिखकर लोगों को भाषा से परिचित करवाया। आर्य समाज ने हिंदी में पत्र–पत्रिकाएँ भी निकाली। आगे जाकर स्वामी श्रद्धानंद ने हानि उठाकर अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन देवनागरी लिपि हिंदी में किया जबकि उनका प्रकाशन उर्दू में होना था। आर्य दर्पण (आर्य समाज का सर्वप्रथम हिंदी पत्र), आर्य भूषण, आर्य समाचार, भारत सुदशा प्रवर्तक, वेद प्रकाश, आर्य पत्र, आर्य समाचार, आर्य विनय, आर्य भगिनी जैसी पत्र–पत्रिकाएँ बीसवीं शताब्दी के पहले ही शुरू हो गयी। उसके बाद पत्रिकाओं की संख्या बढ़ती गयी। प्रमुखतः पंजाब के सभी प्रसिद्ध अखबार प्रताप केसरी, अर्जुन, युगांतर आदि अनेक आर्य समाज के हिंदी में निकलते थे।

स्वामी दयानंद के बाद आर्य समाज से मुंशी प्रेमचंद, सुदर्शन, आचार्य रामदेव, इंद्र विद्यावाचस्पति, सुमित्रानंदन पंत, मैथिलीशरण गुप्त, हरिवंशराय बच्चन, विष्णु प्रभाकर आदि हजारों साहित्यकार आर्य से दीक्षित और प्रेरित थे। आर्य समाज ने गुरुकुलों, स्कूलों और कालेजों में हिंदी भाषा को प्राथमिकता ही दी है। 1892–93 में स्वामी दयानंद के पाश्चात्य शिक्षा को लेकर आर्य समाज में दो गुट बन गए थे। एक गुट पाश्चात्य शिक्षा का विरोधी था तथा दूसरा गुट पाश्चात्य शिक्षा का समर्थक था। पाश्चात्य शिक्षा के विरोधियों में स्वामी श्रद्धानंद, लेखराम, मुंशीराम प्रमुख थे। इन लोगों ने 1902 ई. में 'गुरुकुल' की स्थापना की थी। पाश्चात्य शिक्षा समर्थकों में हंसराज, लाला लाजपतराय थे। इन्होंने दयानंद ऐग्लों वैदिक कॉलेज (1889 ई॰) स्थापना की। दोनों गुटों ने शिक्षा में हिंदी को प्राथमिकता देते हुए नवीन पाठ्यक्रम की पुस्तकों की रचना, विज्ञान, गणित, समाजशास्त्र, इतिहास आदि विषयों में हिंदी माध्यम को महत्त्व दिया। विदेशी में भवानी दयाल संन्यासी, भाई परमानंद, गंगा प्रसाद उपाध्याय, डॉ. चिरंजीव भारद्वाज आदि ने हिंदी भाषा में प्रवासी भारतीय साहित्य के प्रचार–प्रसार को महत्त्व दिया। स्वामी श्रद्धानंद ने न्यायालय में दृष्कर भाषा के स्थान पर हिंदी भाषा का प्रयोग करने का प्रयास किया। वीर सावरकर हिंदी भाषा और आर्य समाज के स्वामी दयानंद के देन पर लिखते हैं–"महर्षि दयानंद द्वारा लिखित 'सत्यार्थ प्रकाश' में जिस हिंदी के दर्शन हमें मिलते है वही हिंदी हमें स्वीकार है। यह सरल, अनावश्यक विदेशी शब्दों से अलिप्त होकर भी अत्यंत अर्थ वाहक तथा प्रवाही है। महर्षि दयानंद ही नेता थे जिन्होंने हिंदुस्तान के अखिल हिंदुओं की राष्ट्रभाषा हिंदी है।"[2] शहीद भगत सिंह के दादाजी और पिताजी भी आर्य समाजी थे। भगतसिंह ने आर्य समाज के महत्त्वकेसाथपंजाब की भाषा तथा लिपि विषयक समस्या को बताते हुए हिंदी भाषा का समर्थन किया। इसी तरह अनेक राजनेताओं, समाज सुधारकों, साहित्यकारों ने आर्यसमाज का हिंदी के प्रति योगदान स्वीकार किया है।

कुल मिलाकर आर्य समाज के दो अत्याधिक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय योगदान रहे हैं। इसने हिंदी भाषा से लोगों के मन में भारत के अतीत के प्रति गौरव की भावना जागृत की तथा पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को समझाया। आर्य समाज का हिंदी के प्रति स्वामी दयानंद के निधन (1883 ई.) के बाद कार्य बढ़ता गया। आज शिक्षा के प्रचार–प्रसार में आर्य समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसप्रकार स्वामी दयानंद और आर्य समाज की हिंदी भाषा को देन महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. डॉ. चंद्रभानु सोनवणे, हिंदी गद्य साहित्य, पृ. 78
2. वीर सावरकर, वीरवाणी, पृ. 64

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 35-38

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैदिक संस्कृत साहित्य का आर्य समाज और हिंदी साहित्य पर प्रभाव

गोविन्द कुमार 'धारीवाल'
(सेट, पीएच.डी संस्कृत साहित्य)
सहायक अध्यापक (हिन्दी भाषा)
रा. इ. का. धोपड़धार टिहरी गढ़वाल उत्तराखंड
Email : gkdhariwal1987@gmail.com Phone : 9536352124

संस्कृत भाषा सभी भारतीय भाषाओं की जननी है और संस्कृत साहित्य सभी साहित्यों में सर्वश्रेष्ठ साहित्य है। प्राचीन वैदिक साहित्य विश्व के सभी प्राचीन साहित्यों में से एक है जो संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक है। यह कहने में संशय नहीं है कि संस्कृत साहित्य विश्व के सभी साहित्यों में सर्वश्रेष्ठ साहित्य हैं। इस साहित्य का ज्ञान भंडार इतना विशाल है कि विश्व के अनेक देशों में संस्कृत साहित्य की रचनाओं को अनुदित करके इसके ज्ञान का प्रचार–प्रसार अनेक भाषाओं में किया जा रहा है। अतः वैदिक साहित्य में रचित सभी ग्रंथ आज भारत की ही नहीं अपितु विश्व की सर्वश्रेष्ठ कृतियां मानी जाती है। भारतीय प्राचीन वैदिक साहित्य में विरचित दिव्य ग्रंथ अमर ज्ञान भंडार का कोश है। अनेक विद्वानों ने यह माना कि भारतीय प्राचीन वैदिक साहित्य मानव को पृथ्वी पर स्वर्ग के समान अमृत ज्ञान तथा सभ्य संस्कृति की पहचान कराने वाला है। वैदिक साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। आज से हजारों वर्ष पूर्व महर्षियों और ऋषि द्वारा उनके दिव्य ज्ञान का अमृत कोश आज विश्व कल्याण के लिए संजीवनी बूटी के समान कल्याणकारी और जीवनमय हो रहा है। वैदिक साहित्य में रचित सभी ग्रंथों का आज अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है। भारत ही नहीं अपितु विश्व की प्रत्येक संस्थाओं, संगठनों आदि के द्वारा भारतीय वैदिक साहित्य के ज्ञान का प्रचार–प्रसार करने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। भारतीय आर्य समाज भी इस वैदिक साहित्य से अछूता नहीं रहा है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा भी भारतीय वैदिक साहित्य पर अधिक कार्य किया गया। आर्य समाज की स्थापना के समय वैदिक साहित्य विलुप्त होने की कगार पर पहुँच चुका था। क्योंकि उसका मुख्य कारण था वर्तमान समय में मुस्लिम शासक का होना तथा व्यवहारिक भाषा संस्कृत और हिन्दी न होकर उर्दू भाषा का प्रचलन अधिक होना था। सरकारी एवं गैर सरकारी कार्यालयों में हिंदी और संस्कृत भाषा का प्रयोग न होकर उर्दू भाषा का प्रयोग होना, संस्कृत साहित्य को विलुप्त करने का एक बहुत बड़ा कारण था। आर्य समाज की स्थापना के बाद महर्षि दयानंद सरस्वती ने अपने सभी अनुयायियों को संगठित करके वैदिक साहित्य पर बल दिया एवं पूर्वजों के ज्ञान को जन–जन तक प्रसारित करने के लिए अनेक धार्मिक कार्य, आंदोलन, कार्यक्रम, संगोष्ठी, शास्त्रार्थ तथा विचारों का आदान–प्रदान किया गया। आर्य समाज के सभी अनुयायियों ने हिंदी भाषा को आम भाषा या भारत की भाषा बनाने के लिए संस्कृत साहित्य का सहारा लेकर संपूर्ण भारत में या अहिंदी भाषी क्षेत्रों में संस्कृत साहित्य की महत्त्वता को समझाया गया। यही संस्कृत भाषा की विशालता का एक उदाहरण है। आर्य समाज के कार्यकर्ताओं ने अनेक संस्कृत के ग्रंथों का हिंदी भाषा में अनुवाद किया और संस्कृत भाषा को आम जन की भाषा बनाने के लिए कठिन मेहनत करके संगठन को मजबूत किया और संस्कृत साहित्य का प्रचार प्रसार किया गया।

स्वामी दयानंद सरस्वती तथा आर्य समाज द्वारा आर्य जाति के प्राचीन शास्त्रीय साहित्य के पुण्य ज्ञान तथा गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया। आर्य समाज के अनेक अनुयायियों, विद्वानों, साहित्यकारों ने संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रंथों का अनुवाद किया तथा प्रत्येक ग्रंथ पर भाष्य भी लिखे गए।'स्वामी दयानंद सरस्वती की शैली का अनुसरण करके पंडित जयदेव विद्यालंकार ने सन् 1925 से 1931 तक ग्यारह वर्ष की

साधना के बाद चारों वेदों का भाष्य चौदह खंडों में किया। किसी भारतीय भाषा में यह चतुर्वेद भाष्य सर्वप्रथम है।'[१] सन् 1904 में पंडित पूर्णचंद शर्मा ने यजुर्वेद भाष्य की रचना की। अनेक विद्वानों ने इस रचना की मौलिकता को नहीं माना था। किंतु उनका प्रयास यजुर्वेद के मंत्रों के अभिप्राय को हिंदी भाषा में सरलता से समझाना ही था अर्थात् पंडित पूर्णचंद शर्मा ने संस्कृत साहित्य के ज्ञान भंडार को हिंदी भाषा के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाने का प्रथम प्रयास किया था। इसके बाद अनेक विद्वानों ने यजुर्वेद भाष्य पर अपनी कलम चलाई और उसमें छिपे ज्ञान भंडार को आम जनता के सामने रखने का प्रयास किया गया।'यजुर्वेद के पुरुष सूक्त पर डॉ मुंशीराम शर्मा, सोम तथा डॉ सूर्यदेव शर्मा ने बहुत सुंदर–सुंदर टीकाएँ लिखी। स्वामी आत्मानंद सरस्वती ने मनोविज्ञान और शिव संकल्प नामक पुस्तक में अत्यंत सुंदर ढंग से इन मंत्रों की व्याख्या की गई।'[२]

आर्य समाज के अनेक साहित्यकारों, विद्वानों ने संस्कृत साहित्य के सभी ग्रंथों को जन कल्याण के लिए अनेक भाषाओं में अनुवाद किया। परंतु हिंदी साहित्य में अधिक अनुवाद किया गया। "यजुर्वेद के 40 अध्याय की ईशोपनिषद नामक नाम से नारायण स्वामी, पंडित रामप्रसाद तथा अनेक विद्वानों द्वारा इसकी व्याख्या की गई।'पंडित चंपूपति ने सामवेद के आग्नेय पर्व और पावमान पर्व की जीवन ज्योति और सोमसरोवर के नाम से भव्य व्याख्या लिखी, वे प्रसिद्ध भी रही।'[३] यजुर्वेद की भांति सामवेद पर भी भाष्य अधिक संख्या में लिखे गए। सर्वप्रथम पंडित तुलसीराम स्वामी ने सामवेद को हिंदी भाषा में उपासना मंत्र को लिखा। सामवेद का अनेक भाष्यकारों एवं पंडितों ने अपनी–अपनी भाषाओं में सामवेद भाष्य पर बहुतायत संख्या में अपनी कलम चलाई।'सामवेद के मंत्रों की काव्यात्मकता तथा इस में विद्यमान उपासना तत्व की प्रचुरता के कारण कतिपय कवि ह्रदय विद्वानों ने इसका हिंदी काव्य में सुंदर अनुवाद भी किया है। पंडित विद्यानिधि शास्त्री का सामवेद काव्यानुवाद तथा पंडित राम निवास विद्यार्थी कृत सहस्त्रधारा इस वेद के काव्य शैली में किए गए भावानुवाद है।'[४]

हिंदी में वैदिक विद्वानों द्वारा वैदिक वांग्मय में कितने विशालकाय और उत्तम साहित्य की रचना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन विद्वानों के द्वारा ही हिंदी में वेद विषयक साहित्य समस्त भारतीय भाषाओं में सबसे अधिक समृद्ध हैं। अर्थात् आर्य समाज के समस्त कार्यकर्ताओं द्वारा वैदिक साहित्य का प्रचार–प्रसार अधिक मात्रा में किया गया। चाहे वेद हो, उपनिषद हो, ब्राह्मण ग्रंथ हो या फिर अन्य कोई साहित्य भाग हो। आर्य समाज ने अपनी संगठन की जिम्मेदारी को समझते हुए राष्ट्र निर्माण में अपनी भूमिका को समझते हुए अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया। शतपथ ब्राह्मण के साथ–साथ गोपथ ब्राह्मण पर भी भाष्य लिखे गए। इन पर भी अनेक विद्वानों ने हिंदी भाषा में इनमें वर्णित मंत्रों के अर्थों को जन कल्याण को समझाने का प्रयास किया गया। उपनिषद विषयक साहित्य पर भी आर्य समाज के भाष्यकारों और विद्वानों ने अनेक भाष्य लिखें। उपनिषदों का भारतीय आर्य साहित्य में प्रमुख स्थान रहा है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथों में उपनिषद वचनों और दिव्य वाक्यों को प्रमाणिक रूप से उद्धृत किया है। अर्थात् स्वामी दयानंद सरस्वती ने उपनिषदों में वर्णित सभी मंत्रों तथा ज्ञान के भंडार को राष्ट्र निर्माण के हित में कार्य किया। उपनिषदों में आध्यात्मिक विधाओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करने के कारण भारतीय मनीषियों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। इसका प्रमुख कारण है कि उपनिषदों को प्रमाणित भी माना जाता है। वेदों के बाद उपनिषदों को विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।'उपनिषदों पर भाष्य लेखन का सर्वप्रथम प्रयास स्वामी दयानंद सरस्वती के आद्य शिष्य पंडित भीमसेन ने किया। छांदोग्य और वृहदारण्यक को छोड़कर नौ उपनिषदों पर संस्कृत तथा हिंदी में प्रौढ़ भाष्य लिखे गए।'[५]

आर्य समाज के अनुयायियों द्वारा संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रंथों का हिंदी भाषा के साथ–साथ अन्य क्षेत्रीय भाषा में प्रचार प्रसार किया गया। उपनिषद साहित्य को लोक भाषा के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाने में आर्य समाजी लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वेदांग साहित्य में छः वेदांगों पर भी चर्चा आर्य समाज के विद्वानों, साहित्यकारों एवं भाष्यकारों ने की। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, निरुक्त, और ज्योतिष यह सभी छह वेदांग को हिंदी भाषा के साथ–साथ अन्य भाषाओं में अनूदित करके इन सभी वेदांगों के महत्त्व को समझाया गया। ज्योतिष को छोड़कर अन्य सभी वेदांग पर गहन अध्ययन किया गया तथा जन कल्याण के लिए प्रचार–प्रसार भी किया गया। आर्य समाज ने केवल वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ आदि का नहीं बल्कि दर्शन शास्त्रों का भी हिंदी भाषा में प्रचार प्रसार किया। महर्षि दयानंद सरस्वती की धार्मिक एवं आध्यात्मिक विचारधारा वेद आधारित तत्व चिंतन से प्रेरणा ग्रहण करती हैं। सभी दर्शन वेदों को परम प्रमाण स्वीकार करते हैं। अतः स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी षड्दर्शनों को एक दूसरे का विरोधी न मानकर एक दूसरे के पूरक कहा है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथों में वैदिक दर्शनों के सैकड़ों सूत्रों को प्रयोजनवशात् उद्धृत किया है। अपने जीवन में सभी दर्शनों के महत्त्व एवं उनमें वर्णित ज्ञान भंडार को अपने जीवन में समाहित भी किया है।'सर्वप्रथम स्वामी दयानंद सरस्वती की प्रेरणा से पंडित प्रभुदयाल ने मीमांसा को छोड़कर अभीष्ट पाँचों दर्शनों

के भाष्य को लिखा।'६ आर्य समाज के अनेक विद्वानों ने षड्दर्शनों पर टीका, भाष्य, व्याख्या, विवेचना आदि ग्रंथों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से मौलिक दार्शनिक कृतियों का भी प्रणयन किया। आर्य समाज के दार्शनिक विद्वानों ने वैदिक षड्दर्शनों की व्याख्या एवं भाष्य आदि लिखने के साथ–साथ इन दर्शनों के इतिहास, सिद्धांत तथा उनमें वर्णित उपासनात्मक तत्व के सभी पहलुओं को हिंदी भाषा के साथ–साथ अन्य लोकभाषा या क्षेत्रीय भाषा में भी लिखा गया है।'प्राचीन ग्रंथों के साथ–साथ मौलिक ग्रंथों की भी रचनाएँ की। जिसमें हिंदी में दार्शनिक विषयों पर उत्कृष्ट साहित्य लिखने का श्रेय उक्त सभी आर्य समाजी लेखकों को स्वतरू ही मिल जाता है।'[७]

स्मृति विषयक हिंदी साहित्य में भी अनेक भाष्य लिखे गए। आर्य समाज के अनेक भाष्यकारों, विद्वानों एवं पंडितों ने मनुस्मृति को सर्वोत्तम स्मृति मानकर अपना एक सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है।'मनुस्मृति साहित्य में स्वामी दयानंद सरस्वती मनुस्मृति को सर्वोच्च स्थान पर प्रदान किया है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथों में स्मृति के सैकड़ों प्रमाण यत्र–तत्र अपने मंतव्यों की पुष्टि में उद्धृत किए हैं।'[८] स्वामी दयानंद सरस्वती ने महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण को आर्ष काव्य माना है। आर्य समाज के सभी विद्वानों ने महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण पर अनेक रचनाएँ, भाष्य, टीकाएँ एवं हिंदी अनुवाद किया गया है। इसमें वर्णित ज्ञान भंडार को जन जन तक पहुँचाने का कार्य भी किया। पंडित छुट्टनलाल स्वामी ने रामायण की कथा को आल्हा शैली में भी लिखा है। अनेक विद्वानों ने इसको दोहावली, गद्य, पद्य भाग तथा कथा आदि का रूप देकर जनसाधारण के लिए हिंदी भाषा में प्रचार प्रसार किया। रामायण महाकाव्य के साथ–साथ वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत पर भी अनेक टीकाएँ लिखी गई। महाभारत को ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि महत्त्वता प्रदान करते हुए विशाल महाकाव्य को हिंदी की निम्न विधाओं में अनूदित किया। महाभारत में वर्णित विदुर नीति को आर्य समाजी विद्वानों ने प्रमुख स्थान दिया। महाभारत में वर्णित श्रीमद्भगवतगीता को विशिष्ट स्थान देते हुए गीता के 18 अध्यायों को अलग–अलग योग या भागों में भी निरूपित किया गया है। आर्य समाज के विद्वानों ने गीता पर भाष्य टीकाएँ एवं रचनाएँ लिखी है। जिसकी संख्या बहुत अधिक रही है।'पंडित भीमसेन शर्मा ने संस्कृत भाषा के भाषानुवाद हिंदी में भी प्रस्तुत किया। पंडित भूमित शर्मा ने गीता पर वेदानुरागरतन संग्रह भाष्य लिखा। पंडित रजतकुमार शास्त्री ने द्वितीय अध्याय के अंतिम श्लोक तक टीकाएँ लिखी।'[९]

आर्य समाजी अनेक विद्वानों, भाष्यकारों एवं पंडितों ने वैदिक संस्कृत साहित्य के सभी ग्रंथों का अनुवाद किया। नीति साहित्य, चाणक्य नीति, पंचतंत्र एवं हितोपदेश जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक ग्रंथों पर अपनी अनेक रचनाएँ एवं टीकाएँ लिखी। आर्य समाज के विद्वानों ने भर्तहरि द्वारा रचित नीतिशतक को अनेक भाषाओं के साथ–साथ क्षेत्रीय अथवा लोक भाषाओं में भी अनूदित किया गया। भर्तहरि के तीनों शतक नीतिशतक, वैराग्य शतक और श्रृंगार शतक पर अनेक भाषाओं में विद्वानों द्वारा अनेक रचनाएँ लिखी।'आचार्य कौटिल्य द्वारा रचित चाणक्य नीति के अर्थशास्त्र, चाणक्य सूत्र एवं चाणक्य नीति तीन ग्रंथ उपलब्ध है। नीति शास्त्रों में चाणक्य नीति के महत्त्व को सर्वविदित किया गया है। स्वामी दयानंद सरस्वती के सत्यार्थ प्रकाश में चाणक्य नीति के अनेक श्लोक उद्धृत किए गए हैं।'[१०] आचार्य विष्णु शर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र कथा साहित्य पर आर्य समाज के विद्वानों ने अनेक रचनाएँ एवं टीकाएँ हिन्दी साहित्य तथा लोक साहित्य में लिखी गई। स्वामी प्रेस मेरठ के मूल तथा भाषानुवाद सहित हितोपदेश प्रकाशित किया गया।'स्वामी जगदीश्नेश्वर सरस्वती द्वारा चाणक्य नीति दर्पण का प्रकाशन किया गया। पंडित रामस्वरूप पाठक पाठक नीति माला में 108 नीति श्लोकों का पद्यानुवाद किया गया। निश्छल सिंह ने हितशिक्षा में चाणक्य नीति का दोहानुवाद किया। डॉ प्राणनाथ विद्यालंकार ने चाणक्य कौटिल्य अर्थशास्त्र का हिंदी में अनुवाद किया। पंडित रामदत्त शुक्ल ने चाणक्य सूत्रों का अनुवाद किया।'[११]

महर्षि दयानंद सरस्वती ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण, रामायण, महाभारत, चाणक्य नीति, कथा साहित्य, नीति साहित्य आदि के अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है। जिसमें उन्होंने राजधर्म की महत्त्वता, धार्मिक महत्त्वता, सांस्कृतिक महत्त्वता, आर्थिक महत्त्वता आदि का वर्णन किया गया है। सत्यार्थ प्रकाश के छठे अध्याय में राजधर्म की विस्तृत व्याख्या की गई है। मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय में शुक्रनीति तथा विदुर नीति को प्रजागर और महाभारत का शांति पर्व के राजधर्म आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों का वर्णन आर्य समाज के अमर ग्रंथ में किया गया है। संस्कृत साहित्य विश्व की अनूठी अनुपम कृति है इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता है, क्योंकि वैदिक साहित्य में वर्णित ज्ञान का भंडार विस्तृत एवं विशाल है। आर्य समाज ही नहीं अपितु अनेक संस्थाओं ने भारतीय वैदिक साहित्य के विस्तृत ज्ञान भंडार को अनेक भाषाओं के साथ–साथ हिंदी भाषा में अनूदित करके जन कल्याण की मांग तक पहुँचाया है। वैदिक साहित्य विस्तृत साहित्य है। इसको समस्त साहित्य का मूल या अमर साहित्य कहा जा सकता है।

संदर्भ सूची

१. डॉ भवानी लाल भारतीय, आर्य मार्तंड पत्रिका (01–02–1972), पृष्ठ सं– 04
२. डॉ चंद्रभानु सोनवणे, आर्य समाज और हिंदी साहित्य, पृष्ठ सं– 132
३. वही पृष्ठ सं– 132
४. डॉ सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास, पांचवा भाग, तीसरा अध्याय, लेखक– डॉक्टर भवानी लाल भारतीय, पृष्ठ सं– 102
५. वही पृष्ठ सं– 138
६. वही पृष्ठ सं– 145
७. वही पृष्ठ सं– 153
८. वही पृष्ठ सं– 156
९. वही पृष्ठ सं– 165
१०. वही पृष्ठ सं– 164
११. वही पृष्ठ सं– 107

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 39-41
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में भोजपुरी की भूमिका

रजनीश त्रिपाठी

लोक साहित्य का आशय उस रचना से है जिसका सृजनकर्ता लोक होता है। ठीक वैसे ही लोकभाषा का आशय उस भाषा से है जो उस लोक विशेष क्षेत्र में बोली, समझी या कही जाती है। लोक भाषा व लोक साहित्य उतने ही प्राचीन हैं जितना कि मानव। उसमें जनता के प्रत्येक वर्ग से कुछ न कुछ अंश निहित रहता है। भारतीय परम्परा में लोक भाषा या लोक साहित्य का विस्तारित होना एक तरह से उस जनमानस की अभिव्यक्ति का प्रसार है जो विद्वत समाज से छूटा हुआ है।

प्राचीन काल से ही हर समाज में लोक भाषा व लोक साहित्य विद्यमान रहा है और सदैव ही यहीं परिमार्जित होकर किसी शिष्ट साहित्य का निर्माण करता है। लोक भाषा व लोक साहित्य आम जनमानस की सीधी–सच्ची अनुभूति है। इसमें सामूहिक भावना या अनुभवों पीढ़ी दर पीढ़ी प्रसारण होता रहता है। इसकी भाषा व साहित्य लोक संस्कषति अथवा लोकवार्ता का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वर्तमान राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के विकास में लोकभाषा व लोक साहित्य की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। बुंदेली, बघेली, अवधी, हड़ौती, भोजपुरी आदि लोकांचलों के लोकभाषा व लोक साहित्य के मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोकगीत, आदि वर्तमान राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के निर्माण की आधारभूमि है। इनके बिना राष्ट्रभाषा का विस्तार इतना संभव न था जितना कि आज देखने को मिलता है। खासकर भोजपूरी की यह विशेषता रही है कि वह क्षेत्रियता या संकीर्णता के दायरे में रहकर कभी नहीं देखती, वह मनुष्य, समाज व देश को पहले देखती है। राजभाषा, राष्ट्रभाषा और साहित्य विकास में भेजपूरी भाषी लोगों का अप्रतिम योगदान रहा है। भारतेन्दु हरीशचन्द्र व भारतेन्दु मण्डल के लेखक, देवकीनन्दन खत्री, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल, राहुल सांकृत्यायन, श्यामसुन्दर दास, आचार्य शिवपूजन सहाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, शिवप्रसाद सिंह, नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र आदि, यह सूची बहुत लम्बी हो सकती है। ये लोग चाहते तो भोजपूरी में लिख सकते थे, किन्तु इन्होंने राष्ट्र, राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा की गरिमा को महत्त्वपूर्ण मानते हुए हिन्दी में लिखा। बहुत दिनों तक यह भ्रम बना रहा कि भेजपूरी के उत्थान में हिन्दी का पतन छिपा हुआ है। सच्चाई यह है कि हिन्दी अपने आप में एक भाषा नहीं, भाषाओं का समूह है। सहयोगी भाषाओं यथा ब्रज, अवधी, भोजपूरी, राजस्थानी, मगही, मैथिली, हरियाणवी, बघेली, बुंदेली, घड़ौती आदि की शक्ति, हिन्दी की शक्ति है। उनका वैभव हिन्दी का वैभव है। प्रस्तुत शोधपत्र में राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के विकास में भोजपूरी की भूमिका पर विस्तष्त प्रकाश डाला गया है। भोजपूरी बिहारी हिन्दी के अन्तर्गत आने वाली भाषा है। इसके अलावा मगही, मैथिली, अंगिका बिहारी हिन्दी की लोकभाषाएँ हैं। इन बोलियों में वैषम्य अधिक और समानता कम है। इनमें जो सामान्य तत्व है वह प्रायः सभी पूर्वी हिन्दी में पाए जाते हैं और जो भिन्न हैं वह बिहारी को एक अलग भाषा और एक सुगठित इकाई बनाने में बाधक है। मैथिली को छोड़कर बिहारी बोलियों का साहित्य प्रमुखतः लोक से सम्बद्ध है। कुछ वर्षों से भोजपूरी और अंगिका में साहित्यिक गतिविधि बढ़ने लगी है। और अपने निजी बोली के प्रति आस्था पनप रही है।

राजा भोज के वंशजों ने बिहार में मल्ल जनपद में आकर अपना राज्य स्थापित किया था जिसकी राजधानी भोजपुर थी। राजधानी के नाम पर उस क्षेत्र का नाम भी भोजपुर हो गया। भोजपूरी उसी क्षेत्र की बोली है। यहाँ यह बताना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि भोजपूरी को केवल बिहार की भाषा कत्तई नहीं समझना चाहिए, बल्कि इस क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में बस्ती (कुछ भाग), गोरखपूर, देवरिया, गाजीपुर, बलिया, बनारस, मिर्जापुर (दक्षिण– पूर्वी भाग), जौनपुर (पूर्वी भाग) एवं बिहार में शाहाबाद, छपरा (सारन), चम्पारण, झारखण्ड के राँची (कुछ भाग), पलमू (कुछ

भाग) आते हैं। भारत से बाहर मॉरीशस आदि देशों में भी भोजपूरी बोलने वालों की कुल संख्या लगभग चार करोड़ हो गई है। भेजपूरी के कवियों में कबीर, चरनदास, धरमदास, धरणीदास, शिवनारायण और लक्ष्मी सखी उल्लेखनीय है। आधुनिक युग में ढेरों नाटक, उपन्यास, कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित हुईं हैं। बालीवुड के पूरक उद्योग के तौर पर भोजपूरी सिनेमा भोजीवुड (चित्रपट)का माध्यम है। डॉ0 गियर्सन और डॉ0 उदयनारायण तिवारी ने भोजपूरी क्षेत्र के सन्दर्भ में जो विवरण दिए हैं, वे आज भी सही और संगत लगते हैं। उन्होंने लिखा है कि पूर्वी उ0प्र0 और पश्चिमी बिहार के लोग गिरमिटिया मज़दूरों के रूप में गए और उन्होंने भयंकर अत्याचार सहते हुए भी अपनी भोजपूरी भाषा तथा संस्कृति को जीवित रखा और इस समय मॉरीशस, फिज़ी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड और गुयाना जैसे देशों में प्रमुख भाषा के रूप में स्थापित है।

इस बात ज़िक्र इसलिए भी करना उचित प्रतीत होता है कि भोजपूरी हिन्दी की एक मुख्य सहायक भाषा है, इसलिए राष्ट्र में ही नहीं अपितु राष्ट्र के भौगोलिक सीमा के बाहर उपरोक्त देशों में एक तरह से राजभाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी को स्थापित करने का कार्य कर रही है।

हय भी एक विशेष बात है कि भोजपूरी ही शायद एकमात्र भाषा है जो देश के तीन प्रादेशिक सीमाओं एम0पी0, यू0पी0 एवं बिहार में बोली जाती है। यह यू0पी0 के 15 जिलों, बिहार के 12 जिलों सहित मध्य प्रदेश के दो जिलों– बिलासपुर व सरगुजा में बोली जाने वाली लोकभाषा है।

यह एक सुखद संयोग ही है कि जिस उज्जैनी में इस अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ है, भोजपूरी से उसके गहरे रिश्ते हैं। शाहाबाद गजेटियर (सन् 1924 गवर्नमेन्ट प्रेस पृ0 158) में भोजपुर के सम्बन्ध में लिखा है– "भोजपुर एक गाँव है, जो बक्सर सब– डिविजन में पड़ता है। इस गाँव का नाम मालवा के राजा भोज के नाम पर पड़ा है। कहा जाता है किराजा भोज ने राजपूतों के एक गिरोह के साथ इस जिले पर आक्रमण किया और यहाँ के आदिवासी चेरों को हराकर अपने अधीन किया। "

महापंडित राहुल सांकृत्यायन भी उज्जैनी राजपूतों द्वारा भोजपुर नगर बसाए जाने की पुष्टि करते हैं– "शाहाबाद के उज्जैनी राजपूत मूलस्थान के कारण उज्जैन और पीछे की राजधानी धार से भी आए कहे जाते हैं। "

राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी से भोजपूरी कवियों व साहित्यकारों की भावना ऐसी है कि भोजपूरीसाहित्य रचते वक्त भी वे हिन्दी का चिन्तन करते हैं। मनोरंजन प्रसाद सिन्हा अपने "मातृभाषा आराष्ट्रभाषा " नामक कविता में कहते हैं– सभी पढ़े लिखे लोग यह जान लें कि हिन्दी सर्वज्ञ भारत की भाषा है।

पढुआ–लिखुआ करिहैं माफ। हम त बात कहीं लें साफ।।
हमरा ना केहु से बैर। ना खींचब केहूँ के पैर।।
हम त सबके करब भलाई। जेतना हमरा से बन पाई।।
हिन्दी ह भारत के भाषा। ऊहे एक राष्ट्र के आसा।।
हम ओकरो भंडार बढ़ाइब। ओहू में बोलब आ गाइब।।
तबो न छोड़ब आपन बोली। चाहे केहू मारे गोली।।
जे मढाही तिरहुतिया भाई। उन्हूँ से हम कहब बुझाई।।
उहो बोलसु आपन बोली। भरे निरंतर अनको झोली।।

हमको उसका भण्डार बढ़ाना है। उसमें गाकर– बोलकर उसे सशक्त भाषा बनाए रखते हुए अपने लोक भाषा व लोक साहित्य को भी निरंतर मजबूत बनाए रखिए। भोजपूरी काव्य में रचनाकार हिरा डोम कहते हैं–

"पदरी सहेब के कचहरी में जाइब जा,
बेधरम होके रंगरेज बनि जाइबे,
हाय राम। धरम न छोड़त बनत बा जे,
बेधरम होके कैसे मुँहवा देखइबे।"

वहीं मनोरंजन प्रसाद सिन्हा अपने "फिरंगी" नामक काव्य में कहते हैं कि–*राष्ट्रीय स्वाधीनता व राष्ट्रभाषा के उत्थान के लिए छप रहे पत्र– पत्रिकाओं पर कितने अनाचार हुए, एक बानगी देखिए :–*

"प्रेस एक्ट, आर्म्स एक्ट, इंडिया डिफेंस एक्ट,
सब मिलि कइलस ई हाल रे फिरंगिया
प्रेस एक्ट लिखे के स्वाधीनता के छिनलस
आर्म्स एक्ट लेलस हथियार रे फिरंगिया "

अन्त में डा0 हरदेव बाहरी के इस निष्कर्ष पर आना प्रासंगिक होगा कि, "हिन्दी एक भाषा नहीं बल्कि भाषाओं का समूह है। साथ ही लोक भाषा व लोक साहित्य का समष्द्ध होना हिन्दी राष्ट्रभाषा व राजभाषा के विकास में कहीं बाधक नहीं है, बल्कि सहायक है। खासकर भोजपूरी ने हिन्दी के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई है।

सन्दर्भ

1. पुरइन पात– विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ॰ 08– 19
2. पुरइन पात(मातष्भाषा व राजभाषा)– सिन्हा, मनोरंजन प्रसाद, पृ॰ 1
3. पुरइन पात– फिरंगिया
4. अछूत के शिकायत (पुरइन पात)– डोम, हीरा, पृ॰ 15–16
5. भोजपूरी लोक– गीतों में करूण रस, भूमिका, पृ॰ 6
6. शाहाबाद गजेटियर सन् 1924, गवर्नमेन्ट प्रेस
7. नागरी प्रचारिणी पत्रिका– वर्ष 1956, अंक 3– 4
8. रायल एशियाटिक सोसायटी जर्नल, भाग 3, सन 1969
9. हिन्दी एवं उसकी काव्य भाषा– बाहरी हरदेव, पृ॰ 7

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 42-45
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आर्य समाज और स्वामी दयानन्द

के. कविता
हिंदी सहायक प्राचार्य
सारधा गंगाधरन महाविद्यालय पुडुचेरी–४
Kk14jananivyas@gmail.com Mob. : 9944758729

इस लेख में मोहन राकेश से लिखित 'स्वामी दयानन्द' नामक जीवनी के एक छोटा सा अंश के बारे में जाननेवाले हैं। स्वामी दयानन्द मोहन राकेश जी की पुस्तक 'समय सारथी' से उद्धृत है। पहले सामजिक और धार्मिक विचारों की दुनिया में क्रांति लाये संस्थाओं में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण योगदान देनेवाले संस्थान 'आर्य समाज' के बारे में थोड़ी सी जानकारी लेने के बाद, महान स्वामी दयानन्द की जीवनी से ज्ञान पाएँगे। इस संस्था के संस्थापक के नेतृत्व में इस संस्था ने रूढ़िवादी सनातनियों से, हिन्दू धर्म को आक्रमण करनेवाले ईसाइयों से और देश के अनेक अनर्थ मत, मतान्तरों और धार्मिक सम्प्रदायों से छुटकारा दिया।

प्रथम यूरोपियन महा युद्ध तक इस देश की सब से बड़ी शक्ति इन सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुई। यह बहुत बड़ी शक्ति थी। यह शिक्षा को, साहित्य को और पूरी संस्कृति को अधिक प्रभावित किया। लेकिन आर्य–समाज के लिए भूमि पहले से ही प्रस्तुत हो रही थी। आर्य समाज का सब से अधिक प्रभाव् पंजाब पर था। पंजाब में हिंदी की स्थति बहुत ही नाजुक और कमजोर रही। वह स्थान उर्दू का गढ़ रहा। स्वामी दयानन्द और उनके साथियों ने वहाँ भ्रमण करके अपने महत्त्वपूर्ण भाषण तथा उपदेशों से संस्कृत और हिंदी को नवजीवन प्रदान कर दिया। संस्कृत और हिंदी के अध्ययन पर बल दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में आर्यसमाज नवीन चेतना का सबसे बड़ा पुरस्कर्ता था। आर्य समाज के प्रचार का ढंग उग्र होने के कारण उसने देश की प्रसुप्त शक्ति को धक्का मारकर भगा दिया।

ईसाई प्रचारक बहुत दिनों तक अपना कार्य न कर सके। इसके विरोध में कुछ समाज आंदोलन का जन्म हुआ। आर्य समाज उन आन्दोलनों में एक रहा। आर्य समाज ने हिंदी गद्य का सबसे बड़ा बल दिया। महर्षि दयानन्द के प्रचार का माध्यम हिंदी ही थी। यहाँ तक कि आर्य समाज के ग्रंथों की रचना भी हिंदी में हुई। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेद आदि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि, वेदांग प्रकाश उनके ग्रंथ हैं। स्वामी दयानन्द ने हिंदी को आर्य भाषा घोषित किया और धर्म–प्रचार के साथ साथ हिंदी का प्रचार भी किया।

पुरानी रूढ़ियों को ध्वस्त करके धर्म के असली रूप को स्थापित करनेवाले स्वामी दयानन्द के जीवन पर प्रकाश डाला है मोहन राकेशजी ने। तात्कालिक रूढ़िवादी समाज में ज्ञान का प्रचार–प्रसार करके स्वामी दयानन्द अपने पूरे जीवन को आनेवाली पीढ़ी को उदाहरण बनाया। उनके जीवन हमें यह पाठ सिखाता है कि मनुष्य जन्म से नहीं अपने सत्कर्म से श्रेष्ठ होता है। आधुनिकता के नाम पर हमें प्राचीन परंपरा को भूल जाने की आवश्यकता नहीं है।सत्यता और पवित्रता ही आधुनिकता का सार्थक प्रयोग है। काठियावाड़ के एक छोटा सा गाँव टंकारा में अम्बाशंकर नामक एक संपन्न भूमिपति के परिवार में पैदा हुए महृषि दयानन्द सरस्वती। उनका असली नाम था–मूल शंकर। पिताजी ने अपने बच्चे की पढ़ाई इस तरह देना चाहा कि वह बड़े होकर अपने वंश का नाम और बढ़िया बना देगा। अपने घर की परम्परा उज्ज्वल करेगा।

एक बार जब मूलशंकर चौदह वर्ष के थे तब शिवरात्री के दिन उनके पिता ने उसे गाँव के बाहर में स्थित शिव का मंदिर ले गए थे। पूजा पाठ आदि आधी रात तक चला। सब के सब सो गए। पर मूलशंकर को नींद नहीं आयी।

उसने एकटक शिव की मूर्ती का दर्शन करते रहे। अचानक एक चूहे ने शिवजी के भोग की वस्तु खा लिया। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। तुरंत अपने पिता को जगाया।

तरह–तरह के प्रश्न पूछने लगे। उनके सभी प्रश्नों का उत्तर पिता ने दे दिया। फिर भी उनके मन में एक प्रकार का अधूरापन समा हुआ था। उस अधूरेपन ही उनके भावी जीवन का बीज रहा। उस दिन उस बालक ने मन ही मन संकल्प कर लिया कि किसी न किसी दिन अवश्य मैं सच्चे भगवान को ढूँढ लूँगा और उनके दर्शन का आनंद पा लूँगा।

इस घटना के बाद अचानक उनकी बहिन की मृत्यु हुई जिसको वे सहन नहीं कर सके। तुरंत कुछ ही समय के बाद उनके चाचा की मृत्यु भी हुई जिसने मूलशंकर के मन में घाव उत्पन्न किया। वे तरह–तरह के विचार में डूबने लगे और जीवन से संबंधित बहुत सारे संदेह उनके मन में उठा। धर्म के सम्बन्ध में तरह तरह के प्रश्न उनके मन में उदित हुआ जिनका उत्तर किसी ने नहीं दे पाए। उनके मन के हाल, पहचाने बिना घरवालों ने उनका गलत अर्थ समझकर उनको वैवाहिक बंधन में बाँधने का प्रयत्न आरम्भ किया। उनके घरवालों का विचार यह था कि शादि के बाद वे ठीक हो जायेंगे। पर मूलशंकर ने एक दिन किसी से कहे बिना घर छोड़कर निकले। कई जगह घूमकर अंत में वे सिद्धपुर पहुँचे।

जिस समय वे वहाँ गए थे उस समय वहाँ बहुत बड़ा मेला चल रहा था जिस में भाग लेने के लिए साधु संत लोग आये हुए थे। वे उनके संपर्क में रहकर जीवन–मृत्यु का रहस्य जानने का प्रयत्न करने लगे। फिर उन्होंने साधू संत लोगों की तरह गेरुआ रंग का कपडा पहना शुरू किया। लेकिन उनके पिताजी ने उनकी जगह का पता लगाकर गाँववालों के साथ आकर उनको पकड़ा। घर में अपनी सख्त निगरानी में रखा। मगर उनके पिताजी की कड़ी निगरानी ने मूलशंकर के आत्मदाह को नहीं बाँध पायी। मूलशंकर ने किसी तरह घर से बचकर बाहर निकले। इस बार यह दृढ़ निर्णय के साथ निकले कि आगे चलकर कभी भी घर वापस न आएँगे। चामोद कर्णाली पहुँचकर वे स्वामी पूर्णानंद से मिलकर उनसे संन्यास ले लिया और अपना नाम दयानन्द बना लिया। फिर कई स्थानों को घूमकर हरिद्वार पहुँचे। वहाँ से हरिद्वार हरिद्वार में मेला का दर्शन करने के बाद वे मन ही मन यह संकल्प ले लिया कि धर्म के नाम पर जो निरर्थक कुरीतियां चल रही थीं, उनको जड़ से निकालना चाहिए। पर उस बड़े और खतरे काम करने के लिए उनको एक अच्छे गुरु की जरुरत थी। गड़वाद के अलखनंदा के पार बहुत से योगी लोगों के रहने की खबर उनको मिली तो वे तुरंत वहाँ गए। अपने लिए जिस प्रकार के गुरु की आवश्यकता रही, उस प्रकार के गुरु को ढूँढ़ने लगे। लेकिन उसमे उनको असफलता ही मिली। गढ़मुक्तेश्वर गए। वहाँ नदी में बहते चल रहे एक मृतक शरीर को उन्होंने पकड़ा और उसको चीर फाड़ करके देखा कि उस शरीर में जो चक्र, कुंडलियाँ आदि के बारे में साधू लोग कहते हैं, क्या सचमुच उसमे होते हैं या नहीं।

पर उसमें कुछ नहीं मिला जिसको वे देखना चाहते थे। फिर वे कानपुर, प्रयाग, काशी गए। इन स्थानों में भी उनको सही मार्गदर्शन देनेवाले गुरु न मिला। भाग्यवश उनको यह खबर किसी ने दिया कि मथुरा में एक नेत्रहीन ब्राह्मण रहते हैं जिनका नाम था दंडी स्वामी बिरजानन्द। उनका नाम सुनते ही स्वामी दयानन्द के मन में एक प्रकार का विश्वास पैदा हुआ कि वे ही अपना सही मार्गदर्शन कर सकते हैं। तुरंत वहाँ पहुँचे और उनसे मिलकर अपनी इच्छा प्रकट की। दंडी स्वामी बिरजानन्द बड़े ज्ञानी, संस्कृत के व्याकरण और वेदों के अच्छे जानकार भी थे। वे भी अपने सिद्धांतों को जन साधारण तक पहुँचाने के लिए अच्छे शिष्य को ढूँढ रहे थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द के ज्ञान का परिचय ले लिया और अभ्यास में उनकी रुचि का पता भी लगाया। आखिर स्वामी दयानन्द के लक्ष्य की पहचान कर ली और उनको अपने शिष्य बना लिया। बिरजानन्द स्वामी की एक आदत थी कि वे जो पाठ एक बार पढ़ाते हैं उसे दुबारा नहीं पढ़ाते। स्वामी दयानन्द की बुद्धि भी इतनी तेज थी कि वे एक ही बार किसी विषय सुनते हैं तो तुरंत उसे समझ लेते और कभी भी उसे भूलते नहीं।

मगर एक बार स्वामी दयानन्द किसी पाठ का अंश भूल गए। गुरुजी से पूछने पर वे उसे दुबारा सिखाने को तैयार नहीं थे। स्वामी दयानन्द बहुत दुःख होकर यमुना नदी के पास के एक पेड़ के नीचे ध्यान करने लगे और थोड़ी ही समय में उनको उस पाठ की याद आ गयी तो दौड़कर गुरुजी से कह दिए। गुरुजी भी अपने शिष्य के ज्ञान से पुलकांकित हुए।

ढाई वर्ष तक बिरजानंदजी से वेद–वेदांतरों, शास्त्रों का अध्ययन किया और उन वेदों को समझने की नयी दृष्टि भी पायी। गुरुदक्षिणा के रूप में गुरुजी की पसंद की चीज लौंग लेकर गए तो गुरुजी ने कहा कि गुरुदक्षिणा के रूप में उनको लौंग नहीं चाहिए।

उन्होंने अपने शिष्य से यह आदेश दिया कि स्वामी दयानन्द को अपने ज्ञान से इस पूरे देश में फैले हुए अज्ञान को मिटाना चाहिए। लोगों के मन में धर्म के बारे में जो गलत विचार रहता है, उसे मिटाना है और साथ ही उनके में

में जमा हुआ अंधविश्वासों को भी जड़ से उखाड़ना है। देश भर ज्ञान और विद्या को फैलाना है। गुरुजी की बात से वे बहुत खुशी हुए और जिस विषय की खोज में स्वामी दयानन्द रहे थे, वह रास्ता अब उनके सामने गुरुजी के जरिये खोला गया है। उस समय पूरा देश अंधविश्वासों से भरा हुआ था। समाज में बालविवाह, जाति–भेद, विधवाओं की बुरी स्थति आदि। ईसाई लोग भी इस वातावरण का सही फायदा उठाने लगे। इन सभी परिथितियों का सामना करके लोगों को ठीक रास्ते पर लाने के संकल्प लेकर स्वामी दयानन्द ने काम करना शुरू किया। सभी बातों को लिख दिया और उसका भाषण भी देना शुरू किया और साथ ही एक संगठन का निर्माण करके उसकी सहायता से कई जगह भ्रमण करके लोगों के मन के अंधविश्वासों को मिटाने का प्रयत्न किया। कई जगह घूमा और वहाँ के सभी लोगों ने उनका स्वागत किया और उनके भाषण से उनके मन में नयी स्फूर्ति पैदा हुई। नयी चेतना का जन्म हुआ। स्वामी दयानन्द के भाषण से प्रभावित बहुत सारे लोग उनके अनुयायी बन गए क्योंकि उनके भाषण में सच्ची अनुभूति थी। आगरा, ग्वालियर, धौलपुर, करौली, जयपुर कहीं भी गए वहाँ वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न किया अपने ओजभरे भाषण से। सभी जगहों के पुराने पंडित वर्ग के लोगों का विरोध का सामना करना पड़ा।

हरिद्वार के कुम्भ मेले में भी अपनी 'पाखण्ड खंडिनी' का पताका फहराया। सच्चे आर्य धर्म का उपदेश दिया। उनको वहाँ के पंडित लोगों ने असफल बनाने की कोशिश की। रूढ़िवादी लोग उनको पत्थर से मारा पर वे अविचलित रहे। अनूपशहर के एक ब्राह्मण ने उनको विष भी दे दिया पर उन्होंने उस विष को अपनी योगिक क्रियायों की सहायता से बाहर निकाला। उस ब्राह्मण को विष देने के अपराध में दंड दिया गया पर स्वामी दयानन्द ने उसे यह कहकर छोड़ दिया, 'मेरा ध्येय मनुष्य को बंधन में डालना नहीं, बंधन से मुक्त कराना है।'

उनके सुदृढ़ व्यक्तित्व और अकाट्य तर्कों आदि से प्रभावित कई लोग उनके शिष्य बन गए। उनका लक्ष्य यह था कि समाज को वास्तविक वैदिक धर्म के निकट ले जाना है। सदियों से बनाये गए उन गलत संस्कारों का बंधन से उन भोले भाले समाज को छुटकारा देना है। उनके भाषण की भाषा पहले संस्कृत थी पर कुछ समय के बाद उन्होंने अपनी भाषण की भाषा हिंदी बना दिया जो जन साधारण तक पहुँच सकती है। जो घटना कर्णवास में घटी वह उनकी दृढ़ता का श्रेष्ठ उदाहरण है। कर्णवास के गंगास्नान के मेले में बरेली के रॉय कर्णसिंह भी आये। वहाँ स्वामी दयानन्द के भाषण को उन्होंने भी सुना। भाषण के बाद कर्णसिंह ने स्वामी से अनेक प्रश्न किया जिनका उत्तर स्वामी ने तुरंत दे दिया। वाद–विवाद बढ़ने लगा तो अंत में अपनी असमर्थता को मान सकने के कारण कर्णसिंह ने अपना तलवार उठाया तो स्वामी ने कहा, 'अगर शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु को यहाँ बुला लाओ। यदि युद्ध करना है तो मुझसे क्यों करते हो, जयपुर, जोधपुर से जा भिड़ो' पर कर्णसिंह ने स्वामी की किसी भी न सुनी। तलवार लेकर उनको मारने दौड़ा तो स्वामी ने उसे पकड़ा और उस तलवार को दो टुकड़े करते हुए कहा, 'मैं संन्यासी हूँ, तुम पर वार करके बदला नहीं लूँगा। भगवान् तुम्हें सुबुद्धि दें।

अट्ठारह वर्ष तक उन्होंने देश के कई प्रदेशों में धर्म का प्रचार किया। अपने सिद्धांतों के प्रचार हेतु अनेकानेक भाषण भी दिया। १०, अप्रैल, १८७५ को मुंबई में आर्य समाज का निर्माण किया। लाहौर में दो वर्ष के बाद किया। विशाल संगठन के रूप धारण कर लिया उस समाज ने। देश के अनेक नगरों, कस्बों में अनेक समाज का निर्माण किया गया। साथ ही उनके शिष्यों की संख्या भी बढ़ने लगी।

१८८३ को महाराज जोधपुर ने स्वामी को अपने महल में अपने अतिथि के रूप में नियमित रूप से बुलाया। महाराज की गलतियों को उन्होंने अपने उपदेशों से ठीक कर दिया जिससे एक वेश्या नाराज हुई जिसे महाराज प्यार करते थे। क्रोधित उस वेश्या ने स्वामी दयानन्द के भोजन में विष मिला दिया। उस विष के बुरे प्रभाव से उनके शरीर पर फफोले निकल आये। अच्छे से अच्छे चिकित्सा करने के बाद भी उस विष का असर कम न हुआ अंत में उस ज्ञान ज्योति बुझ गयी। सन १८८३ की दीपावली के दिन उनकी मृत्यु हुई। कुछ ही वर्षों में आर्य समाज ने विश्वरूप धारण करके जिन सिद्धांतों को स्वामी दयानन्द ने भारत के शिक्षा नीति में, राजनीति में लाना चाहा, उनको पूरे भारत में फैलाया। वैचारिक क्रान्ति फैलाई गयी। इसी उद्देश्य से ही स्वामी ने 'गुरुकुल कांगड़ी' का निर्माण किया था। वह अब पूरा होने लगा।

जिस स्वराज्य पर कांग्रेस ने जोर दिया, उसके बारे में स्वामी ने पहले ही कहा, 'स्वराज्य के बिना कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। वैसे ही भाषा के बारे में भी उन्होंने कहा, 'अंग्रेजी हमारे संस्कारों की भाषा नहीं है, संस्कृत जनसाधारण से दूर जा पड़ती है, इसलिए हिंदी ही सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा हो सकती है। गाँधीजी के बहुत पहले ही उन्होंने कहा, 'अस्पृश्यता हमारे समाज के लिए घातक है।'

उन्होंने यह भी कहा, 'जन्म से सब बराबर है। अपने कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बनता है।' स्त्री शिक्षा का सूत्रपात, विधवा विवाह का समर्थन किया। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्रों में उनका योगदान

असंभव को भी संभव बना दिया। उत्तर भारत का आधुनिक विचारधारा का प्रवर्तक के नाम से उनको कहा जा सकता है। अपने ऊँचे आदर्श, सिद्धांतों, ज्ञान से स्वामी दयानन्द ने इस समाज में फैली हुई कुरीतियों और लोगों के मन के अज्ञान और अंधविश्वासों को दूर किया। एक असाधारण प्रतिभावाले समाज सुधारक 'स्वामी दयानन्द' का नाम हमेशा हर भारतीय के मन में रहा था, रहता है और रहेगा।

सन्दर्भ सूची किताबें

1. गद्य विधा–संपादक–वीणा अग्रवाल
   अरुणोदय प्रकाशन दरियागंज, नयी दिल्ली–०२
   संस्करण २००७, संस्करण २००८

2. हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास
   हजारी प्रसाद द्विवेदी
   मूल संस्करण : १९५२
   पुनर्मुद्रित–१९९२, १९९५
   राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली

3. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास
   पूर्वांचल, गोरखपुर एवं डॉ. रा. एम् . लो . अवध विश्वविद्यालय–एम्–ए के नवीन संशोधित पाठ्यक्रमानुसार एक सम्पूर्ण प्रामाणिक ग्रंथ
   डॉ. चित्र आनंद सीमा वर्मा एम. ए.
   आनंद पुस्तक मंदिर
   शिक्षा साहित्य प्रकाशन
   उस्मानपुरा, वाराणसी .
   संस्करण–२००४ –२००५

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 46-52

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आर्य समाज का हिंदी के प्रसार में योगदान

डॉ. कुमारी उर्वशी
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग,
रांची वीमेन्स कॉलेज, रांची
मोबाइल–9955354365

'भारत करेगा हिन्दी का सम्मान
तभी तो आगे बढ़ेगा हिन्दुस्तान
हिन्दी है भारत की आशा
हिन्दी है भारत की भाषा
भारतीय की शक्ति है हिन्दी
एक सहज अभिव्यक्ति है हिन्दी
जब तक हिन्दी नहीं बनेगी, गरीबों की शक्ति
तब तक देश को नहीं मिलेगी, गरीबी से मुक्ति
हिन्दी ने देश को जोड़े रखा है
हमारे मतभेदों को तोड़े रखा है
हिन्दी का पतन भारत का पतन है
हर दिन नया विहान है हिन्दी
मेरे हिन्द की प्राण है हिन्दी
निज भाषा का जो नहीं करते सम्मान
वे कहीं नहीं पाते हैं सम्मान।'

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के महान चिन्तक, समाज–सुधारक तथा आर्य समाज के संस्थापक थे। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के बचपन का नाम 'मूलशंकर' था। वे परम ईश्वर भक्त थे, उन्होंने वेदों के प्रचार के लिए और भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। वे एक महान संन्यासी तथा चिंतक थे। उन्होंने वेदों की सत्ता को सर्वोपरि जाना तथा माना। 'वेदों की ओर लौटो' यह महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रमुख नारा था। वेदों में ही भारत की आत्मा बसती है, यही वजह है कि स्वामी दयानंद ने वेदों का भाष्य किया इसलिए ही उन्हें 'ऋषि' कहा जाता है क्योंकि 'ऋषयो मन्त्र दृष्टारः' (वेदमन्त्रों के अर्थ का दृष्टा ऋषि होता है)। उन्होंने कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म, ब्रह्मचर्य तथा संन्यास जैसे चार तत्वों को अपने दर्शन के चार स्तम्भ बनाया। उन्होंने ही सबसे पहले 1876 में 'स्वराज्य' का नारा दिया था जिसे बाद में लोकमान्य बाल गन्गाधर तिलक ने आगे बढ़ाया। आर्य समाज, स्त्री शिक्षा, समाज–सुधार, हिंदी भाषा उत्थान एवं राष्ट्रीयता का आन्दोलन जैसे महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें हमेशा याद किया जाता रहेगा।

महात्मा गाँधी जी कहते हैं कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। हृदय की कोई भाषा नहीं है, हृदय–हृदय से

बातचीत करता है और हिन्दी हृदय की भाषा है। हिंदुस्तान के लिए देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए, रोमन लिपि का व्यवहार यहाँ हो ही नहीं सकता। हिन्दी भाषा के लिए मेरा प्रेम सब हिन्दी प्रेमी जानते हैं। हिन्दी भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता–समझता है। और हिन्दी इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है। सारे भारत की लाड़ली भाषा है हिन्दी लेकिन हिन्दी का स्वर्णकाल अभी आना शेष है। 1918 में महात्मा गाँधी ने इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन में कहा था, 'जैसे ब्रिटिश अंग्रेजी में बोलते हैं और सारे कामों में अंग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं। वैसे ही मैं सभी से प्रार्थना करता हूँ कि हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का सम्मान अदा करें। इसे राष्ट्रीय भाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य को निभाना चाहिए।' महात्मा गाँधी ने इसके बाद पाँच 'हिंदी दूत' उन राज्यों में भेजे, जहाँ पर इस भाषा का ज्यादा प्रचलन नहीं था। इन पाँच दूतों में महात्मा गाँधी के सबसे छोटे बेटे देवदास गाँधी भी एक थे। ये पाँच हिंदी दूत हिंदी के प्रचार के लिए सबसे पहले तत्कालीन मद्रास स्टेट पहुँचे। जो आज का तमिलनाडु है। कोर्ट की सुनवाई में भी गाँधी चाहते थे हिंदी का प्रयोग हो। महात्मा गाँधी से जब प्रश्न किया गया कि आधिकारिक रूप से अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा है और इसे बदलने की बजाए ऐसे ही जारी रखा जाये क्योंकि लोग इस भाषा को भी भारत में समझने लगे हैं। इस सवाल पर महात्मा गाँधी का कहना था कि अंग्रेजी से बेहतर होगा कि हिन्दुस्तानी को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाया जाए क्योंकि यह हिंदू– मुसलमान, उत्तर–दक्षिण को जोड़ती है। महात्मा गाँधी का यह भी मानना था कि हिंदी का प्रयोग केवल बोलचाल और देश की आधिकारिक भाषा के तौर पर ही नहीं बल्कि न्यायालयों में सुनवाई के लिए भी किया जाना चाहिए।

इस बारे में वे कहते थे, 'कोर्ट की सुनवाई के दौरान राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता है, लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया पूरी तरह से समझ नहीं आएगी। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओं को कोर्ट में जरूर आगे बढ़ाना चाहिए। अपने भाषण की समाप्ति पर महात्मा गाँधी ने कहा था, मेरा विनम्र लेकिन दृढ़ विचार है कि जब तक हम हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं दिला देते और दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं को उनका जरूरी महत्त्व नहीं दिला देते, तब तक स्वराज्य की सारी बातें अर्थहीन रहेंगी।' गाँधी जी नहीं चाहते थे कि जिस 'हिंदी' को हम आज जानते हैं वह राष्ट्रभाषा बने।

10 अगस्त, 1947 को प्रकाशित अपने एक लेख में महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय भाषा के बारे में लिखा था, 'दिल्ली में मैं रोज ही हिंदुओं और मुस्लिमों से मिलता हूँ. जिनमें हिंदुओं की संख्या ज्यादा है। इनमें से ज्यादातर एक ही भाषा बोलते हैं जिसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं, फारसी और अरबी के भी (शब्द) ज्यादा नहीं होते. इनकी बड़ी संख्या को देवनागरी लिपि नहीं आती है। वे मुझे अलग सी अंग्रेजी में (चिट्ठी) लिखते हैं। और जब मैं उन्हें विदेशी भाषा में न लिखने को कहता हूँ, वे उर्दू लिपि में लिखते हैं। तो अगर ऐसे में यह अनेक भाषाओं की खिचड़ी 'हिंदी' हो और इसकी लिपि केवल देवनागरी हो, इन हिंदुओं की क्या दुर्दशा होगी?'

इसी लेख में महात्मा गाँधी ने यह भी लिखा था, 'लाखों भारतीय जो गाँवों में रहते हैं, उन्हें किताबों से कोई लेना–देना नहीं है। वे हिंदुस्तानी बोलते हैं, जिसे मुस्लिम उर्दू लिपि में लिखते हैं और हिंदू उर्दू या नागरी लिपि में लिखते हैं। इसलिए हमारा और आपका यह कर्तव्य है कि हम दोनों ही लिपियां सीखें। संविधान सभा में भी हिंदी पर गाँधी के विचारों का कई बार जिक्र हुआ था। महात्मा गाँधी के इसी लेख का जिक्र करते हुए संविधान सभा के सदस्य मोहम्मद इस्माइल ने 14 सितंबर, 1949 को भाषा के सवाल पर बहस के दौरान यह प्रस्ताव रखा था कि संविधान सभा को हिंदी को राजभाषा के तौर पर स्वीकार करते हुए उसकी उर्दू और देवनागरी दोनों ही लिपियों में राज्य की आधिकारिक भाषा के तौर पर स्वीकार करना चाहिए। हालांकि ऐसा हो न सका और संविधान ने देवनागरी में ही हिंदी को आधिकारिक भाषा माना।

हिंदी के राजभाषा बनने के बाद राजेंद्र प्रसाद ने महात्मा गाँधी को याद किया था। संविधान सभा में 14 सितंबर, 1949 को जब हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिला, राजेंद्र प्रसाद ने संविधान सभा के सदस्य के तौर पर हिंदी के लिए किए गए महात्मा गाँधी के प्रयासों को याद किया. उन्होंने कहा, 'मैं दक्षिण भारत के लिए एक शब्द कहना चाहूँगा। 1917 में जब महात्मा गाँधी चंपारण गये थे, मुझे उनके साथ काम करने का अवसर मिला। और जब उन्होंने दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार करने के बारे में सोचा और तय किया कि स्वामी सत्यदेव और अपने प्रिय बेटे देवदास गाँधी को इस काम को शुरू करने को कहा। राजेंद्र प्रसाद ने 1918 में इंदौर में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन में इस हिंदी प्रचार कार्यक्रम को एक प्रमुख कार्यक्रम बताया था। उन्होंने कहा था, 'मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं इस कार्यक्रम से पिछले 32 सालों में अच्छे से जुड़ा रहा हूँ लेकिन मैं दक्षिण भारत में एक कोने से दूसरे कोने तक गया हूँ और वहाँ पर

जैसे लोगों की महात्मा गाँधी के इस आह्वान के प्रति प्रतिक्रिया रही है, उसे देखकर मेरे दिल को बहुत खुशी होती है।'

महात्मा गाँधीजी और महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के दो महान आत्मा देश और देश की भाषा के लिए अंत तक लडते रहे। हम ऐसे महापुरुष के सदा ऋणी रहेंगे, जिनके विचारों द्वारा केवल हमारा नैतिक उत्थान होता रहा है ऐसा ही मात्र नही है अपितु विश्व पटल पर हमारी गौरवमय पहचान भी बनती है। हमारे देश भारत के 85 प्रतिशत स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, आर्य समाज ने ही पैदा किया। स्वदेशी आन्दोलन का मूल सूत्रधार भी आर्यसमाज ही है। हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार में सबसे अधिक योगदान आर्य समाज का रहा है। इस संस्था के प्रयास से ही हिंदी हमारी राजभाषा भी बनी और हमारे देश का गौरव भी बनी। क्यूंकि सरल है, सुबोध है, सुंदर अभिव्यक्ति है, हिन्दी ही सभ्यता, हिन्दी ही संस्कृति है यह स्वामी दयानंद ने मान लिया था। स्वामी दयानंद के प्रयास से हमारी राजभाषा हिंदी ने विश्व में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाषा का दर्जा प्राप्त किया। हिन्दू धर्म को ताकतवर बनाने के लिए स्वामी जी ने धर्म परिवर्तन कर चुके लोगों को पुनः हिंदू बनने की प्रेरणा देकर शुद्धि आंदोलन चलाया तथा आज जो विदेशों तथा योग जगत में नमस्ते शब्द का प्रयोग बहुत साधारण बात है। एक जमाने में इसका प्रचलन बिलकुल नहीं था–हिन्दू लोग भी ऐसा नहीं करते थे। आर्यसमाजियो ने एक–दूसरे को अभिवादन करने का ये तरीका प्रचलित किया तथा ये अब भारतीयों की पहचान बन चुकी है। यह बात यह प्रमाणित करती है कि स्वामी दयानन्द जी भारत की संस्कृति से कितना प्यार करते थे।

स्वामी दयानन्द ने हिंदी भाषा में सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक तथा अनेक वेदभाष्यों की रचना की थी। वस्तुतः प्रत्येक आर्यसमाजियों द्वारा की गयी हिन्दी–सेवा अद्वितीय है। सन् 1886 में लाहौर में स्वामी दयानंद के अनुयायी लाला हंसराज ने दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना की थी। सन् 1901 में स्वामी श्रद्धानन्द ने कांगड़ी में गुरुकुल विद्यालय की स्थापना की और अनेक आर्यसमाजी विदेशों में जाकर हिन्दू धर्म और हिन्दी भाषा एवं स्वातंर्त्य–चेतना का प्रचार प्रसार करते रहे। जिसका हम गहराइयों से प्रभाव महसूस करते हैं। और वेलेन्टाइन शिरोल नामक एक अंग्रेज ने 'इंडियन अनरेस्ट' नामक अपनी पुस्तक में तो सत्यार्थ प्रकाश को 'ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें खोखली करने वाला' और दयानन्द सरस्वती को 'भारतीय अशांति का जन्मदाता' बताया है। यह बात यह सिद्ध करती है कि हिंदीत्तर भाषी हिंदी सेवकों में महर्षि दयानंद सरस्वती का नाम सर्वप्रथम लिया जाना चाहिए।

महर्षि दयानंद सरस्वती ओजस्वी वाणी के प्रखर वक्ता थे जिसकी वजह से उनका तेजोमय संन्यासी व्यक्तित्व विशाल जनसमूह को अपनी ओर खींचता था। उनके सतर्क, शास्त्रार्थमयी वाग्मिता कौशल का जवाब नहीं था। ऐसे गुजरातवासी पुरोधा के मुख से जब हिंदी भाषा की वकालत हुई तो हिंदी को जैसे फलने–फूलने का आशीर्वाद मिल गया। स्वामी महर्षि दयानंद सरस्वती जी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और वक्ता थे, गुजराती उनकी मातृभाषा थी पर देश हित में उन्होंने मन से हिन्दी भाषा को स्वीकार किया था। 1972 में केशवचंद्र सेन के आमंत्रण पर कलकत्ता गये। उन्होंने केशवचन्द्र सेन के आग्रह पर संस्कृत और गुजराती दोनों को छोड़ हिंदी में भाषण दिया। वह भाषा जो पूरे देश को जोड़ सकती है उस भाषा की संस्कृतनिष्ठ वाणी में वेद वेदांगों के प्रतिपादन से कलकत्तावासी झूम उठे। इसके बाद उन्होंने सदैव हिंदी में ही भाषण दिये। वे हिंदी भाषा की नागरी लिपि में पत्र–लिखने लगे। उन्होंने कई लेख नागरी लिपि और हिंदी भाषा में लिखे। आर्य बंधुओं को उन्होंने नागरी लिपि और हिंदी भाषा में पत्र पत्रिकाएँ निकालने की प्रेरणा देते हुए स्वयं भी 'भारत सुदशा प्रवर्तक' पत्र हिंदी में निकाला। उन्होंने अपना विख्यात ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिंदी भाषा में भी लिखा पहले यह संस्कृत भाषा में लिखा गया था।

गोपाल प्रसाद कास ने महर्षि दयानंद सरस्वती को हिंदी का प्रथम सेनापति कहते हुए लिखा है– 'यह उस शताब्दी की बात है जब आसेतु हिमालय से कन्याकुमारी और कलकत्ता से लेकर बंबई तक भारत की जनता हिंदी समझती और बोलती भी थी लेकिन उसका नेतृत्व करने वाला कोई महापुरुष उस समय नहीं था। स्वामी जी ने यह गरिमामय नेतृत्व कदाचित सबसे पहले प्रदान किया। उस समय कतिपय लोग इस दुष्प्रचार में लगे थे कि हिंदी यहाँ की भाषा नहीं है। प्रत्युत बाहर से लायी गयी है। स्वामी दयानंद ने इस धारणा का विरोध किया तथा हिंदी को श्आर्य भाषाश नाम देकर उसे प्रतिष्ठा प्रदान की।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'हिंदी साहित्य के इतिहास' ग्रन्थ में उनके महत्त्व को स्वीकार किया है। इसके बाद पं. मदन मोहन मालवीय, महात्मा गाँधी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, चक्रवर्ती राजगोपालचारी, सुभाष चंद्र बोस जैसी हस्तियां हिंदी की पताका लेकर चल पड़ीं। महर्षि दयानंद के प्रभाव से आर्य समाज और उसके गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. ने हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की जिसे भूलना असम्भव है। गाँधी जी हिंदी के माध्यम से उत्तर और दक्षिण (सम्पूर्ण–भारत) को जोड़ना चाहते थे वे हिंदी को संपर्क भाषा बनाने वाले पहले सूत्रधार थे। गाँधी जी ने

दक्षिण में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास' की स्थापना की। उस समय 'इंडियन सर्विस लोग' के युवा सदस्यों ने हिंदी प्रचारक की मांग की। उस समय गाँधी जी ने अपने पुत्र देवदास को हिंदी प्रचार हेतु मद्रास भेजा था। हिंदी साहित्य सम्मेलन पंजाब में स्वामी महर्षि दयानंद सरस्वती और प्रसिद्ध आर्य समाजी सत्यदेव परिव्राजक को उनकी सहायतार्थ साथ भेजा। गाँधी जी विधानसभाओं, अदालतों, कचहरियों, सार्वजनिक सभाओं, अखबार और स्कूल सब जगह हिंदी और नागरी लिपि के प्रयोग का स्वप्न देखते थे। वे संविधान का मूल पाठ भी हिंदी और नागरी लिपि में प्रस्तुत करने के पक्ष में थे बाद में अन्य सभी भारतीय भाषाओं में उनके साथ ही भले ही अंग्रेजी में भी हो जाता। उनके मत में उत्तर भारत में तो हिंदी का स्वतः विकास होना था पर दक्षिण में यह चलने के लिए प्रयास की अपेक्षा रखती थी।

हिन्दी के बिना न तो आजादी पाई जा सकती थी और न तो हिन्दी के बिना आजादी बरकरार रह सकती है भारत के गाँवों और कस्बों की भाषा है हिन्दी शहरों और गाँवों की ताकत है हिन्दी हिन्दुस्तान के लिए हिन्दी से अच्छी कोई भाषा नहीं हो सकती है। हिन्दी ही वह भाषा है, जिसने भारत की आजादी के लौ को कभी कम नहीं होने दिया.अंग्रेजी भारत के लिए उपयोगी है, लेकिन हिन्दी भारत के लिए जरूरी है। हिन्दी का महत्त्व इसी बात से समझा जा सकता है कि चाहे किसी नेता, अभिनेता या व्यापारी को हर भारतीय तक अपनी बात पहुँचानी होती है, तो उसे हिन्दी का उपयोग करना हीं पड़ता है।

स्वामी दयानन्द के विचारों से प्रभावित महापुरुषों की संख्या असंख्य है, इनमें प्रमुख नाम हैं– मादाम भिकाजी कामा, भगत सिंह पण्डित लेखराम आर्य, स्वामी श्रद्धानन्द, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल ढींगरा, राम प्रसाद 'बिस्मिल', महादेव गोविंद रानाडे, महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय इत्यादि। इनके अनुयायियों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी बढ–चढ कर भाग लिया। आर्य समाज के प्रभाव से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ हुआ था। आर्य समाज ने हिन्दू धर्म में एक नयी चेतना का आरंभ किया था। स्वतंत्रता पूर्व काल में हिंदू समाज के नवजागरण और पुनरुत्थान आंदोलन के रूप में आर्य समाज सर्वाधिक शक्तिशाली आन्दोलन था। यह पूरे पश्चिम और उत्तर भारत में सक्रिय था तथा सुप्त हिन्दू जाति को जागृत करने में संलग्न था। यहाँ तक कि आर्य समाजी प्रचारक फिजी, मारीशस, गयाना, ट्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका में भी हिंदुओं को संगठित करने के उद्देश्य से पहुँच रहे थे। आर्य समाजियों ने सबसे बड़ा कार्य जाति व्यवस्था को तोड़ने और सभी हिन्दुओं में समानता का भाव जागृत करने का किया। भारत को जिस तरह ब्रिटिश सरकार का आर्थिक उपनिवेश और बाद में राजनीतिक उपनिवेश बना दिया गया था, उसके विरुद्ध भारतीयों की ओर से तीव्र प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। चूंकि भारत धीरे–धीरे पश्चिमी विचारों की ओर बढ़ने लगा था, अतः प्रतिक्रिया सामाजिक क्षेत्र से आना स्वाभाविक कार्य थी। यह प्रतिक्रिया 19वीं शताब्दी में उठ खड़े हुए सामाजिक सुधार आन्दोलनों के रूप में सामने आई। ऐसे ही समाज सुधार आंदोलनों में आर्यसमाज का नाम आता है। आर्यसमाज ने विदेशीपन उतार फेंकने के लिए, समाज में स्वयं आंतरिक सुधार करने का अपना कार्य किया। इसने आधुनिक भारत में प्रारम्भ हुए पुर्नजागरण को नई दिशा दी। साथ ही भारतीयों में भारतीयता को अपनाने, प्राचीन संस्कृति को मौलिक रूप में स्वीकार करने, पश्चिमी प्रभाव को विशुद्ध भारतीयता यानी 'वेदों की ओर लौटो' के नारे के साथ समाप्त करने तथा सभी भारतीयों को एकताबद्ध करने के लिए प्रेरित किया।

19वीं शताब्दी में भारत में समाज सुधार के आंदोलनों में आर्यसमाज अग्रणी था। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहला कदम आर्यसमाज ने उठाया, लड़कियों की शिक्षा की जरूरत सबसे पहले उसने समझी। वर्ण व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर है। जातिभेद भाव और खानपान के छूतछात और चौके–चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। अंधविश्वास और धर्म के नाम पर किये जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र उसी ने खोदी। 1875 में स्थापना के शीघ्र बाद ही इसकी प्रसिद्धि तत्कालीन समाज विचारकों, आचार्यों, समाज सुधारकों आदि को प्रभावित करने में सफल हुई, और कुछ वर्षों बाद ही आर्यसमाज की संपूर्ण भारत के प्रमुख शहरों में शाखायें स्थापित हो गईं। स्वामीजी के विद्वतापूर्ण व्याख्यानों तथा चमत्कारिक व्यक्तित्व ने युवाओं को आर्यसमाज की ओर मोड़ा। अन्य समकालीन सामाजिक धार्मिक आंदोलनों की अपेक्षा आर्यसमाज सही अर्था में अधिक राष्ट्रवादी था। यह भारत में पनप रहे पश्चिमीकरण के विरुद्ध अधिक आक्रमणकारी स्वभाव रखने वाला आंदोलन था।

आर्य समाज ने अपनी स्थापना से ही सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आन्दोलन का शंखनाद किया, जैसे– जातिवादी जड़मूलक समाज को तोड़ना, महिलाओं के लिए समानाधिकार, बालविवाह का उन्मूलन, विधवा विवाह का समर्थन, निम्न जातियों को सामाजिक अधिकार प्राप्त होना आदि। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना

के पीछे उपरोक्त सामाजिक नवजागरण को मुख्य आधार बनाया। उनका विश्वास था कि नवीन प्रबुद्ध भारत में, नवजागृत होते समाज में, नये भारत का निर्माण करना है तो समाज को बन्धनमुक्त करना प्रथम कार्य होना चाहिए। स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी स्वामी जी ने ब्राह्मणों की सत्ता के खण्डन का प्रतिपादन किया और धार्मिक अंधविश्वास व कर्मकाण्डों की तीव्र भर्त्सना की। अल्पकाल में ही वे भारत के समाज सुधार के क्षेत्र में नवीन ज्ञान–ज्योति के रूप में उदयीमान हुए। इसमें उन्होंनें पाया कि भारतीय युवा पाश्चात्य अनुकरण पर जोर दे रहा है। अतः उन्होंनें पाश्चात्य संस्कृति पर शक्तिशाली प्रहार किया और भारतीय गौरव को सदैव ऊंचा किया। आर्य का शाब्दिक अर्थ है–भद्र एवं समाज का अर्थ है–समाज। इस प्रकार से आर्य समाज का संपूर्ण अर्थ होता है भद्रजनों का समाज। आर्य समाज की स्थापना कुछ विशेष सिद्धांतों और नियमों को महत्त्व देकर की गई। इसमें आर्य समाज के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

→ सभी शक्ति और ज्ञान का प्रारंभिक कारण ईश्वर ही है।

→ ईश्वर ही सर्व सत्य है, सर्व व्याप्त है, पवित्र है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है और सृष्टि का कारण है।

→ सिर्फ ईश्वर की ही पूजा होनी चाहिए, वेद ही सच्चे ज्ञानग्रंथ हैं।

→ सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

→ उचित–अनुचित का विचार करने के बाद ही कोई कार्य करना चाहिए।

→ मनुष्य मात्र को शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति के लिए कार्य करना चाहिए।

→ प्रत्येक जीव के प्रति न्याय, प्रेम और उसकी योग्यता के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिए।

→ ज्ञान की ज्योति फैलाकर अंधकार को दूर करने का प्रयास हमेशा करना चाहिए।

→ केवल अपनी उन्नति से संतुष्ट न होकर दूसरों की उन्नति के लिए भी प्रयास करना चाहिए।

→ समाज के कल्याण के लिए और उन्नति के लिए अपने मत तथा व्यक्तिगत बातों का त्याग करना चाहिए।

सामान्यतः स्वामीजी ने भारतीय समाज तथा हिन्दूधर्म में प्रचलित दोषों को उजागर करने के साथ ही आंचलिक पंथों और अन्य धर्मो की भी आलोचना की। पुरोहितवाद पर करारा प्रहार करते हुए स्वामीजी ने माना था कि स्वार्थों और अज्ञानी पुरोहितों ने पुराणों जैसे ग्रंथों का सहारा लेकर हिन्दू धर्म का भ्रष्ट किया है। स्वामी जी धर्म सुधारक के रूप में मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, पुराणपंथी, तन्त्रवाद के घोर विरोधी थे। इसके लिए उन्होंने वेदों का सहारा लेकर विभिन्न दृष्टांत किए। इससे इन्होंने सुसुप्त भारतीय जनमानस को चेतन्य करने का अदभुत प्रयास किया। स्वामी जी ने हिन्दुओं को हीन, पतित और कायर होने के भाव से मुक्त किया और उनमें उत्कट आत्मविश्वास जागृत किया। फलस्वरूप समाज पश्चिम की मानसिक दासता के विरुद्ध दृढ़ आत्मविश्वास तथा संकल्प के साथ विद्रोह कर सके। आर्य समाज से जुड़े लोग भारत के स्वतन्त्रता–संग्राम के साथ–साथ भारत की संस्कृति, भाषा, धर्म, शिक्षा आदि के क्षेत्र में सक्रिय रूप से जुड़े रहे। आर्यसमाज ने हिन्दी को 'आर्यभाषा' कहा और सभी ने हानि उठाकर भी अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी में किया जबकि उनका प्रकाशन पहले उर्दू में होता था। आर्यसमाज हिन्दी के सम्वर्द्धन के मैदान में अग्रगामी बना। सैकड़ों गुरुकुलों, डीएवी स्कूल और कॉलेजों में हिंदी भाषा को प्राथमिकता दी गई और इस कार्य के लिए नवीन पाठ्यक्रम की पुस्तकों की रचना हिंदी भाषा के माध्यम से गुरुकुल कांगड़ी एवं लाहौर आदि स्थानों पर हुई जिनके विषय विज्ञान, गणित, समाज शास्त्र, इतिहास आदि थे। यह एक अलग ही किस्म का हिन्दी भाषा में परीक्षण था जिसके वांछनीय परिणाम निकले। भारतेंदु हरिश्चन्द्र की कविता भी इस विषय पर प्रकाश डालती है–

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा–ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन
पै निज भाषाज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।

उन्नति पूरी है तबहिं जब घर उन्नति होय
निज शरीर उन्नति किये, रहत मूढ़ सब कोय।।'

विदेशों में भवानी दयाल संन्यासी, भाई परमानन्द, गंगा प्रसाद उपाध्याय, डॉ. चिरंजीव भारद्वाज, मेहता जैमिनी, आचार्य रामदेव, पंडित चमूपति आदि ने हिंदी भाषा का प्रवासी भारतीयों में प्रचार किया जिससे वे मातृभूमि से दूर होते हुए भी उसकी संस्कृति, उसकी विचारधारा से न केवल जुड़े रहे अपितु अपनी विदेश में जन्मी सन्तति को भी उससे अवगत करवाते रहे। आर्यसमाज द्वारा न केवल पंजाब में हिंदी भाषा का प्रचार किया गया अपितु सुदूर दक्षिण भारत में, असम, बर्मा आदि तक हिंदी को पहुँचाया गया। न्यायालय में दुष्कर भाषा के स्थान पर सरल हिंदी भाषा के प्रयोग के लिए भी स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रयास किये गये थे।

आर्य समाज की हिन्दी पत्रकारिता ने देश को राष्ट्रीय संस्कृति, धर्मचिन्तन, स्वदेशी का पाठ पढ़ाया। आर्यसमाज के माध्यम से ज्ञानमूलक व रसात्मक दोनों प्रकार से साहित्य की अभूतपूर्व वृद्धि हुई। स्वामी दयानन्द पत्रकारिता द्वारा धर्म प्रचार व्यापक रूप से करना चाहते थे। वे स्वयं कोई पत्र नहीं निकाल सके परन्तु आर्य समाजियों को पत्र–पत्रिकाएँ निकालने के लिए प्रोत्साहित किया। आर्य समाज की विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रसारित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं में 'पवमान', 'आत्म शुद्धि पथ', 'वैदिक गर्जना', 'आर्य संकल्प', 'वैदिक रवि', 'विश्वज्योति', 'सत्यार्थ सौरभ', 'दयानन्द सन्देश', 'महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश', 'तपोभूमि', 'नूतन निष्काम पत्रिका', 'आर्य प्रेरणा', 'आर्य संसार', 'सुधारक', 'टंकारा समाचार', 'अग्निदूत', 'आर्य सेवक', 'भारतोदय', 'आर्य मुसाफिर', 'आर्य सन्देश', 'आर्य मर्यादा', 'आर्य जगत', 'आर्य मित्र', 'आर्य प्रतिनिधि', 'आर्य मार्तण्ड', 'आर्य जीवन', 'परोपकारी', 'सम्वर्द्धिनी' आदि मासिक, पाक्षिक व वार्षिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिससे हिन्दी पत्रकारिता को नव्य आलोक मिल रहा है।

इतिहास में पहली बार वेदों पर हिन्दी में भाष्य करके महर्षि दयानन्द जी द्वारा हिन्दी को गौरवान्वित किया गया। न केवल वेद भाष्य ही अपितु धर्माधर्म विषय के अपने सभी ग्रन्थों सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि को हिन्दी में लिखकर उन्होंने हिन्दी के गौरव में चार चान्द लगाये हैं।

सन् 1882 में अंग्रेज सरकार ने डा. हंटर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया था। इस का उद्देश्य राजकार्य में, जो उस समय प्रधानतया उर्दू फारसी तथा अग्रेजी भाषा में चल रहा था, के साथ आर्यभाषा (हिन्दी) को प्रवृत्त करना था। ऋषि दयानन्द इस उपयुक्त अवसर को हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। इस लिये उन्होंने राजकार्य में आर्यभाषा (हिन्दी) की प्रवृत्ति के लिये जो महान् प्रयत्न किया, उस पर ऋषि दयानन्द के इस पत्र–व्यवहार से ही प्रकाश पड़ता है, अन्य किसी स्रोत से प्रकाश नहीं पड़ता। ऋषि दयानन्द के आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृति कराने के इस अभियान का यह फल हुआ कि अकेले उत्तर प्रदेश से आर्य भाषा की राज्य कार्य में प्रवृत्ति हेतु 200 से ऊपर मैमोरियल हंटर कमीशन की सेवा में भेजे गये। हमें केवल मेरठ और कानपुर से भेजे गये दो मैमोरियल प्राप्त हुए हैं। इन दोनों में आर्यभाषा की उत्कृष्टता और उर्दू फारसी की न्यूनताओं को बड़े सशक्तरूप से उजागर किया है।

लेकिन हिन्दी साहित्य के जो भी इतिहास लिखे गये उन में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि के योगदान के विषय में पर्याप्त लिखा गया, परन्तु ऋषि दयानन्द के योगदान के विषय में प्रायः कम ही लिखा गया है इसे हम इन इतिहास लेखकों का ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज के प्रति उपेक्षा का भाव, पक्षपात व पूर्वाग्रह ही कह सकते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा (वाराणसी) की ओर से केन्द्रीय शासन को सहायता से जो कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी का विश्वकोष कई भागों में निकला है, उस में हिन्दी भाषा की सेवा के रूप में स्वामी दयानन्द का कहीं उल्लेख नहीं है। केवल पं. बालकृष्ण भट्ट के प्रसंग में इनके दयानन्द की विचारधारा से प्रभावित होने का उल्लेख मिलता है। यहाँ यह कहते हुए हमें दुःख होता है कि महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के योगदान के लिए इतिहास में इन्हें उचित स्थान न देकर आर्यसमाज से इतर हिन्दी प्रेमियों ने उनके साथ न्याय नहीं किया है। यहाँ हमें ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश की भूमिका मे लिखे वह शब्द स्मरण हो आते हैं जिनमें वह कहते हैं कि मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला हाता है परन्तु अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि कारणों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मुख्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं–

→ सत्यार्थप्रकाश

→ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

→ ऋग्वेद भाष्य

→ यजुर्वेद भाष्य

→ चतुर्वेदविषयसूची

→ संस्कारविधि

→ पंचमहायज्ञविधि

→ आर्याभिविनय

→ गोकरुणानिधि

→ आर्योद्देश्यरत्नमाला

→ भ्रान्तिनिवारण

→ अष्टाध्यायीभाष्य

→ वेदांगप्रकाश

→ संस्कृतवाक्यप्रबोध

→ व्यवहारभानु।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 53
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद और हिंदी

डॉ. किरण तिवारी
सहायक प्राध्यापिका, हिंदी
रांची विमेंस कॉलेज, रांची
मोबाइल नंबर– 9431358524
email : dr-kirantiwari96@gmail.com

आर्य समाज ने भारत के तथा विश्व के जनमानस में वेदों की पुनर्प्रतिष्ठा का निरंतर प्रयास किया है। इतना ही नहीं महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेदों में उल्लिखित उन सभी बातों को समाज के सामने रखा जो आधुनिक जगत के विज्ञान की कसौटी पर पूरी तरह खरी उतरती हैं। वेदों के आधार पर उन्होंने एकेश्वरवाद को सिद्ध किया और विविध वैदिक देवताओं को सच्चे परमात्मा के विशेषण बताकर बहुदेवतावाद की धारणा को निस्सार सिद्ध कर दिया।

महर्षि दयानंद राष्ट्रवादी थे। उनका आर्य समाज आंदोलन आधुनिक राष्ट्रीयता का कार्य और कारण रहा है। महर्षि ने हर जगह हिंदी भाषा को अपनाने और उसे राज्य कार्य की भाषा बनाने के लिए आंदोलन शुरू किया। वे हिंदी को आर्य भाषा के नाम से पुकारते थे। वे चाहते थे कि सभी भारतीय संस्कृत व हिंदी इन दोनों भाषाओं को अवश्य पढ़ें।

हिंदी की रक्षा के लिए व शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ ही ईसाई मत का प्रचार रोकने के लिए मत–मतांतर संबंधी आंदोलन देश के पश्चिमी भागों में भी चल पड़े थे।' पैगंबरी एकेश्वरवाद की ओर नव शिक्षित लोगों को खिंचते देख स्वामी दयानंद सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खड़े हुए और संवत 1920 से उन्होंने अनेक नगरों में घूम–घूम कर व्याख्यान देना आरंभ कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह व्याख्यान देश में बहुत दूर–दूर तक प्रचलित साधु हिंदी भाषा में ही होते थे। स्वामी जी ने अपना 'सत्यार्थ प्रकाश' तो हिंदी या आर्य भाषा में प्रकाशित किया ही, वेदों के भाष्य भी संस्कृत और हिंदी दोनों में किए। (जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है स्वामी जी के अनुयाई हिंदी को आर्य भाषा कहते थे) स्वामी जी ने संवत् 1922 में आर्य भाषा की स्थापना की और सभी आर्य समाजियों के लिए हिंदी या आर्य भाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। संयुक्त प्रांत के पश्चिम जिलों और पंजाब में आर्य समाज के प्रभाव से हिंदी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य ना होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक संपर्क से पंजाब वालों को लिखने पढ़ने की भाषा उर्दू ही रही थी मगर आज पंजाब में हिंदी का बोलबाला है तो स्वामी दयानंद सरस्वती की ही बदौलत है।'[१]

देश के विभिन्न स्थानों पर घूम–घूम कर हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार स्वामी दयानंद इतनी सरल सहज और आकर्षक भाषा में करते थे कि उन्हें सुनने के लिए दूर–दूर से लोग आते थे। उनकी वाणी में एक अद्‌भुत आकर्षण था। यूं कहें कि उनकी वक्तृत्व कला बहुत जोरदार थी। स्थान–स्थान पर उन्होंने सभाएँ की और लोगों के मन में हिंदी भाषा के प्रति सहज आकर्षण जगाने का अद्‌भुत कार्य किया। निश्चय ही अपने समय के वह एक सच्चे हिंदी हितैषी थे।

संदर्भ

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 23 वां संस्करण, पृष्ठ 243

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 54-56

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान

डॉ. मोहिनी दहिया
प्राचार्य, माता जीतो जी कन्या महाविद्यालय, सूरतगढ़
मो. 81078–89265
Email :- mohinidahiya67@gmail.com

महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के महान् चिन्तक, समाजसुधारक, अखण्ड़ ब्रहमचारी तथा आर्य समाज के संस्थापक थे। वे ईश्वर भक्त थे, उन्होंनें वेदों का प्रचार और आर्यावर्त को स्वतंत्रता दिलाने के लिए मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। हिन्दी को उन्होंनें आर्यभाषा का नाम दिया। भारतवर्ष के इतिहास में महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति है जिन्होनें अहिन्दी भाषा ''गुजराती'' होते हुए भी पराधीन भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता व अखण्ड़ता के लिए हिन्दी को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जानकर मन, वचन व कर्म से इसका प्रचार प्रसार किया। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि हिन्दी जिसे स्वामी जी ने आर्य भाषा का नाम दिया। शीघ्र लोकप्रिय हो गई यदि उनकी विचारधारानुसार चला जाए तो राष्ट्र पुनः विश्वगुरु, गौरवशाली, वैभवशाली, शक्तिशाली, सम्पन्न, सदाचारी और महान बन जाए।

उनकी मातृभाषा गुजराती थी, उनका अध्ययन अध्यापन संस्कृत में हुआ। इसी कारण वे संस्कृत में ही वार्तालाप, व्याख्यान, लेखन, शास्त्रार्थ, शंका, समाधान करते थे। एक बार वे प्रवचन संस्कृत में दे रहे थे और बंगला अनुवादक के रूप में पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न ने जानबूझकर स्वामी जी के प्रवचनों का विपरीतार्थ जो मान्यताओं के विरुद्ध रूप में प्रस्तुत किया। जिससे उनके वचनों का भावार्थ ही बदल दिया, इस बात पर क्रुद्ध होकर संस्कृत कॉलेज के छात्रों ने उनका विरोध किया और अनुवादक न्यायरत्न बीच में ही सभा छोड़कर चले गए। उस समय प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी नेता श्री केशवचन्द्रसेन भी इस सभा में उपस्थित थे। स्वामी जी को सुझाव दिया कि वह संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा हिन्दी को अपनाएँ। स्वामी जी ने तत्काल यह सुझाव स्वीकार कर लिया। यह दिन हिन्दी के इतिहास की एक प्रमुख घटना थी कि जब एक 48 वर्षीय गुजराती मातृभाषा के संस्कृत के अद्वितीय विद्वान थे हिन्दी को अपना लिया इस घटना के उपरान्त दयानन्द जी ने जो प्रवचन किए उनमें वह हिन्दी का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार उनके द्वारा ही गई हिन्दी सेवा अद्वितीय रही।

इन्होनें पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू धर्म में सुधार के लिए आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज का आदर्श वाक्य है, ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' जिसका अर्थ है विश्व को आर्य बनाते चलो। आर्य शुद्ध वैदिक परम्परा में विश्वास करते थे तथा अंधविश्वासों समाज में प्रचलित रूढ़ियों को अस्वीकार किया।

लक्ष्मीनारायण गुप्त के अनुसार : ''आर्य समाज ने हिन्दी गद्य साहित्य को समृद्ध करने एवं उसको गति प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है''

आर्य समाज में जुड़े लोग भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ –साथ भारत की संस्कृति, भाषा, धर्म, शिक्षा आदि के क्षेत्र में सक्रिय रूप में जुड़ रहे सैकड़ों गुरुकुलों, डी.ए.वी. स्कूल और कॉलेजो में हिन्दी भाषा को प्राथमिकता दी गई और इस कार्य के लिए नवीन पाठयक्रम की पुस्तकों की रचना हिन्दी भाषा के माध्यम से गुरुकुल कांगड़ी एवं लाहौर आदि स्थानों पर हुई जिनके विषय विज्ञान, गणित, समाजशास्त्र, इतिहास थे। यह एक अलग ही किस्म का हिन्दी भाषा में परिक्षण था। जिसके वांछनीय परिणाम निकले। स्वामी जी द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने विदेशों में, प्रवासी भारतीयों में हिन्दी भाषा का प्रचार किया। जिससे वे मातृभूमि से दूर होते हुए भी उसकी संस्कृति उसकी विचारधारा से न केवल जुडे रहे अपितु अपनी विदेश में जन्मी सन्तति को भी उससे अवगत करवाते रहे न केवल पंजाब में हिन्दी भाषा का प्रचार

किया, अपितु सुदूर दक्षिण भारत में असम, बर्मा आदि तक हिन्दी को पहुँचाया।

स्वामी दयान्नद पत्रकारिता द्वारा धर्म प्रचार व्यापक रूप से करना चाहते थे। वे स्वयं कोई ज्यादा पत्र नहीं निकाल सके। अपने जीवन काल में हिन्दी पत्रकारिता को भी अपने नई दिशा दी। आर्य दर्पण, आर्य समाचार, भारत सुदशा प्रवर्तक, देशहितैषी आदि अनेक हिन्दी पत्र आपकी प्रेरणा से प्रकाशित हुए एवं पत्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। उन्होंने आर्य समाजियों को भी पत्र पत्रिकाएँ निकालने के लिए प्रोत्साहित किया। अभी अनेक पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही है, जिससे हिन्दी पत्रकारिता को नव्य आलोक मिल रहा है।

एक आकर्षक व्यक्तित्व के धनी स्वामी दयानन्द जी जब प्रवचन देते थे तो लोग उनकी वाणी से प्रभावित होते थे। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों और अंग्रेजों पर भी स्वामी जी के नए विचारों का प्रभाव पड़ा। इस सम्बन्द्ध में इलाहाबाद से प्रकाशित 'पॉयनियर' पत्र में इस सभा के समाचार बराबर छपते रहे तथा प्रबुद्ध वर्ग की रुचि इस ओर आकर्षित हुई। स्वामी दयानन्द ने सन् 1872 से 1882 तक व्याख्यानों, पुस्तकों, ग्रंन्थों, शास्त्रार्थों तथा आर्य समाजों द्वारा मौखिक प्रचार एवं उनके अनुययायियों की हिन्दी निष्ठा से हिन्दी भी सर्वत्र लोकप्रिय हो गई।

अपने विचारों का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने तीन ग्रन्थ लिखे थे। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में उन्होंनें वेदों के सम्बंद्ध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया। दूसरे ग्रन्थ 'वेदभाष्य में उन्होंनें यजुर्वेद और ऋग्वेद की टीका लिखी। उनका सर्वाधिक प्रसिद्धग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' है। इसमे स्वामी जी ने सभी धर्मों का आालोचनात्मक विश्लेषण करते हुए यह प्रमाणित किया कि वैदिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ यह रचना हुई कई वर्षों से उत्सुकता एवं श्रद्धा से पढ़ी जाती है। फरवरी 1872 में हिन्दी को स्वीकार करने मे लगभग 2 वर्ष पश्चात् ही स्वामी जी ने 2 जून 1874 को उदयपुर में इसका प्रणयन प्रारम्भ किया। श्री विष्णुप्रभाकर इतने अल्प समय में स्वामी जी द्वारा हिन्दी में सत्यार्थ प्रकाश जैसा उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखने पर इसे आश्चर्यजनक घटना मानते है।

स्वामी जी का संस्कृत का ज्ञान बहुत अच्छा था, किन्तु केशवचन्द्र सेन के सलाह पर उन्होंनें 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी में की, जो आर्य समाज का मूल ग्रन्थ है। दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा क्रांतिकारी ग्रन्थ हिन्दी में रचकर हिन्दी को एक प्रतिष्ठा दी। आर्य समाज ने हिन्दी को 'आर्यभाषा' कहा और सभी आर्य समाजियों के लिए इसका ज्ञान आवश्यक बताया। दयानन्द जी ने वेदों की व्याख्या संस्कृत के साथ–साथ हिन्दी में की।

'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में स्वयं ने लिखा है '' मै पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाइबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों को ग्रहण और दोषों का त्याग तथा मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूँ। वैसा सबको करना योग्य है। स्वामी दयानन्द संस्कृत व हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का भी आदर करते थे। उन्होंने कहा था कि बालक जब पाँच या छः वर्ष का हो जाए तो उसे देवनागरी अक्षरों का ज्ञान होना चाहिए, देवनागरी लिपि में लिखे जाने के समर्थक थे जो राष्ट्रीय एकता की पूरक है।

'आर्योद्देश्य रत्नमाला' 1873 में प्रकाशित पुस्तक में स्वामी जी ने एक सौ शब्दों की परिभाषा वर्णित की। इनमें से कई शब्द आम बोलचाल के आते है पर उनके अर्थ रूढ हो गए है। उदाहण के लिए ईश्वर धर्म कर्म आदि। इनको परिभाषित करके इनकी व्याख्या इसमें है। न केवल वेदों का ही अभूतपूर्व सर्वोत्तम, सत्य व व्यावहारिक भाष्य उन्होंनें हिन्दी में किया है अपितु मनुस्मृति एवं अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अपनी पुस्तकों में उल्लेख करते समय उनके उदाहरणों के हिन्दी में अर्थ भी किए है।

धर्म, दर्शन, संस्कृति जैसे क्लिष्ट विषय को सर्वप्रथम उनके द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत कर उसे सर्वजन सुलभ किया। यह उल्लेखनीय है कि ऋृग्वेदादि भाष्य भूमिका संस्कृतव हिन्दी दोनों भाषाओं में है। दोनों भाषाओं के देवनागरी लिपि में होने के कारण प्रो. मैक्समूलर व इस ग्रन्थ के अन्य पाठकों व विद्वानों का हिन्दी से परिचय हो गया था।

थियोसोफिकल सोसायटी की नैत्री मैडम बैलेबेटेस्की ने स्वामी दयानन्द से उनके ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद की अनुमति मांगी तो स्वामी ने साफ मना किया। हिन्दी के इतिहास में शायद कोई बिरला ही होगा जिसने अपनी हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद मात्र इसलिए नहीं होने दिया कि इससे हिन्दी पाठकों मे ''प्रसार में बाधा आएगी।''

उन्होंने कहा था कि देवनागरी के अक्षर सरल होने से थोड़े ही दिनों में सीखे जा सकते है। हिन्दी भाषा भी आसानी से सीखी जा सकती है। जो व्यक्ति इस देश में उत्पन्न होकर यहाँ की भाषा हिन्दी को सीखने में परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है।''दयानन्द की आंखे वह दिन देखना चाहती है जब कश्मीर से कन्या कुमारी और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार होगा।

आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए उन्होंनें हिन्दी सीखना अनिवार्य किया था। भारतवर्ष की तत्कालीन अन्य संस्थाओं में हम ऐसी कोई संस्था नहीं पाते जहाँ एकमात्र हिन्दी के प्रयोग की बाध्यता हो।

हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिलाने का भी भरपूर प्रयास किया। बाबू दुर्गादास को भेजे पत्र में स्वामी जी ने लिखा है : यह काम एक के करने का नहीं है और चूक होने पर वह पुनः आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जाएगी। स्वामी जी की प्रेरणा से देश के कोने–कोने से आयोग को बड़ी संख्या में लोगों के हस्ताक्षर करवाकर ज्ञान भेजे गए। हिन्दी का गौरव प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द द्वारा किया गया यह कार्य भी इतिहास में अन्यतम घटना है। यहाँ तक की रियासतों के महाराजाओं ने स्वामी जी की प्रेरणा में अपनी रियासतों में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया।

इतिहास में पहले व्यक्ति है जिन्होनें अहिन्दी भाषी होते हुए भी सर्वप्रथम अपनी आत्मकथा हिन्दी में लिखी ' न केवल वेदों का भाष्य अपितु अपने सभी सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, व्यवहार भानू आदिग्रन्थ हिन्दी में लिखे जो धार्मिक जगत के इतिहास की अन्यतम घटना है ने केवल वेदों का ही अभूतपूर्व सर्वोत्तम सत्य व व्यावहारिक भाष्य उन्होंनें हिन्दी में अपितु मनुस्मृति एवं अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अपनी पुस्तकों में उल्लेख करते समय उनके उदाहरणों के हिन्दी में अर्थ भी किए है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि जो व्यक्ति जिस देशभाषा को पढ़ाता है उसको उसी का संस्कार मिलता है।

अन्ततः एक षडयन्त्र के अन्तर्गत विष देकर 1883 के दिन स्वामी जी की जीवन लीला समाप्त कर दी गई। यदि स्वामी जी कुछ वर्ष और जीवित रहे होते तो हिन्दी को और अधिक समृद्ध करते और इसका व्यापक प्रचार करते। इसमें हिन्दी भाषा का वर्तमान स्वरूप व विस्तार आज से कहीं अधिक उन्नत सरल व सुबोध होता।

स्वामी जी की मृत्यु पर मैडम ब्लेवटास्की (रूसी) ने लिखा था, '' यह बिल्कुल सही बात है कि शंकराचार्य के बाद भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी जी से बड़ा संस्कृतज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी व्यक्ति तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो।

स्वामी जी की मृत्यु के बाद थियोसोफिस्ट अखबार ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा था, ''उन्होंनें जर्जर, हिन्दुत्व के गतिहीन जनसमूह पर भारी प्रहार किया और अपने भाषणों में लोगों के ह्रदय में ऋषियों और वेदों के लिए अपरिमित उत्साह की आग जला दी। सारे भारतवर्ष में उनके समान हिन्दी और संस्कृत का वक्ता दूसरा कोई और नहीं था।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 57-58
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महर्षि दयानंद सरस्वती का योगदान

वसावा महेशभाई नानसिंगभाई

भारत में पुनर्जागरण के आंदोलन का नेतृत्व महर्षि दयानंद सरस्वती ने किया लगता है। महर्षि दयानंद ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी को प्रचार–प्रसार का माध्यम बनाया. आर्य समाज एक हिन्दू सुधार आंदोलन हैं। जिसकी स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती ने सन १८७५ में बंबई में मथुरा के स्वामी विरजानंद की प्रेरणा से की थी। आर्य समाज के प्रभाव को डॉ. चंद्रभानु सोनवणे विद्यालंकार ने कहा हैं– "आधुनिक भारत के पुनर्जागरण के आंदोलनों में स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज गुणवत्ता और प्रभाविष्णुता दोनों ही दृष्टियों से सर्वाधिक प्रमुख आन्दोलन हैं। जहाँ वह ज्ञान–निष्ठा, कर्मनिष्ठा और समाज से सवोंपरि है, वहाँवह सर्वाधिक व्यापक भी हैं।"[१]

स्वामी दयानंद की मातृभाषा गुजराती थी। उपदेश व् प्रवचनआदि का प्रयोग संस्कृत में करते थे। उनकी हिन्दी बोलने हिन्दी में उपदेश करने का परामर्श बंगाल में ब्रह्मसमाज के नेता श्री केशव चंद्र सेन ने दिया। देश के अधिकांश लोगो द्वारा बोली व समझी जाने वाली भाषा हिन्दी होने के कारण ऋषि दयानंद ने इस प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लिया इसके बाद हिन्दी में उपदेश देने का अभ्यास कर आर्य समाज के उदेश्य सिद्धांतो और विचारों का प्रचार–प्रसार के लिए उन्होंने साहित्य का निर्माण करना आरंभ कर दिया। स्वामी दयानंद ने कई धार्मिक व् सामाजिक पुस्तकें अपने जीवन कार्य में आर्यसमाज (हिन्दी) में भी लिखा, क्योंकि आर्यभाषा की पहुँच संस्कृत से अधिक थी हिन्दी को उन्होंने आर्य भाषा का नाम दिया। आर्य भाषा का प्रयोग करने वाला स्वामी दयानंद सरस्वती अग्रणी वप्रारम्भिक व्यक्ति लगते थे। स्वामी दयानंद सरस्वती की मुख्य कृतियाँ 'सत्यार्थप्रकाश', 'ऋग्वेदादीभाष्यभूमिका', 'ऋग्वेदभाष्य', 'यजुर्वेदभाष्य', 'चतुर्वेद विषय सूची', 'संस्कारविधि', 'पंचमहायज्ञविधि', (संध्याभाष्य), 'आर्याभिविनय', गोकरुणानिधि', 'आर्योद्देश्य रत्नमाला', भ्रान्तिनिवारण', ' अष्टाध्यायीभाष्य', वेदांगप्रकाश', 'संस्कृत वाक्य प्रबोध', 'व्यवहारभानु आदि, उन्होंने अनेक लघुग्रन्थ भी लिखकर हिंदी का गौरव बढ़ाया।

स्वामी दयानंद पत्रकारिता द्वारा धर्मप्रचार व्यापक रूप से करना चाहते थे। आर्य समाजियों को पत्र–पत्रिकाएँ निकालने के लिए प्रोत्साहित किया। आर्य समाज की विभिन्न संस्थाओं, गुरुकुलों द्वारा अनेक पत्र–पत्रिकाओं प्रसारित होती रही।

स्वामी दयानंद सरस्वती की मृत्यु के बाद कुछ विषयों पर मतभेद हो जाने के कारण सन १८९२ में आर्य सामाजियों के दो दल बन गए, किन्तु प्रत्येक दल का अपने विचारधारा के अनुसार इस आंदोलन को शक्तिशाली बनाया। स्वामी दयानंद के प्रमुख अनुयायियों में लाला हंसराज ने सन १८८६ लाहोर में दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज' की स्थापना की। स्वामी श्रध्दांनंद ने सन १९०१ में हरिद्वार के निकट कांगडी में गुरुकुल की स्थापना की। जिसके विषय विज्ञान, गणित, समाजशास्त्र, इतिहास आदि थे। इस कार्य के नविन पाठ्यपुस्तक कों हिन्दी भाषा के माध्यम से किया। अनेक आर्यसमाजी विदेशोंमे जाकर हिन्दुओं में हिन्दी भाषा एवं स्वातंर्त्यदृचेतना का प्रसार किया। जिसमें भवानी दयाल संन्यास, भाई परमानन्द, गंगाप्रसाद उपाध्याय, डॉ.चिरंजीव भारद्वाजः, मेहता जैमिनी, आचार्य रामदेव, पंडितचमूपती आदिने हिन्दी भाषा का प्रसार किया।

राष्ट्रीयता और राष्ट्रभाषा का अटूट सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। महर्षि स्वयं गुजराती होते हुए भी अपने समस्त ग्रंथ हिन्दी भाषा में लिखकर देशवासियों को हिन्दी अपनाने की प्रेरणा देते रहे परिलक्षित होते हैं। भक्त राम शर्मा के शब्दों में –"हिन्दी की प्रगति एवं उन्नति में तथा उसे राष्ट्रभाषा बनाने में आर्यसमाज का योगदान हैं।" [२]

डॉ. गणनतीचन्द्र गुप्ता का कहना हैं कि–"आर्यसमाज ने हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य को विशेष रूप से

प्रभावित किया हैं। स्वामी जी ने स्वयं गुजराती होते हुए भी इस सत्य का अनुभव कर लिया था। भारतीय जनता की एक भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती हैं, अतरू उन्होंने इसी को अपने सिद्धांतो एवं मत–प्रचार का माध्यम बनाया। दूसरे आर्यसमाज का सर्वाधिक प्रचार ही हिन्दी भाषी प्रदेशों में हुआ, अतरू इसके साहित्यकारों का भी उससे प्रभावित होना स्वाभाविक हैं।" [३]

इस तरह महर्षि ने हिन्दी साहित्य सृजन की दृष्टि से उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक भले ही न लिखे, लेकिन आधुनिक हिन्दी निर्माताओं में महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती का नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ

१) परोपकारी, सितम्बर, १९७४, पृ.१८

२) डॉ. भक्त राम शर्मा, द्विवेदीयुगीन कविता पर आर्यसमाज का प्रभाव, पृ.१४८

३) डॉ. जणनतिचन्द गुप्त, पध प्रबन्ध, प्रथमभाग, पृ. ६४ (हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास पृ. ६१३)

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 59-62

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी पत्रकारिता के विकास में आर्य समाज का योगदान

नीलम धारीवाल
शोध छात्रा (हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग)
उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार
शोध निर्देशक– **डॉ सुशील उपाध्याय**
(प्राचार्य– चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा हरिद्वार उत्तराखंड)
मो– 9719552622
email : gndhariwal@gmail.com

पत्रकारिता अभिव्यक्ति का संपूर्ण विज्ञान है। यह दैनिक जीवन और जिज्ञासा का सूत्रधार है। पत्रकारिता नित्य और नवीनताओं एवं दैनिक घटनाओं की प्रसंगावलियों को शीघ्र प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता भी रखती है। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि पत्रकारिता का अपना विशेष स्थान है। पत्रकारिता जनमानस की भावनाओं की अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि मनोरंजन का कार्य भी करती हैं। जिस प्रकार पौराणिक युग में नारद मुनि देवलोक एवं मृत्युलोक के बीच संप्रेषण का माध्यम थे परंतु आज आधुनिक युग में पत्रकारिता संप्रेषण का माध्यम है। राष्ट्र का कोई भी विषय या समाज का कोई भी पहलू पत्रकारिता के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया जा सकता हैं। पत्रकारिता शासक और शासित के बीच एक सेतु है जो जन सामान्य की समस्याओं को शासन तक पहुँचाने के लिए पत्रकारिता से सशक्त माध्यम और कोई नहीं है। इसलिए इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ भी कहा जाता है। न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका एवं पत्रकारिता विहीन सार्थक लोकतंत्र की कल्पना करना असंभव है। पत्रकारिता के माध्यम से ही समाज को एक नई दिशा दी जा सकती है तथा हिंदी पत्रकारिता आज विकास के शिखर पर पहुँच गई हैं वहाँ से आरंभ की स्थिति पर विचार करने पर अत्यधिक हर्ष, संतोष एवं गौरव की भावना से हृदय प्रसन्न हो जाता है। वर्तमान हिंदी पत्रकारिता को लेकर हमारे मन में एक विराट वटवृक्ष की कल्पना होती हैं। अतः हिंदी पत्रकारिता का व्यापक स्वरूप न जाने कितने ज्ञात अज्ञात साधनों की कठिन तपस्या का परिमाप है। अनेक विद्वानों, लेखकों एवं साहित्यकारों ने पत्रकारिता को अपने विशाल रूप में आने के लिए न जाने कितने बलिदान दिए तथा न जाने कितने संघर्ष करके पत्रकारिता को एक नया रूप दिया। पत्रकारिता अनेक क्षेत्रों में अपना कार्य कर रही हैं तथा जनमानस की समस्या को शासक तक अर्थात् शासन तक पहुँचाने का कार्य भी कर रही हैं। पत्रकारिता का अर्थ एवं परिभाषाएँ भिन्न–भिन्न साहित्यकारों, विद्वानों ने भिन्न–भिन्न रूप से व्यक्त की है। भारतीय साहित्य समाज में अनेक भाषाओं का बोलबाला रहा है। परंतु आज आधुनिक भारत में हिंदी पत्रकारिता का अपना एक विशाल एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी पत्रकारिता विश्व की सबसे बड़ी पत्रकारिता कही जा सकती है क्योंकि अनेक पत्र–समाचार पत्र एवं अनेक साहित्यिक गतिविधियां संपूर्ण विश्व में हिंदी भाषा के पत्रों में की जाती रही हैं। अर्थात् पत्रकारिता में हिंदी पत्रकारिता सबसे ज्यादा पढ़ी जाने वाली पत्रकारिता कही जा सकती हैं।

पत्रकारिता को अंग्रेजी में श्जर्नलिज्मश कहते हैं। जो फ्रेंच शब्द श्जीश से बना है इसका मतलब एक–एक दिन का या दैनिक जीवन की घटनाओं का विवरण देना है। समाचार–पत्र पत्रिकाओं के लेखक संपादक तथा उससे संबंधित कार्य इनके अंतर्गत आते हैं। अतः समाचार संकलन प्रसारण विज्ञापन का व्यापारिक संगठन पत्रकारिता है। पं० कमलापति त्रिपाठी के अनुसार ष्ज्ञान और विज्ञान, दर्शन और साहित्य, कला और कलाकारी, राजनीतिक और अर्थनीति, समाज शास्त्र और इतिहास, संघर्ष और क्रांति, उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश, प्रगति और दुर्गति के छोटे–बड़े

प्रभाव को प्रतिपादित करने में पत्रकारिता के समान दूसरा और कौन सफल हो सकता है।'[१] अर्थात् पत्रकारिता छोटे बड़े सभी पहलुओं में समाज को उन्नति एवं मार्ग दिखाने का एक सशक्त माध्यम कहा जा सकता है। श्री विष्णु दत्त शुक्ला के अनुसार ष्पत्रकार का काम बड़ा ही टेढ़ा है इसमें प्रवेश करने से पहले खूब सोच समझ लेना चाहिए।'[२] पत्रकारिता को साहित्यकार की सबसे पहली पीढ़ी भी कहा गया है आरंभ में साहित्यकार पत्रकारिता में लगे रहते थे। धीरे–धीरे उसी क्रम में वह वह साहित्य की वृद्धि करते हैं। प्रत्येक दैनिक पत्र साहित्यिक संपादक पत्रकारिता को साहित्य में सम्मिलित करते हैं अर्थात् इसी प्रकार साहित्यकारों और पत्रकारों ने कहा है कि सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य हैं और सर्वोत्तम साहित्य पत्रकारिता है। महादेवी वर्मा के अनुसार 'पत्रकारिता एक रचनाशील विधा है। इसके बगैर समाज को बदलना असंभव है। अतः पत्रकारों को अपने दायित्व एवं कर्तव्यों का निर्वाहन सफलतापूर्वक करना चाहिए। क्योंकि उन्हीं के पैरों के छालों का इतिहास लिखा जाएगा।'३ साहित्य का परिष्कार विकास एवं प्रचार पत्रकारिता द्वारा ही हुआ है अतः पत्रकारिता की विभिन्न विधाओं को भी साहित्यिक पत्रकारिता में लाया जा सकता है। साहित्यिक पिपासा शांत करने में कभी भी समाचार पत्र संपूर्ण नहीं हो सकते इसलिए साहित्यिक पत्रकारिता की उत्पत्ति हुई है। श्री रामकृष्ण खंडिलकर ने अपने शब्दों में कहा है कि पत्र और कला और पत्रकार कला इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है उनके अनुसार ष्ज्ञान और विचार शब्दों और चित्रों के रूप में दूसरों तक पहुँचाना ही पत्र कला है।'[४] विभिन्न साहित्यकारों एवं पत्रकारों ने कहा है कि सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य हैं परंतु सर्वोत्तम साहित्य पत्रकारिता भी हैं अतः साहित्य और पत्रकारिता दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ए०जी० गार्डन ने कहा है कि ष्साहित्यकार ही एक अच्छा पत्रकार हो सकता है। मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि श्रेष्ठ पत्रकार भी अच्छा साहित्यकार हो सकता है इस वक्त बात यह है कि साहित्यकार और पत्रकारिता ज्ञान को सर्व सुगम बनाने में दो महत्त्वपूर्ण साधन है जिससे एक थोड़ा जटिल और दूसरा काफी आसान है।'[५]

हिंदी पत्रकारिता का उद्‌भव और विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इसी शताब्दी में भारत में धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के महान और भव्य आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती का साहित्यिक जीवन भी यही से आरंभ हुआ। जिस समय महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के स्थापना की। उस समय भारतीय भाषाओं में उर्दू का बोलबाला था। उर्दू में भी अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थी। उसका बड़ा कारण मुगल साम्राज्य के होने से तथा भारतीय भाषाओं में उर्दू भाषा का व्यवहारिक होना था। आर्य समाज की स्थापना के बाद महर्षि दयानंद सरस्वती ने हिंदी पत्रकारिता के प्रचार प्रसार एवं उसकी उपयोगिता के लिए अनेक प्रयास किए थे।'सन 1969 में प्रथम बार इसका उल्लेख हुआ माना जाएगा इस वर्ष उन्होंने काशी में जाकर विद्वान मंडली में मूर्ति–पूजा पर अपना शास्त्रार्थ किया। जिसकी चर्चा पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बंगाल तथा पंजाब तक के हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी पत्रों में विस्तार पूर्वक की। समय समय पर प्रदेश के विभिन्न प्रमुख पत्रों में स्वामी दयानंद के उपदेशों, आख्यानों, शास्त्रार्थों तथा उनके विभिन्न आंदोलनों का पर्याप्त कवरेज दिया। जिस समय मुंबई के आर्य समाज की स्थापना हुई और उसके नियम निर्धारित किए गए और उसमें भी एक साप्ताहिक पत्र 'आर्य प्रकाश' के प्रकाशित हो जाने का संकल्प लिया गया था।'[६] महर्षि दयानंद सरस्वती ने पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने धर्म के प्रचार प्रसार एवं सत्य को जन–जन तक पहुँचाने के लिए अनेक पत्रों में अपने आलेखों, सिद्धांतों तथा शास्त्रार्थ को प्रकाशित किया। डॉ मंजूलता विद्यार्थी के शब्दों में 'महर्षि दयानंद सरस्वती पत्रकारिता द्वारा धर्म प्रचार सफलतापूर्वक और व्यापक रूप से करना चाहते थे परंतु अन्य कार्यों में संलग्न होने के कारण वे स्वयं कोई भी पत्र न निकाल सके किंतु उन्होंने आर्य समाजी को पत्रों को निकालने की आज्ञा और प्रोत्साहित किया।'[७] महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज के सभी कार्यकर्ताओं को यह छूट दे दी थी कि वह समाज में धर्म प्रसार के लिए पत्रकारिता का प्रयोग करें। अतः अनेक विद्वानों ने महर्षि दयानन्द सरस्वती अर्थात् आर्य समाज से प्रभावित होकर अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया ष्सर्वप्रथम महर्षि दयानंद के मंतव्यों से प्रभावित होकर आर्य समाजी मुंशी बख्तावर सिंह ने 'आर्य दर्पण' नामक साप्ताहिक पत्र सन् 1870 में प्रारंभ किया फिर वही बख्तावर सिंह ने सन् 1875 में 'आर्य भूषण' नामक मासिक पत्र निकाला।'[८]

स्वामी दयानंद सरस्वती के समकालीन प्रायरू सभी नेताओं, समाज सुधारकों और साहित्यकारों ने इनकी विचारधारा से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य को अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य एवं ध्येय बनाया। स्वामी जी की विचारधाराओं से जहाँ महात्मा गाँधी ने प्रबल प्रेरणा ग्रहण की थी, वही बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी इनके सुधारवादी आंदोलन में खुलकर साथ दिया था। भारतेंदु हरिश्चंद्र तो स्वामी दयानंद सरस्वती जी से इतने प्रभावित हो गए थे कि उन्होंने उनका नाम अपनी 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका के संपादक मंडल में भी समाविष्ट कर दिया था। इस पत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के कार्यों का विवरण यदा–कदा प्रकाशित होता रहा था। डॉ रतनलाल भटनागर ने महर्षि

दयानंद सरस्वती और भारतेंदु हरिश्चंद्र इन दोनों महान विभूतियों के बारे में लिखा है कि 'सन् 1967 में हिंदी प्रदेश में दो शक्तियां अवतरित हुई प्रथम शक्ति भारतेंदु थे। जिन्होंने कवि वचन सुधा (सन् 1867 से 85 तक) नामक पत्रिका प्रकाशित की तथा द्वितीय शक्ति स्वामी दयानंद सरस्वती थे उन्होंने आर्य समाज के प्रचार प्रसार के लिए पत्र निकालने को सार्थक करने के लिए आर्य समाजियों को प्रोत्साहित किया। इन दो शक्तियों ने ही हिंदी पत्रकारिता को गति देकर महान बनाया।'[६] महर्षि दयानंद सरस्वती की प्रेरणा से जो साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाओं का जो सिलसिला आरंभ हुआ। आर्य समाज के माध्यम से राष्ट्र चेतना में परिवर्तित हो गया था। श्री क्षेमचन्द्र सुमन के अनुसार ष्आर्य समाज के माध्यम से हिंदी साहित्य और पत्रकारिता की जो सेवा हुई वह इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उनके उल्लेख के बिना साहित्य और पत्रकारिता का इतिहास ही अधूरा रह जाता है।'[१०] महर्षि दयानंद सरस्वती की संस्था आर्य समाज ने तो हिंदी पत्रकारिता के विकास और उत्थान में ऐतिहासिक भूमिका को सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। आर्य समाज की हिंदी पत्रकारिता ने देश को राष्ट्रीय संस्कृति, धर्म चिंतन तथा स्वदेश का पाठ पढ़ाया। डॉ लक्ष्मी नारायण दुबे ने आर्य समाज की पत्रकारिता के संबंध में विचार प्रकट किए हैं कि 'आर्य समाजी हिंदी पत्रकारिता वास्तव में आधुनिक काल का इतिहास तथा भारतीय स्वतंत्रता समर की प्रेरणाप्रद गाथा है। हिंदी पत्रकारिता को आर्य समाज ने सर्वतोमुखी आयामों, प्रगतिशील सोपानों और बहुमुखी आधुनिक चेतना से सफलतापूर्वक संपन्न किया है।'[११]

स्वामी दयानंद सरस्वती ने जब आर्य समाज की स्थापना की उस समय हिंदी पत्रकारिता का एक निश्चित स्थान नहीं था। क्योंकि उस समय उर्दू भाषा का बोलबाला था। सर्वप्रथम आर्य समाज को पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही देश के प्रचार प्रसार को विशेष योगदान मिला था। डॉ. भवानी लाल भारतीय ने आर्य समाज की स्थापना काल सन् 1978 से लेकर 1900 तक प्रथम भाग में तथा दूसरे काल में सन् 1901 से 1925 तक तथा तृतीय काल में 1926 से लेकर अब तक को हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार एवं विकास के इतिहास को तीन चरणों में बांटा है। डॉ भवानी लाल भारतीय ने आर्य पत्रिका के द्विवेदी युग शीर्षक में स्पष्ट रूप से पथक पथक तीन कालों में विभाजित किया है। प्रथम सन् 1975 से सन् 1900 तक का काल 19वीं शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश आर्य समाज के उद्भव और विकास का काल था। सामान्यतः हिंदी पत्रकारिता का भी वह शैशव काल था। इस युग में आर्य समाज के जो पत्र प्रकाशित हुए में अधिकांश व्यक्तिगत प्रयासों से ही प्रकाशित हुए थे। उसी भांति भारतेंदु काल में हिंदी पत्र अपने अपने संपादकों के जीवन और अध्यवसाय से ही निकले थे। तब तक आर्य समाज के प्रांतीय संगठन पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुए थे। इसलिए उनके द्वारा संचालित पत्रों की संख्या भी बहुत कम थी। आर्य समाज का यह प्रारंभिक काल आर्य जनों में श्रद्धा, विश्वास, उत्सव और कुछ करने की भावना स्फुर्त कर रहा था। अतः आर्य पत्रों के पाठक भी इन पत्र–पत्रिकाओं से मार्गदर्शन, प्रेरणा, स्फूर्ति ग्रहण करने के लिए लालायित रहते थे। विभिन्न आर्थिक कठिनाई होने पर भी इन पत्रों की मांग संख्या आज की तुलना में जबकि शिक्षित समुदाय बड़ा ही है अधिक संतोषप्रद थी।'१२ भारतेंदु युग में हिंदी पत्रकारिता केवल ध्येयवादी पत्रकारों के कारण टिकी हुई थी। हिंदी शिक्षितों की संख्या बहुत ही कम थी। जबकि सरकारी एवं अन्य कार्यालयों में उर्दू भाषा का प्रयोग होता था। आर्य समाज की स्थापना के बाद आर्य समाजियों ने हिंदी भाषा को जन जन के प्रचार प्रसार में लाने के लिए अनेक प्रयास किए। यह प्रयास भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, तथा अन्य सभी युगों तक निरंतर होते रहे। भारतेंदु युग की पत्रकारिता में भारतेंदु युगीन आर्य समाज एवं सनातनी पत्र–पत्रिकाओं में विवाद होता रहता था। वे सनातनी पत्र नारी स्वतंत्रता, नारी शिक्षा, विधवा विवाह आदि का विरोध किया करते थे। वे आर्य समाजी पत्रों के समान वृद्ध विवाह, बाल विवाह, दहेज प्रथा आदि का खंडन करते थे। आर्य समाजी पत्रों की सरगर्मी ने ईसाई पत्रकारिता में भी गर्मी भर दी थी। सन् 1880 के बाद कि हिंदी पत्रकारिता आर्य समाज और ईसाइयों के शब्दों से भरी पड़ी है।'[१३]

सन्दर्भ सूची

१. पत्र और पत्रकार, पं० कमलापति त्रिपाठी, पृष्ठ सं– 04
२. पत्रकार कला, विष्णु दत्त शुक्ला, पृष्ठ सं– 06
३. हिंदी पत्रकारिता विकास और विविध आयाम, सुशील जोशी, पृष्ठ सं– 07
४. आधुनिक पत्रकार, रामकृष्ण खंडिलकर, पृष्ठ सं– 02
५. साहित्यिक पत्रकारिता, राममोहन पाठक, पृष्ठ सं– 03
६. आर्य समाज का इतिहास, पाँचवा भाग, सत्रहवां अध्याय, लेखक डॉ भवानी लाल भारतीय, पृष्ठ सं– 424

७. महर्षि दयानंद की हिंदी भाषा और साहित्य की देन, डॉ मंजूलता विद्यार्थी, पृष्ठ सं– 225
८. वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाज दर्शन के अंतर्गत दयानन्द और पत्रकारिता, व्याख्यानमाला पदम श्री आचार्य क्षेमचंद सुमन, पृष्ठ सं– 412
९. दि राइज एंड ग्रोथ ऑफ हिंदी जर्नलिज्म, डॉ रतनलाल भटनागर, पृष्ठ सं– 615
१०. स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय साहित्य के निर्माता, श्री विष्णु प्रभाकर, पृष्ठ सं– 98
११. हिंदी साहित्य में आर्य समाज की अभिव्यक्ति, डॉ लक्ष्मी नारायण दुबे, पृष्ठ सं– 72
१२. आर्य समाज का इतिहास, पाँचवा भाग, सत्रहवां अध्याय, डॉ भवानी लाल भारतीय, पृष्ठ सं– 432
१३. दि राइज एंड ग्रोथ ऑफ हिंदी जर्नलिज्म, डॉ रतनलाल भटनागर, पृष्ठ सं– 130

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 63-66

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानन्द सरस्वती और हिन्दी

डॉ. निर्मल कौशिक
सेवामुक्त एसोसिएट प्रोफेसर,
163, आदर्श नगर, ओल्ड कैंट रोड, फरीदकोट–151203।
Whats app and ph: 9915702843
Email : nirmalkaushiksep@gmail.com

भारत में समय समय पर अनेक महापुरुषों, सिद्ध साधकों, ऋषि मुनियों ने जन्म लिया। इन महामानवों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए आत्म बलिदान तक दे डाला। अपने तप और त्याग से मानवता का मार्ग प्रशस्त किया। इतिहास साक्षी है कि जब–जब भी मानव समाज में उच्छृंखलता और उद्दण्डता बढी है तब तब मानवीय जीवन मूल्यों के संरक्षण हेतु किसी न किसी युगपुरुष का अवतरण हुआ है। भारत में प्रत्येक युग में अनेक महामानवों का उदय हुआ है। रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा है–

जब जब होय धरम की हानी, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी
करहि अनीति जाई नहि बरनी, सीदहि विप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा [1]

रामचरितमानस बालकाण्ड पृ0 110

गीता में भगवान कृष्ण ने भी कहा है–

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् [2]

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। 4/7–8

महर्षि दयानन्द का अवतरण भी अधर्म का नाश करने और धर्म की स्थापना करने हेतु हुआ था। महर्षि दयानन्द का जन्म संवत् 1881 में गुजरात के टंकारा नामक ग्राम में एक परम्परावादी ब्राह्मण श्री कर्षण लाल जी त्रिवेदी के घर हुआ। जो कि एक बहुत बडे भूमिधर थे। उनका पहला नाम मूलशंकर था।[3]

बालक मूलशंकर आरम्भ से ही मेधावी था। चौदह वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने बहुत से शास्त्र व ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिये थे। स्वामी जी के पिता शैव धर्म के उपासक थे। उन्होंने एक दिन मूलशंकर से शिवरात्रि का व्रत करने को कहा। वे अपने पिता के साथ शिवालय चले गये। उन्हे समझाया गया कि रात भर जागना होगा। सब लोग सो गये लेकिन स्वामी जी जागते रहे। उन्होंने देखा कि शिवलिंग पर चूहे चढ़ आये है और मूर्ति पर चढ़ाई गई मिठाई को खा रहे है। इस घटना से स्वामी जी के मन मे अनेक शंकाये उत्पन्न हुई। पिता ने अनेक युक्तियों से समाधान करना चाहा लेकिन बालक का समाधान न हो सका।

कुछ दिन बाद उनकी 14 वर्षीय बहन तथा उनके पूज्य चाचा की मृत्यु ने मूलशंकर के हृदय में सच्चे वैराग्य को पैदा कर दिया। उन्होंने अमरत्व को प्राप्त करने के लिये योग धर्म का मार्ग अवलम्बन करने तथा आजीवन विवाह न करने का दृढ निश्चय कर लिया और 22 वर्ष की आयु में विवाह के उत्सव से सुशोभित घर से निकल पड़े।[4]

दो वर्ष निरन्तर भ्रमण के पश्चात चाड़ोद गाँव के समीप दक्षिण के दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी से इनकी भेंट हुई। उन्होंने इनको विधि पूर्वक संन्यास की दीक्षा दी। अब ये मूलशंकर से दयानन्द 'सरस्वती' बन गये।

संन्यास लेने के बाद अनेक साधु संन्यासियों के दर्शन करने के बाद मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी से इनकी भेंट हुई।[5]

दयानन्द का विरजानन्द जी से मिलना 'रत्न समागच्छ काञ्चनन' के अनुसार रत्न और सुवर्ण के मेल के समान था। ढाई वर्ष तक स्वामी जी शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। शिक्षा समाप्ति पर वे शिष्यों से लौंग भेट लिया करते थे किन्तु उन्होंने दयानन्द जी से भेंट के रूप में मांगा कि 'तुम संसार में फैले अन्धकार को मिटाकर सच्चे ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित करो। 1924 में आपने हरिद्वार के कुम्भ के मेले में गये और वहाँ पाखण्ड खंडिनी पताका स्थापित कर वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ किया।[6]

उन्होंने अनेक स्थानों पर जा कर मूर्ति पूजा का खण्डन कर जनता को ईश्वर का वास्तविक रूप समझाया। उनके विचार में ईश्वर विश्वात्मा है, सत् चित आनन्द है वह असीम अमर निराकार व सर्वव्यापक है। वह संसार का जनक और रक्षक है। उन्होंने बाल विवाह, अनमेल विवाह, जाति, पाति और छूआ छूत का विरोध किया। अन्धविश्वासों और मिथ्या धारणाओं का खण्डन किया। लोगो को यज्ञोपवीत धारण करवाया, सन्ध्या सिखाई एवं गायत्री का जप बताया और लाखो को अपने सदुपदेश से सन्मार्ग बताया। उन्होंने बताया कि वर्ण गुण और कर्म से होते है जन्म से नही। उन्होंने हजारों हिन्दुओं को मुस्लमान और ईसाई बनने से बचाया।

स्वामी दयानन्द जी के अनुसार जीवन में सदव्यवहार ही धर्म है। यह प्यार भ्रातृभाव, निर्धनो तथा दीन दुखियों के प्रति दया पर आधारित है। उससे मुक्ति प्राप्ति में सहायता मिलती है। शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार करते हुये स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने कहा कि जिस क्षेत्र में सदगुरुओं का अभाव हो जाता है और ईमानदार श्रोता नही मिलते, वहाँ अन्धविश्वास फैल जाता है। उन्होंने कहा कि गुरु और शिष्य सदगुणो को ग्रहण करें। गुरु अपने शिष्यों को मन वचन और कर्म से सच्चा बनाने का यत्न करें। शिष्य आत्मसंयमी, शान्त, गुरु भक्त, विचार शील और परिश्रमी बने। स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन किया और कहा भला जो पुरुष विद्वान और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान हो तो नित्य प्रति देवासुर संग्राम मचा रहेगा। उन्होंने घोषणा की कि यह एक बडा अन्याय है कि स्त्रियों को घरों के भीतर कैदी की भाँति रखा जाये और पुरुष स्वतन्त्र आते जाते रहे। उन्होंने सहशिक्षा का घोर विरोध किया और कहा कि लडको लडकियों के स्कूल दो कोस की दूरी पर होने चाहिए।[7]

शारीरिक शिक्षा के विकास की ओर ध्यान देते हुये उन्होंने कहा कि शारीरिक बल और स्फूर्ति की वृद्धि से बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि वह अत्यन्त जटिल और गहन और गम्भीर विषयों को भी ग्रहण कर सकती है। अतः लडको और लडकियों को प्राणायाम करना चाहिए। स्वामी दयानन्द जी ने राष्ट्रीय एकता के लिये जो अपील की थी हमारे युग में उसका एक विशेष महत्त्व है। उन्होंने कहा भाषायी मतभेदों, सांस्कृतिक हदों और रीति रिवाजों से उत्पन्न अलगावों को छोडना कठिन प्रतीत होता है। जब तक यह काम नही किया जायेगा तब तक पूरा लाभ लेना और लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। उन्होंने विदेशी भाषाओं को शिक्षा के माध्यम अपनाने का विरोध किया। उन्होंने कहा कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये भारतीय भाषाओं तथा संस्कृत को देश के लोगो द्वारा अपनाया जाना चाहिए।

महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना करके इनके द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार, समाज सुधार, दलितोंद्वार आर्य भाषा (हिन्दी) का प्रसार आदि का सूत्रपात किया। प्राचीन भारतीय धर्म और संस्कृति का वास्तविक स्वरूप दिखा कर सच्ची देश भक्ति की भावना उन लोगो में पुनः भरी जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में बहे जा रहे थे।

इस प्रकार वैदिक धर्म का प्रचार करके समाज सुधार करते हुए वे कई स्वार्थप्रिय व्यक्तियों के कोपभाजन बने। उन्हे कई बार मारने का प्रयत्न किया गया, गंगा में फैंकने और तलवार से मारने का प्रयत्न किया गया। उनपर पत्थर फैके गये और विष दिया गया। अन्त में उनके धन के लोभी रसोईये जगन्नाथ द्वारा दूध में पारा दिये जाने से सम्वत् 1940 में दीपावली के दिन उन्होंने इस नश्वर शरीर को छोड दिया।[8]

महर्षि दयानन्द आधुनिक भारत के धर्म सुधारक, क्रान्तिकारी, संन्यासी, आध्यात्मिक नेता, योगी, दार्शनिक तथा देशभक्त थे। मानव जाति के हितैषी के रूप में उनका जन्म हुआ। वे राष्ट्रीय स्थिरता, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं विश्वबन्धुत्व के पक्षधर थे।

आधुनिक काल में हिन्दी के विकास की यात्रा किसी से छिपी नही है। सभी उपदेशकों, मतमतान्तरों ने अपने–अपने सिद्धांतों का प्रचार प्रसार करने हेतु इसी का आश्रय लिया। ब्रज और अवधी के बाद खडी बोली हिन्दी का रूप अत्यन्त तीव्रता से प्रसारित हुआ। प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द जी ने भी संस्कृत और गुजराती में अपने व्याख्यान दिए मगर अनुयायियों की कठिनाई को देखते हुए उन्होंने हिन्दी को अपनाया। उनका उद्देश्य तो पूरे विश्व में वेदों और सत्य सिद्धान्तों का प्रकाश करना था। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में कहा है। ''जिस समय मैने यह ग्रन्थ सत्यार्थ

प्रकाश बनाया था, उस समय और उससे पूर्व संस्कृत में भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्म भूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है।[9]

यहाँ भाषा से उनका अभिप्राय हिन्दी भाषा से है। इस बात को सभी स्वीकार करते है कि स्वामी जी को अपने देश से बहुत प्रेम था। उन्होंने वेदों का प्रचार करने के लिए पूरे भारत का भ्रमण किया इसके लिए उन्होंने गुजराती होते हुए भी हिन्दी भाषा को अपनाया और अपने ग्रन्थों की रचना भी हिन्दी में ही की। आर्य मर्यादा पत्रिका के सम्पादक श्री प्रेम भारद्वाज का कथन है कि ''महर्षि दयानन्द गुजरात में जन्में थे, मथुरा में गुरु विरजानन्द से शिक्षा प्राप्त की तथा जनता में राष्ट्रीयता जगाने के लिए हिन्दी का सहारा लिया। यह उनकी स्वेदशीयत का ही प्रमाण था।'[10]

बम्बई में रहते हुए उन्होंने एक छोटा सा संगठन तैयार कर आर्य समाज की स्थापना की और साथ ही अपने ग्रन्थों को जनसामान्य की भाषा में रच कर अपनी बात उन तक पहुँचाई। ''उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश एवं वेदो के भाषा आदि प्रस्तुत कर हिन्दी के माध्यम से जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित किया।[11]

भ्रमण करते–करते स्वामी जी पंजाब पहुँचे। यहाँ कई स्थानों पर इनका विरोध भी भी हुआ लेकिन इन्होने अपना कार्य नही छोडा। स्थान–स्थान पर वेद प्रचार और कुरीतियों का खण्डन और सत्य का मण्डन होता रहा। पंजाब से चलकर वे राजपूताना के उदयपुर पहुँचे। यहाँ हिन्दी के विकास के लिए स्वामी जी को आधारभूमि मिल गई थी। उन्होंने उर्दू के स्थान पर जनसामान्य के लिए हिन्दी का प्रयोग प्रारम्भ किया। ''स्वामी जी ने इस स्थान पर क्षत्रिय राजपूतों के एक गुरुकुल खोलने की सम्मति दे दी थी। वहाँ राजकीय कामों में से उर्दू को निकाल कर देवनागरी का प्रचार किया। अरबी के शब्दों के स्थान में संस्कृत के शब्द प्रचलित किए।'[12]

स्वामी जी ने हिन्दी के प्रचार प्रसार हेतु आरम्भ में ही देशीय (प्रान्तीय) भाषाओं मातृभाषा के साथ–साथ देवनागरी अक्षरों का ज्ञान कराने की बात कही है उनका कहना है कि अन्य भाषाओ के साथ–साथ देवनागरी वर्णो का ज्ञान होने से हिन्दी और संस्कृत भाषा का भी विकास हो सकेगा। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में वे कहतें हैं। ''जब पाँच–पाँच वर्ष के लड़का लड़की हो तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करो। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।'' [13]

स्वामी जी यह भलीभांति जानते थे कि संस्कृत भाषा के साथ–साथ हिन्दी भाषा का विकास भी अनिवार्य है। संस्कृत के ग्रन्थों को समझने का सरलतम मार्ग हिन्दी का ज्ञान ही है। दैनिक व्यवहार में सबसे उपयुक्त भाषा हिन्दी ही है। राष्ट्रीय एकता को एक सूत्र में पिरोने वाली भाषा हिन्दी ही है। जब स्वामी जी कलकत्ता पधारे तो वहाँ उनके भाषण संस्कृत में सुनकर दूसरे विद्वान उसका अनुवाद हिन्दी में किया करते थे। इसका उद्देश्य था कि उनके अनुयायियों में अधिकांश लोग संस्कृत नही जानते थे। बाबू केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से महर्षि दयानन्द ने यह अनुभव किया कि साधारण जनता तक अपने विचार पहुँचाने के लिए हिन्दी भाषा को अपनाना चाहिए। इसके पश्चात् भारतीय् जनता की एकता की दृष्टि से महर्षि ने हिन्दी भाषा को अपनाया और सारे ग्रन्थ हिन्दी और संस्कृत में लिखे।''[14]

स्वामी जी के हिन्दी के विकास के योगदान के बारे में डा. श्रीमती वसुन्धरा रिहानी ने कहा है कि ''राष्ट्रीय भावना का बीजारोपण करने के लिए ही उन्होंने गुजराती होते हुए भी राष्ट्र के संगठन के लिए हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार हिन्दी भाषा में किया और स्व–साहित्य का प्रणयन भी हिन्दी भाषा में किया।''[15]

हिन्दी भाषा के विकास का मार्ग इतना सहज नही था। मगर कहीं से तो शुरूआत होनी थी। इसके शुरु होने का श्रेय भी स्वामी जी को ही जाता है। राजबहादुर पुष्कर के अनुसार ''हिन्दी मातृभाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए आन्दोलन किए गए और सबसे पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसकी शुरुआत की थी।''[16]

जैसा कि पहले कहा गया है कि स्वामी जी ने हिन्दी भाषा को संस्कृत भाषा से सरल मानते हुए और जनभाषा में प्रचलित होने के कारण ही स्वसाहित्य के लिए इसे वैदिक सिद्धांतों के प्रचार प्रसार के लिए उपयुक्त माना और इसे विकसित करने में भरपूर योगदान दिया। व्यवहारभानु की भूमिका में उन्होंने इसे सुगम भाषा कहा है। ''ग्रन्थ में कहीं–कही प्रमाण के लिए संस्कृत और सुगम भाषा लिखी और अनेक उपयुक्त दृष्टान्त देकर सुधार का अभिप्राय प्रकाशित किया है कि जिसको कोई सुख से समझ के अपना–अपना स्वभाव सुधार के सब उत्तम व्यवहारों को सिद्ध किया करे।''[17]

उनकी मान्यता थी कि ''अगर अन्य विदेशी भाषाएँ भी सीखनी है तो भी सभी को हिन्दी व संस्कृत को पढना चाहिए साथ–साथ स्वदेशी और विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन करना चाहिए।''[18]

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के इस हिन्दी प्रेम को देखकर आर्य समाज के सभी संस्थानों और संस्थाओं ने अपने

कामकाज और व्यवहार में हिन्दी को ही अपनाना आरम्भ कर दिया। स्वामी जी के कार्यकाल से ही आर्य समाज सदैव हिन्दी के विकास और प्रसार में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा है। इसके लिए अनेक आन्दोलन भी किए। सभी कार्यक्रमों सभाओं और साहित्यिक व संप्स्कृतिक गतिविधियों में भी हिन्दी का प्रयोग किया जाने लगा है। संस्कृत भाषा में रचित वेदों के अध्ययन में भी हिन्दी में अनुवाद किए जाने से वेदों का प्रचार प्रसार भी बढा है। ऐसा लगता है कि हिन्दी भाषा के माध्यम से ही वेदों की ओर लौटने का स्वामी जी का स्वप्न साकार होगा। आज केवल मौखिक प्रचार से ही नही अपितु लेखन कार्यो, पत्र–पत्रिकाओं और वैदिक साहित्य को हिन्दी भाषा में रचकर आर्य समाज हिन्दी के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे रहा है। आज स्वामी जी के इस हिन्दी भाषा के विकास हेतु आरम्भ किए कार्य को आर्य समाज के माध्यम से पूरे विश्व में प्रसारित कर आर्य संस्कृति, आर्य समाज व स्वामी जी के वैदिक सिद्धातों को जीवित रखने और विश्व में प्रसारित करने का माध्यम एक मात्र विश्वव्यापिनी हिन्दी भाषा ही है। इस मार्गदर्शन के लिए हम स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के सदा ऋणी रहेंगे।

सन्दर्भ-सूची

1. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस संवत् प्रकाशन 2070 पृ.सं. 110।
2. महर्षि वेदव्यास, श्रीमद्भगवतगीता संवत् 2064, 4/7–8 पृ. 64।
3. एन.आर.स्वरुप सक्सेना, शिक्षा सिद्धान्त 2012 पृ. 335।
4. प. राम गोपाल विद्यांलकार, दयानन्द चित्रावली, 1999 पृ 10।
5. प. राम गोपाल विद्यांलकार, दयानन्द चित्रावली, 1999 पृ 16।
6. प. राम गोपाल विद्यालकर, दयानन्द चित्रावली, 1999 पृ 26।
7. एन.आर.स्वरूप सक्सेना, शिक्षा सिद्धान्त 1999 पृ. 340।
8. प. राम गोपाल विद्यांलकार, दयानन्द चित्रावली, 1999 पृ 58।
9. स्वामी दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश 2015, भूमिका।
10. प्रेम भारद्वाज (सम्पादक) आर्य मर्यादा, 16 फरवरी 2020 पृ. 3।
11. प्रेम भारद्वाज (सम्पादक) विशेषांक, आर्यमर्यादा 23 फरवरी 2020 पृ. 1।
12. प. राम गोपाल विद्यांलकार, दयानन्द चित्रावली, 1999 पृ 50।
13. स्वामी दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश 2015, पृ. 35।
14. प्रेम भारद्वाज (सम्पादक) आर्य मर्यादा, 15 सितम्बर 2019 पृ. 3।
15. डा. वसुन्धरा रिहानी, महर्षि दयानन्द सरस्वती, विश्वज्योति सम्पा. डा. त्रिलोक चन्द तुलसी, जून जुलाई 2002, पृ 161।
16. राज बहादुर पुष्कर मातृभाषा आवश्यकता एवं चुनौतियां सम्पा.डा. बाबू लाल शर्मा, वैचारिकी सितम्बर–अक्तूबर 2018 पृ 42।
17. स्वामी दयानन्द सरस्वती व्यवहारभानु संवत् 2069 भूमिका।
18. नन्द लाल प्रसाद विद्यालंकार, वैदिक प्रश्नोत्तरी, नया संस्करण पृ. 61

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 67-69

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद और हिंदी

पूनम कुमारी
नेट, पीएच.डी. इंट्रेंस परीक्षा
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।
मो.न.– 8709973285
email : omkarpriya76@gmail.com

महर्षि दयानंद सरस्वती का जन्म 12 फरवरी 1824 ई. में गुजरात के राजकोट जिले के काठियावाड़ शहर में एक हिंदू परिवार में हुआ था। इनका असल नाम मूलशंकर तिवारी था। इनके गुरु विरजानन्द दण्डीश थे। इनकी मृत्यु 30 अक्टूबर 1883 ई. में राजस्थान के अजमेर में हुआ था। इनके दर्शन का नाम वेदों की ओर चलो आधुनिक भारतीय दर्शन था। इन्हें सिंधी मारहू भारतीय तथा स्वतंत्रता संग्राम के प्रणेता का सम्मान दिया गया है। इनके पिता का नाम करशनजी लालजी तिवारी तथा मां का नाम यशोदाबाई था। इनके पिता एक कर–कलेक्टर होने के साथ ब्राह्मण परिवार के एक अमीर, समृद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे।

उनके जीवन में एक छोटी सी घटना हुई, जिसने उन्हें हिंदू धर्म के पारंपरिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में प्रश्न पूछने तथा सोचने पर मजबूर कर दिया। शिवरात्रि की घटना है, जब वे बालक थे। उनका पूरा परिवार रात्रि जागरण के लिए मंदिर में ही रूके। सारे परिवार के सो जाने के बाद भी वे जागते रहें और शिव जी की प्रतिमा को देखकर सोचते रहे कि शिव जी प्रकट होंगे और प्रसाद ग्रहण करेंगे। परंतु वे यह देख कर आश्चर्यचकित रह गए कि उनके प्रसाद को एक चूहा खा रहा था। यह देखने के बाद उनके मन में यह विचार आया कि जो ईश्वर स्वयं को चढ़ाये गये प्रसाद की रक्षा नहीं कर सकता, वह मानवता की रक्षा कैसे करेगा। इस बात पर उन्होंने अपने पिता से तर्क वितर्क करते हुए कहा कि हमे ऐसे असहाय ईश्वर की पूजा नहीं करनी चाहिए। अपनी छोटी बहन और चाचा की मृत्यु हैजा से होने के कारण वे जीवन और मृत्यु के विषय में गहराई से सोचने लगे, और उसी कच्ची आयु में माता–पिता से कई प्रश्न करने लगे। उनकी बुद्धिमत्ता देख सभी चकित थे। उनके पिता ने उनका विवाह किशोरावस्था में ही करने का निर्णय कर लिया, परंतु मूलशंकर को लगने लगा था कि विवाह उसके लिए बना ही नहीं है। 22 वर्ष की उम्र में ही घर छोड़ सत्य की खोज में निकल पड़ें।

महर्षि दयानंद के ह्रदय में आदर्शवाद की अद्भुत भावना, यथार्थवादी मार्ग अपनाने की सहज प्रवृति, मातृभूमि की नियति को नई दिशा देने का अदम्य उत्साह, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से युगानुकूल चिंतन करने की तीव्र इच्छा तथा आर्यावर्तीय जनता में गौरवमय अतित के प्रति निष्ठा जगाने की भावना थी। उन्होंने किसी के विरोध तथा निंदा करने की प्रवाह किये बिना आर्यावर्त के हिंदू समाज को बदलने का संकल्प कर लिया था। वे घर से निकल कर स्वामी विरजानंद के पास पहुँच गए। वहाँ उन्होंने पाणिनी व्याकरण, पातंजल–योगसूत्र तथा वेद–वेदांतों का अध्ययन किया। उनके गुरु ने परोपकार करने, सत्य शास्त्रों का उद्धार करने, मत–मतांतरों के अंधविश्वास को मिटाने, वैदिक धर्म का आलोक सभी जगह फैलाने और इस प्रकार अपने द्वारा दिए विद्या को सफल करने का वचन गुरु दक्षिणा में महर्षि दयानंद से मांगी।

महर्षि दयानंद ने अनेकों स्थानों की यात्रा की। कहते है यात्रा शिक्षा की स्त्रोत होती है। वे जगह–जगह घूमें। एक बार वे हरिद्वार के कुंभ मेले में गए। वहाँ पाखंड–पाखंडियों का खण्डन किया। अनेक शास्त्रार्थ भी किये। वे बाबू केशवचंद्र सेन तथा देवेंद्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में आकर पूरे वस्त्र पहनना तथा हिंदी बोलना व लिखना प्रारम्भ किया।

यहीं (कलकत्ता) उन्होंने तत्कालीन वाइसराय को कहा कि विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परंतु भिन्न–भिन्न भाषाएँ और अलग तरह की शिक्षा का होना अति दुष्कर है। बिना इसे हटाए समान व्यवहार की कल्पना करना कठिन है।

महर्षि दयानंद ने10 अप्रैल 1875 ई.(चौत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत् 1932) को गिरगाँव मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। उन्होंने आर्यसमाज के नियम तथा सिद्धांत मानव कल्याण को ध्यान में रखते हुए बनाया। इस समाज का मुख्य उद्देश्य मानव समाज का उपकार(शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति) करना था। इन्होंने वेदों को ही प्रमाण मान कर सत्य का प्रचार करने के लिए देश–विदेशों का भ्रमण किया। जहाँ भी वे गए वहाँ उन्होंने अपने संस्कृत भाषा के अगाध ज्ञान और अपने प्रचंड तार्किक भाव से सभी रूढ़िवादी पंडितों और विद्वानों को परास्त किया। स्वामी जी ने कुरान और बाइबल का भी गहन अध्ययन किया था। इस कारण उन्होंने अपने शिष्यों के साथ मिलकर तीन–तीन मोर्चो पर संघर्ष आरंभ कर दिया था। उन्होंने इस्लाम और ईसाईयों के लिए दो मोर्चे स्थापित किए तथा तीसरा मोर्चा उन्होंने सनातन धर्मियों के लिए बनाया।

स्वामी जी ने तत्कालिन समाज में व्याप्त बुराईयों का खंडन किया। सर्वप्रथम हिंदू धर्म में फैली बुराईयों, पखंडों आदि का खंडन किया। हिंदू धर्म में जन्म लेने के बाद भी इन्होंने निडरता के साथ सनातन धर्म में फैले बुराईयों की कड़ी आलोचना की। वे सत्य पर सदा अडिग रहना जानते थे। सत्य ही उनकी सबसे बड़ी ताकत थी। अडंबरों पर विश्वास नहीं करते थे तथा सदा ही जनकल्याण के हितकारी परंपराओं के ही पक्षधर रहे। इन्होंने हिंदू धर्म में फैले अहितकारी परंपराओं के साथ–साथ इस्लाम और ईसाई धर्मों के भी कई मान्यताओं को चुनौती दी। इनकी समाज सुधारक भावना केवल बुद्धिजीवी या शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि इन्होंने जनसाधारण को भी अपनी ओर आकर्षित किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती वेदों के ज्ञान प्रचार के लिए सन् 1872 ई. में कलकत्ता गए, तब वहाँ वे देवेंद्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन से मिलें। यहाँ उन्होंने ईसाईयत से प्रभावित ब्राह्मों समाज के विद्वानों से विचार–विर्मश करते हुए पुर्नजागरण और वेदों की प्रामाणिकता के विषय में अपने विचार उनके सामने रखा। हालांकि ब्राह्मों समाज से वे एकमत नहीं हो पाए। इसके बाद केशवचंद्र सेन ने स्वामी जी को संस्कृत की जगह हिंदी का प्रयोग करने की सलाह दी। परंतु स्वामी जी को संस्कृत और गुजराती ही आती थी। वे हिंदी का विशेष ज्ञान नहीं रखते थे। इसके बाद भी केशवचंद्र सेन की सलाह मानते हुए उन्होंने हिंदी में ही उपदेश देना आरंभ कर दिया। जिसके बाद उन्हें अगणित हिंदी भाषी अनुयायी मिले और आर्यसमाज की स्थापना हुई। इसके बाद वे कलकत्ता से मुम्बई आए तथा वहाँ उन्होंने प्रार्थाना समाज के विद्वानों के साथ विचार–विर्मश किया। हालांकि परिणाम वही रहा। यहाँ भी दोनों एकमत नहीं हो पाए। इसके बाद मुम्बई से दिल्ली आए और वहाँ भी उन्होंने सत्य की खोज के लिए हिंदू, मुस्लिम और ईसाई धर्म के सभी अनुनायियों की एक सभा बुलाई। इनके बीच दो दिनों तक विचार–विमर्श हुआ परंतु वे किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पाएँ। यहाँ से उन्होंने पंजाब की यात्रा की। पंजाब के लोगों द्वारा आर्यसमाजियों के आदर–सत्कार देख स्वामी जी काफी उत्साहित हुए। उन्होंने पंजाब में आर्यसमाजियों की कई शाखाएँ स्थापित की। जिससे पंजाब आर्यसमाजियों का प्रधान गढ़ बन गया।

महर्षि दयानंद सरस्वती ओजस्वी वाणी के साथ प्रखर वक्ता थे। हिंदीतर भाषी होने के बाद भी इनका नाम हिंदी सेवकों में लिया जाता है। इनका तेजस्वीमय संन्यासी व्यक्तित्व साधारण जनसमूह को स्वतः ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। हिंदी भाषी न होते हुए भी इन्होंने हिंदी का प्रचार–प्रसार करना शुरू कर दिया। इनके आशीर्वाद से हिंदी फलने–फूलने लगी। देशहित को नजर में रखते हुए उन्होंने हिंदी को अपने मन में स्वीकार किया। नागरी लिपि में पत्र लेखन प्रारम्भ किया। उन्होंने कई लेख नागरी लिपि और हिंदी भाषा में लिखा तथा आर्य बंधुओं को भी नागरी लिपि और हिंदी भाषा में पत्र–पत्रिकाएँ निकालने की प्रेरणा दी। इनके पत्र का नाम भारत सुदशा प्रवर्तक था। गोपाल प्रसाद कास ने उन्हें हिंदी का प्रथम सेनापतिकहते हुए लिखा है– "यह उस शताब्दी की बात है जब असेतुहिमालय से कन्याकुमारी और कलकत्ता से लेकर बम्बई तक भारत की जनता हिंदी समझती और बोलती थी लेकिन उसका नेतृत्व करने वाला कोई महापुरुष उस समय नहीं था। स्वामी जी ने यह गरिमामय नेतृत्व कदाचित सबसे पहले प्रदान किया। उस समय कतिपय लोग इस दुष्प्रचार में लगे थे कि हिंदी यहाँ की भाषा नहीं है। प्रत्युत बाहर से लाई गई है। स्वामी दयानंद ने इस धारणा का विरोध किया तथा हिंदी को आर्यभाषा नाम देकर प्रतिष्ठा प्रदान की।" पंडित रामचंद्र शुक्लजी ने भी हिंदी साहित्य के इतिहास में स्वामी दयानंद जी के महत्त्व को स्वीकार किया है। इनके साथ–साथ पंडित मदन मोहन मालवीय, महात्मा गाँधी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और सुभाषचंद्र बोस जैसे महान

विद्वानों ने हिंदी को अलग पहचान दिलाई।

स्वामी दयानंद सरस्वतीजी ने समाज व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा विरोध कर वे समाज में एक संयासी योद्धा के रूप में प्रकट हुए। वर्ण व्यवस्था का विरोध कर स्त्री शिक्षा को बल दिया। जन्म के अनुसार जाति निर्धारण की जगह कर्म के अनुसार जाति निर्धारण करने का पुरजोर समर्थन किया। वे हमेशा दलितों के उद्धार के विषय में चिंतित रहते थे। उन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए आंदोलन चलाया। वे बाल विवाह और सत्ती प्रथा के कट्टर विरोधी थे तथा विधवा विवाह का समर्थन करते थे। वे तैत्रवाद के समर्थक थे। वे ईश्वर को सृष्टि का निमित्त कारण तथा प्रकृति को अनादि तथा शाश्वस्त मानते थे। उनके दर्शन वेदानुकूल थे। वे यह भी कहते थे कि इंसान कर्म करने में तो स्वतंत्र हैं परंतु कर्म भोगने में परतंत्र हैं। स्वामी जी सभी धर्मानुयायियों को एक मंच में लाने के लिए जीवन पर्यंत लगे रहे। उनके अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि और ऋग्वेदादि भाष्य–भूमिका में उनके मौलिक विचार सुस्पष्ट रूप में प्राप्य हैं। एक योगी होने के कारण वे प्राणायम पर विशेष बल देते थे। समाज के पुनरूत्थान के लिए वे सभी जातियों तथा स्त्रीयों के पक्षधर थे। राष्ट्र जागरण की दिशा में उन्होंनेसामाजिक क्रांति और आध्यमिकता को अपनाया। उनके अनुसार देश में विदेशियों का शासन होने के पीछे सबसे बड़ा कारण आलस्य, आपस का वैमनस्य, ब्रह्मचर्या का पालन न करना, बाल विवाह, वेद विद्या का मिथ्या अर्थ प्रकट करना आदि कुकर्म है। स्वामीजी स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराष्ट्र, स्वसंस्कृति और स्वदेशोन्नति के अग्रदूत हैं। इनका एक सिद्धांत है"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"अर्थात सारे संसार को श्रेष्ठ मानव बनाओ तथा उनके अंतिम शब्द थे " प्रभु! तूने अच्छी लीला की आपकी इच्छा पूर्ण हो"।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वामी दयानंद सरस्वतीः उनके जीवन और कार्य का अध्ययन, 1987
2. चौबे, एसपी का विकासः कुछ महान भारतीय शिक्षक, आगरा, 1957
3. दयानंद सरस्वती की आत्मकथा, 1987
4. स्वामी दयानंद सरस्वती गैर–आर्यसमाजवादी आंखों के माध्यम से, 1990
5. दयानंद सरस्वती (एचटीएम) रिफरेंसइंडियानेट जोन.कॉम, 2007
6. स्वामी दयानंद सरस्वती, सिंहल मीनु, प्रभात प्रकाशन, पृ. 03, 2014
7. आर्य भाषा के उन्नायक महर्षि दयानंद, डॉ मधु संधु, 2016

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 70-73
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी आंदोलन

पोपट भावराव बिरारी
सहायक प्राध्यापक, कर्मवीर शांतारामबापू कोंडाजी वावरे कला,
विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय सिडको, नासिक
email : popatbirari@gmail.com
मो.– 9850391121

प्रस्तावना

स्वाधीनता आंदोलन के बाद देशवासियों में जागृति एवं राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा देने के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता थी, जिसे सभी जानते हो तथा जो सबको एकता के सूत्र में बाँधे रखें। जननायकों ने राष्ट्रभाषा हिंदी को राष्ट्रीय एकता का साधन मानकर उसे देशव्यापी प्रचार एवं प्रसार की योजना में कार्यान्वित करना चाहा। आगे राजभाषा के रूप में हिंदी भाषा स्वीकृत होने के पश्चात भी उस पर निरंतर संकट आते रहे। पंद्रह वर्षों में हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी। ऐसे विचार सामने आए और इसकी स्वीकृति दी गई किन्तु वह एक गलती थी। यदि इसके स्थान पर यह निर्णय लिया जाता कि संविधान के लागू होते ही हमारा सारा राजकाज हिंदी में चलेगा, चाहे वह बहुमत से ही क्यों न हो। इसके लिए उस समय संविधान सभा में बहुमत मौजूद होता तो हिंदी पर इस प्रकार के संकट नहीं आते। ऐसे बहुत सारे देश हैय जिनकी अपनी भाषा समाप्त हो रही थी लेकिन उन्होंने फिर से उस भाषा को प्रमुखता दीय तो वह भाषा अधिक विकसित हुई। जैसे कि आयरलैंड और इजरायल इसके उदाहरण है। आयरलैंड में गेलिक भाषा मर चुकी थी परंतु आयरलैंड के स्वतंत्र होते ही उन्होंने अपना सारा कार्य गेलिक भाषा में प्रारंभ कियाय जो अब तक ठीक से चल रही है। इजराइल में हिब्रू भाषा मर चुकी थी किंतु इजराइल के स्वतंत्र होने के पश्चात ही उन्होंने सब कामकाज हिब्रू में शुरू कर दिया। वही बात हिंदी भाषा के संबंध में भी हो सकती थी। हिंदी भाषा तो जीवित भाषा थी और भारत के लगभग आधे लोगों की भाषाय जिस दिन वह राजभाषा स्वीकृत की गई, उसी दिन से राजकाज हिंदी में चल सकता था लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। अतः समय–समय पर हिंदी के प्रचार प्रसार के आंदोलन में जिन प्रमुख व्यक्तियों एवं संस्थाओं का योगदान रहा हैय उसे निम्नलिखितरूप से विवेचित किया जाएगा।

हिंदी प्रचार-प्रसार आंदोलन में प्रमुख व्यक्तियों और संस्थाओं का योगदान

अ) हिंदी प्रचार–प्रसार में प्रमुख व्यक्तियों का योगदान

१) महात्मा गाँधी

स्वदेशी आंदोलन के प्रणेता महात्मा गाँधीजी ने अंग्रेजी को सदैव गुलाम मानसिकता का प्रतीक मानकर उसके प्रतिविरोध दर्शाया है तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का समर्थन किया है। उनके अनुसार 'अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए भी हमें भारतीय भाषा–समूह में से एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता और समझता है और जिसे दूसरे लोग भी आसानी से सीख और समझ सकें।'[1]गाँधीजी के विचार स्वदेश अभिमान को स्थिर रखने के लिए हिंदी भाषा सीखने के संदर्भ में है। सन.1918 को हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में सभापति के पद पर महात्मा गाँधी थे। गाँधीजी देश की मातृभाषा के प्रति श्रद्धा एवं आस्था रखने के लिए आग्रह करते थे। वह देशवासियों को अपने कर्तव्य की याद दिलाते हुए कहते हैं कि 'आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य करना चाहिए।'[2]

हिंदी प्रचार–प्रसार में महात्मा गाँधीजी ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उनमें पहला है, देश के प्रमुख राजनीतिक पार्टी में कांग्रेस में हिंदी प्रयोग को प्रोत्साहन और दूसरा है, हिंदी भाषी प्रांतों जैसे दक्षिण भारत में हिंदी का सक्रिय प्रचार करना आदि। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से पहली बार 'दक्षिण भारत प्रचार सभा' की स्थापना हुई। सन 1918 से 1927 तक गाँधीजी ने अपने पुत्र देवदास को दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार–प्रसार में लगाया। हिंदी प्रांतों में गाँधीजी के योगदान का अत्यधिक महत्त्व है।

गाँधीजी ने हिंदी के रूप में सदैव ही शहिंदुस्तानीश्के नाम का समर्थन किया है। इस संदर्भ में उनका और पुरुषोत्तम दास टंडन के मध्य हुआ विवाद शहिंदी–हिदुस्तानी विवादश के रूप में चर्चित हुआ। गाँधीजी का मानना था कि हिंदुस्तानी श्नागरीश और श्फारसीश लिपि में लिखी जाए तथा देश की राष्ट्रभाषा बने। इसके पीछे उनका उद्देश्य देश में सांप्रदायिक एकता को बनाए रखने का था। देश स्वतंत्र होने पर शहिंदुस्तानीश को न तो संवैधानिक मान्यता मिली और न ही जनमत उसके पक्ष में हो पाया, परंतु प्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी राष्ट्र गौरव का प्रतीक बनकर राष्ट्रभाषा के रूप में अवश्य प्रतिष्ठित हुई, यह निर्विवाद सत्य है।

२) पुरुषोत्तम दास टंडन

पुरुषोत्तम दास टंडन को शहिंदी साहित्य सम्मेलनश का प्राण कहा जाता है। उन्होंने सम्मेलन की स्थापना करके हिंदी भाषियों को एक मंच स्थापित कर दिया है। जिससे संपूर्ण भारत में हिंदी की अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधीजी के अन्यतम सहयोगी रहे पुरुषोत्तम दास टंडन गाँधीजी के शहिंदुस्तानीश के प्रति नजरिए से बिल्कुल सहमत नहीं थे। हिंदी साहित्य सम्मेलन से गाँधीजी ने त्यागपत्र दे दिया किंतु उसके आगे झुके नहीं और हिंदी देवनागरी का ही समर्थन करते रहे। संविधान परिषद द्वारा देवनागरी अंको को स्वीकार न करने पर उन्होंने परिषद से त्यागपत्र दे दिया। वह राष्ट्रभाषा हिंदी को राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय संस्कृति का प्रतीक मानते थे। इसलिए भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था कि श्वह स्वतंत्रता संग्राम के निर्भय सेनानी और हमारी संस्कृति के मूलभूत मूल्यों में विश्वास करने वाले रहे हैं।' सन.1961 में भारत सरकार ने उन्हें हिंदी के प्रति की गई सेवाओं के लिए भारतरत्न से सम्मानित किया।

३) हिंदी सेवाभावी अन्य व्यक्ति

हिंदी में काका कालेकर, जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, विनोबा भावे एवं सेठ गोविंददास आदि उल्लेखनीय रहे हैं। काका कालेकर, नेहरू और डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने गाँधीजी की शहिंदुस्तानीश का समर्थन किया, जबकि विनोबा भावे एवं सेठ गोविंददास हिंदी और देवनागरी लिपि के प्रबल पक्षधर थे। संविधान सभा में सेठ गोविंददास ने 'हिंदुस्तानी' का डटकर विरोध किया। संविधान सभा में उन्होंने कहा था कि 'जो देश में एक संस्कृति चाहते हैं, वे भला दो लिपियों में लिखी जानेवाली भाषा का समर्थन कैसे करेंगे।'

आ) हिंदी प्रचार–प्रसार में प्रमुख संस्थाओं का योगदान

१) आर्य समाज

स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए आर्य समाज की स्थापना सन. 1817 में मुंबई में की थी। इस संस्था ने हिंदी को 'आर्य भाषा' घोषित किया तथा संस्था के सभी सदस्य के लिए हिंदी में कार्य करना आवश्यक कर दिया। श्री. पी. के. केशवन का कथन है कि 'आर्य समाज के संस्थापक तथा देश के महान सुधारक महर्षि दयानंद सरस्वती ने भी जिनकी मातृभाषा गुजराती थी, भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव किया था। उन्होंने स्वयं हिंदी पढ़ी और सबसे पहला व्याख्यान सन 1974 में काशी में दिया था।'[3]

स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाजियों के लिए नियम बनाया कि ष्सभी आर्य–भाषा पढ़े और इस प्रकार हिंदी–भाषा प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जब बहिष्कार आंदोलन के फलस्वरूप जगह–जगह राष्ट्रीय विद्यालय खुले तब उसमें भी हिंदी भाषा को माध्यम बनाया गया।'[4] इस प्रकार हिंदी प्रचार आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन प्रभावित हुआ।

अनेक राज्यों में आर्य समाज द्वारा संस्थापित शिक्षण संस्थाओं में हिंदी माध्यम से शिक्षा देने का कार्य किया गया। डॉ.उदय नारायण दुबे का कथन है कि 'अखिल भारतीय स्तर पर स्वभाषा, स्वदेश एवं स्वराज्य का व्यापक आंदोलन किया। उसके द्वारा स्वभाषा के लिए किया गया आंदोलन राजभाषा, राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुआ है।'[5] आर्य समाज ने सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी हिंदी का प्रचार–प्रसार का कार्य किया है। आर्य समाज ने 'आर्य दर्पण' सहित लगभग पच्चास पत्र–पत्रिकाएँ हिंदी में निकली। आर्य समाज ने लंदन, मॉरिशस, केन्या, त्रिनिदाद, फिजी आदि देशों में हिंदी–संस्कृत की पाठशालाएँ खोली गई। आर्य समाज से जुड़े

भाई परमानंद, लाला लाजपत राय, हंसराज, श्रद्धाराम फुलौरी, पद्मासिंह शर्मा आदि ने भी हिंदी के प्रचार प्रसार में काफी योगदान दिया।

२) अखिल भारतीय कांग्रेस

अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना सन. 1884 मेंएलेन आस्ट्रेवियन द्वारा हुई थी, जो सन. 1885में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' के नाम से देश की प्रमुख राजनीतिक पार्टी बनी। गाँधीजी के प्रयासों से पार्टी का काम हिंदी में होने लगा और हिंदी का प्रचार–प्रसार भी पार्टी के कार्यक्रमों का प्रमुख हिस्सा बन गया। सन. 1935 में अनेक राज्यों में कांग्रेस मंत्रिमंडल का गठन हुआ। कांग्रेस ने कई बार राष्ट्रभाषा सम्मेलन आयोजित किए है। यद्यपि कांग्रेस ने हिंदी के नाम पर शहिंदुस्तानीश का प्रचार–प्रसार किया परंतु इससे हिंदी को भी परोक्ष लाभ मिला है।

३) नागरी प्रचारिणी सभा

नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना 10 मार्च सन 1893 को काशी में हुई थी। सन. 1900 में इस संस्था के प्रयासों से फारसी लिपि के साथ–साथ देवनागरी में लिखित हिंदी को भी अदालतों के कामकाज में मान्यता मिली। डॉ. उदय नारायण दुबे का कथन है कि 'प्रारंभ से ही इस संस्था की यह नीति रही कि इसने नारेबाजी, प्रचार तथा आंदोलन संबंधी तड़क–भड़क को न अपनाकर ठोस क्रियात्मक कार्यक्रम को अंगीकार किया।'[6]

हिंदी के समृद्धि के लिए नागरी प्रचारिणी सभा ने 'हिंदी शब्द सागर', 'हिंदी वैज्ञानिक शब्दावली', 'संक्षिप्त शब्द सागर' जैसे प्रमाणिक शब्दकोशों का प्रकाशन कार्य किया। नागरी प्रचारिणी पत्रिका द्वारा हिंदी का काफी प्रचार–प्रसार हुआ। इस संस्था ने ज्ञान–विज्ञान की लगभग एक हजार से अधिक हिंदी पुस्तकों का प्रकाशन कार्य किया तथा दुर्लभ हस्तलिखित पांडुलिपि की खोज की। देवनागरी के परिष्कार के लिए भी इस संस्था ने प्रयास किए है। आज भी यह संस्था हिंदी की सेवा में हमेशा कार्यरत है।

४) हिंदू महासभा

सन 1909 में पंजाब में सर्वप्रथम लाला लाजपत राय ने हिंदू सभा की स्थापना की थी। सभा उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी का विरोध करते हुए संस्कृतनिष्ठ हिंदी की पक्षधर थी। हिंदी को राष्ट्रभाषा मानते हुए सभा ने हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए अनेक कार्य किए है। मदनमोहन मालवीय सभा के सक्रिय सदस्य थे। लाला लाजपत राय ने 'पंजाब केसरी' तथा मालवीय ने 'अभ्युदय', 'मर्यादा', 'सनातन धर्म' जैसी पत्र–पत्रिकाएँ निकाली। मदनमोहन मालवीय द्वारा सन 1917 में स्थापित 'बनारस हिंदू विश्वविद्यालय' में प्रत्येक छात्र के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य था।

५) हिंदी साहित्य सम्मेलन

सन.1910 में नागरी प्रचारिणी सभा की बैठक में पारित प्रस्ताव के अनुसार हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की स्थापना हुई। इसमें पुरुषोत्तम दास टंडन के संरक्षण में सम्मेलन ने हिंदी प्रचार प्रसार के लिए अनेक कार्य किए। सम्मेलन ने विभिन्न परीक्षाओं के माध्यम से देश–विदेश में लाखों लोगों को हिंदी सीखने की रुचि उत्पन्न की है। सम्मेलन के अब तक संपन्न अधिवेशन अधिकांश अहिंदी प्रांतों में आयोजित हुए हैं, जिससे वहाँ हिंदी का प्रचार–प्रसार हुआ। इस सम्मेलन के द्वारा 'राष्ट्रभाषा संदेश', 'मध्यम' तथा 'सम्मेलन पत्रिका' आदि का प्रकाशन होता है। सम्मेलन के संग्रहालय में लगभग एक लाख से भी अधिक हिंदी कीकिताबे हैं तथा बारह हजार पांडुलिपियां हैं। देश–विदेश के शोध छात्र, हिंदी प्रेमी तथा साहित्यकारों के लिए अध्ययन की निशुल्क व्यवस्था की गई है। सन.1963 में सम्मेलन को भारत सरकार ने राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित किया है।

६) दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा

इस संस्था की स्थापना मद्रास में सन.1927 में हुई। यह संस्था पहले शहिंदी साहित्य सम्मेलनश का ही अंग थी। इस संस्था ने दक्षिण भारत में हिंदी की परीक्षाएँ, हिंदी मेला, हिंदी सप्ताह का आयोजन करके प्रचार कार्य किया है। पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा प्रचारक सम्मेलनों द्वारा सभा ने दक्षिण भारत में हिंदी को लोकप्रियता दिलाई है। इसके संस्थापकों में राजगोपालाचार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं। जो आजादी से पहले ही हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने हेतु सक्रिय रहे हैं लेकिन आजादी के बाद राजनीतिक कारणों से वे हिंदी के विरोधी बन गए।

७) राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा

इसका जन्म भी 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' से सन.1938 में हुआ है। समिति के उद्देश्य के संदर्भ में कथन है कि 'दक्षिण भारत के अलावा अन्य हिंदी भाषी प्रांतों में राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार–प्रसार तथा राष्ट्रीय भावना का निर्माण करना समिति का प्रधान उद्देश्य है।'[7] 'एक हृदय हो भारत जननी' यह समिति का मूल मंत्र रहा है। इस समिति ने देश–विदेश में हिंदी की परीक्षाएँ संचालित की है। 'राष्ट्रभाषा' और 'राष्ट्रभारती' पत्रिकाएँ भी निकाली है। समिति प्रतिवर्ष

'राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन' आयोजित करती है। श्रीलंका, म्यांमार, अफ्रीका, थाईलैंड, जावा, सुमात्रा, मॉरीशस, लंदन, सूडान आदि देशों में समिति के प्रचार–प्रसार के कार्यालय रहे हैं।

८) अन्य संस्था

हिंदी के प्रति बहुत सारी संस्थाओं ने अपनी निष्ठा एवं संकल्पना शक्ति के द्वारा देश–विदेश में हिंदी का प्रचार–प्रसार करने का कार्य किया है। 'गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद' की स्थापना गाँधीजी ने की थी। यह विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त संस्था है। 'हिंदुस्तानी' प्रचार सभाश की स्थापना गाँधीजी ने फारसी एवं देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली 'हिंदुस्तानी' के प्रचार एवं प्रसार के लिए की थी। 'हिंदी विद्यापीठ बम्बई' की स्थापना 12 अक्टूबर 1938 को हुई थी। 'भारती' इसकी प्रमुख पत्रिका है। नवंबर 1945 में स्थापित 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पुणे' ने महाराष्ट्र में हिंदी को लोकप्रियता दिलाने के उद्देश्य से कार्य किया है। 'राष्ट्रवाणी' इसकी प्रमुख पत्रिका है। 'मैसूर हिंदी प्रचार समिति बंगलौर' की स्थापना प्रमुखता मैसूर राज्य में हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए की गई थी। अतः इन संस्थाओं द्वारा हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित होने में बड़ा बल मिला है। साथ ही देश के हर कोने में संपर्क भाषा के रूप में विचार–विनिमय एवं संचार का माध्यम बनी है।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी भाषा का अत्यधिक महत्त्वरहा है। सभी देशवासियों में एकता की भावना निर्माण करने के उद्देश्य से समाज सुधारक, स्वाधीनता सेनानियों, एवं सेवाभावी संस्थाओं ने हिंदी भाषा का समर्थन किया और उसका प्रचार–प्रसार का कार्य शुरू किया। राष्ट्र संगठन के लिए हिंदी भाषा को स्वीकार करने के लिए कहा गया। वर्तमान स्थिति में हिंदी राष्ट्रभाषा होने के बावजूद भी भारत के दक्षिणी क्षेत्र में विवाद का विषय बनी हुई है। महात्मा गाँधीजी ने राष्ट्रभाषा प्रचार को राष्ट्रनिर्माण का विधायक माना। इस भाषा के व्यापक प्रचार हेतु कई संस्थाओं की स्थापना हुई। अतः राष्ट्रभाषाप्रचार आंदोलन में अनेक संस्थाओं ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. संपा. लक्ष्मीकांत वर्मा, हिंदी–आंदोलन, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्र.सं. 1964, पृ. 19
2. डॉ. उदय नारायण दुबे, राजभाषा के संदर्भ में हिंदी–आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन संस्थान शाहदरा, दिल्ली, प्र.सं. 1979, पृ. 142
3. श्री. पी.के. केशवन नायर, दक्षिण में हिंदी–प्रचार–आंदोलन का समीक्षात्मक इतिहास, हिंदी–साहित्य–भंडार लखनऊ, प्र. सं. 1963, पृ. 23
4. डॉ. किर्तिलता, भारतीय स्वतंत्र आंदोलन और हिंदी–साहित्य, हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, प्र.सं. 1967, पृ. 16
5. डॉ. उदयनारायण दुबे, राजभाषा के संदर्भ में हिंदी–आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन संस्थान शाहदरा, दिल्ली, प्र.सं. 1979, पृ. 142
6. वही, पृ. 167
7. वही, पृ. 172

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 74-76
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कथा साहित्य पर आर्य समाज का प्रभाव

प्रीति बाला आलोक
पीएच.डी. शोधार्थी
राजऋषि भर्तृहरि मत्येधा विश्वविद्यालय, अलवर (राज.)
मो. नं.–8619616718

महर्षि दयानंद एक सार्वभौम संस्था की स्थापना करना चाहते थे, जो एक ईश्वर पर विश्वास पर करे और अंधविश्वास, रूढ़िवाद, आडम्बर और प्रचलित धार्मिक अनाचारों से मुक्त हो, जो राष्ट्र को एक सूत्र में बाँध सके और वैदिक सिद्धांतों के अनुकूल हो। पुनर्जागरण के आंदोलनों में महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा संस्थापक आर्य समाज का प्रमुख योगदान है। सम्प्र दायवाद के स्वामी जी घोर विरोधी थे। इन संप्रदायों ने व्यापक वैदिक धर्म की एकरूपता को नष्ट कर दिया। आर्य समाज का आंदोलन मुख्यतया धार्मिक होते हुए भी परोक्ष रूप से राजनीति से अभिन्न रहा। स्वामी दयानंद का उद्देश्य धार्मिक सामाजिक सुधार के साथ भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का विकास करना था। अतरू ऋषि दयानंद ने आर्य जाति और आर्यावर्त देश के प्राचीन गौरवपूर्ण अतीत की और जनता का ध्यान आकृष्ट किया और उसे फिर से विश्व का सिरमौर बनने की प्रेरणा दी।

भारत के क्रांतिकारी आंदोलन में भी आर्य समाज का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारत की राष्ट्रीय–अस्मिता को जगाने में आर्य समाज अग्रणी रहा। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती ने अपना कोई नया दर्शन प्रस्तुत नहीं किया। ब्रह्मा से लेकर जैमिनी ऋषि पर्यन्त आर्ष (ऋषिकृत) विचारधारा को समाज के सामने प्रस्तुत किया। वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत तथा विश्वध वाड.मय की अमूल्य निधि है। स्वीामी दयानन्दि का स्मारक यही है कि वेद के सिदघन्तोंय का संसार में प्रचार हो जाय। वैदिक धर्म की विचारधारा में धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का महत्त्व और काम संबंधी प्रवृतियां धर्मानुसार (समाजानुकूल) होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। पुरुषार्थ चतुष्टय का समुचित रूप से सेवन करने के उद्देश्य से वर्णाश्रम व्यवस्था की योजना बनाई गई। ऋषि दयानंद ने रूढिग्रस्त् जात–पात का का कठोर शब्दोंन में विरोध किया। वैदिक वर्ण–व्यवस्था जन्म पर नहीं, अपितु कर्म, स्व भाव पर आधारित है।

ऋषि दयानन्दी ने स्त्रियों की दशा सुधारने का भरसक प्रयत्न किया उन्होंने केवल स्त्रियों को पढ़ने का अधिकार ही नहीं दिया वरन वैदाधिकार से उन्हें गौरवान्वित किया। अतः ऋषि दयानंद को सर्वांगीण सुधारक कहा जा सकता है।

स्वामी जी ने आर्य समाज द्वारा हिंदी भाषा को व्यापकता प्रदान की। स्वामी जी का हृदय आतुर था कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही भाषा को बोलने और समझने वाले लोग हो। इसी उद्देश्य से स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना के समय हिंदी के व्यवहारिक रूप की स्थापना की। राष्ट्रोत्थान हेतु स्वामी जी ने हिंदी को अपनाया। संगठित राष्ट्र के लिए स्वामी जी एक भाषा और धर्म को अनिवार्य मानते थे।

स्वामी जी हिंदी के उन्नायक थे। उन्होंने हिंदी भाषा को न केवल उपदेश साधन बनाकर अपने मिशन को लोकप्रिय बनाया, अपितु भविष्य में राष्ट्रभाषा और राजभाषा बनने वाली आर्य भाषा का व्याोख्यानिों द्वारा व्यापक प्रचार करके उसे स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में भी गौरवान्वित किया।

स्वाामी जी सन 1976 में हिन्दी लेखन शैली शुद्ध परिमार्जित नहीं थी, किन्तु सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण में उनकी लेखन शक्ति पूर्ण विकसित है। बडे–बडे साहित्यकारों, राजनेताओं ने मुक्त कण्ठ से स्वीामी दयानन्द के हिन्दी

–योगदान की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

स्वामी जी के प्रभाव से धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों को तार्किक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता आई। स्वामी जी हिन्दी के उत्कृष्ट वक्ता थे। स्वामी जी के लगातार शास्त्रीर्थों से हिन्दी भाषा निखरने लगी क्योंकि स्वामी जी को उत्तर देने के लिए उनके विरोधियों को भी हिन्दीथ का आश्रय लेना पडता था। स्वा मी जी ने हिन्दी में विज्ञापन छपवाकर हिन्दी का महत्त्व बढ़ाया। स्वावमी जी ने हिन्दी को लेखन का आधार बनाकर सन् 1875 में सत्यार्थ प्रकाश का मुद्रण कराया। वैदिक मंत्रालय की स्थापना की। पत्र–पत्रिकायें निकालीं।

स्वाहमी जी के ग्रन्थों में एक ऐसी शैली विकसित हुई, जो सरल, सरस और मनोहारी है। वेदों के अर्थ को जनसाधारण की भाषा में प्रकट करना, एक क्रांतिकारी व प्रगतिशील पग था। स्वामी जी के ग्रंथों की भाषा खड़ी बोली हिंदी है। आज हिंदी भाषा का विकास समिति द्वारा प्रयुक्त संस्कृति निष्ठ हिंदी भाषा के अनुसार हो रहा है।

हिंदी साहित्य के विभिन्न साहित्यकारों ने भी ऋषि दयानंद के हिंदी भाषा एवं साहित्य के योगदान को स्वीकार किया है। हिंदी में धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विषयों को निरूपित करने तथा तार्किक ढंग से गंभीर विषयों का विवेचन करने की शक्ति आई। अनेक साहित्यकारों ने उनसे प्रेरणा लेकर साहित्यक–सृजन किया। आधुनिक काल की सारी राष्ट्रीय तथा सामाजिकता का मेरुदंड आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती तथा उनके द्वारा चलाया गया आंदोलन है। इनकी आधारशिला हिन्दी को बनाया। आधुनिक काल के जितने भी प्रमुख साहित्यकार हुए हैं, वे सभी आर्य समाज से प्रभावित विचारधारा के पोषक थे। निरूसंदेह स्वामी दयानंद अपने समय के श्रेष्ठ भाषाविद थे।

ऋषि दयानंद पत्रकारिता द्वारा धर्म प्रचार सफलतापूर्वक और व्यापक रूप में करना चाहते थे। उन्होंने आर्य समाजियों को, पत्रों को निकालने की आज्ञा दी और प्रोत्साहित किया। स्वामी जी की प्रेरणा से ''देश हितैषी'' नामक पत्र का संपादन हुआ था। स्वामी जी से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण भारतेंदु जी ने 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका के संपादन मंडल में स्वामी जी का नाम समाविष्ट कर लिया था। भारतेंदु युग में ऋषि दयानंद की प्रेरणा से आर्यसमाजी साप्ताहिक और त्रैमासिक पत्रिकायें निकलने लगी। आर्य समाज ने हिन्दी पत्रकारिता के विकास और उन्नैयन में ऐतिहासिक भूमिका अर्पित की। आर्य समाजी हिन्दी पत्रकारिता ने देश को राष्ट्रीय–संस्कृरति, धर्मचिन्तिन तथा स्वमदेशी का पाठ पढ़ाया। हिंदी भाषा को गद्य तथा स्वयभाषा प्रेम प्रदान किया। आर्यसमाजी पत्रकारिता के तीन उत्थादन काल हैं। इस काल के आर्य समाजी पत्रों में ईसाइयों द्वारा हिंदू धर्म पर लगाए गए मिथ्यां आरोपों का खंडन किया गया। इससे आर्य समाज हिन्दूल जगत् में प्रसिदध हो गया और ईसाई पत्रों को नीचा देखना पडा।

आर्य सामाजिक पत्रकारिता के द्वितीय युग में आर्य समाज के पत्रों में राष्ट्रीयता के स्वतर की गूंज थी। इस काल के दिग्गजज नेता स्वामी श्रद्धानंद और लाला लाजपतराय ने खुलकर ने भाग लिया।

आर्य समाज के अनेक विदृानों, सुधारकों और साहित्यकारों ने भी अपने मासिक साप्ताहिक हिंदी पत्रों के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता को एक नवीनतम आलोक प्रदान किया।

आर्य समाज ने अनेक पत्र महिला–जागरण संबंधी पत्र, शुद्धि विषयक पत्र आदि निकाले। शिक्षण संस्थाओं और गुरुकुलों से अनेक पत्र–पत्रिकाएँ निकलती रही।

स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित आर्य समाज के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता की महत्त्वपूर्ण सेवा हुई जिसका उल्लेख किए बिना हिंदी साहित्य और पत्रकारिता का इतिहास भी अधूरा रह जाता है।

आर्यसमाज ने हिन्दीत साहित्यह के सुप्रसिद्ध उपन्याससकारों, कथासाहित्य कारों, गद्य काव्ये लेखकों, और नाटककारों को उत्पन्न किया और उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विचारों को प्रस्तुत किया। आर्य समाज और खडी बोली गद्य का प्रारम्भ काल लगभग एक ही होने के कारण हिन्दी। गद्य के विकास काल में उपन्यारसों का अभाव था। आर्य समाज से प्रभावित हुए विदृानों ने श्रेष्ठ उपन्यांस व कहानियां भी लिखी हैं।

आर्यसमाजी भजनीकों ने काव्य जगत को अछूतोदघर, गौ सेवा, नारी सुधार, विधवा, दहेज, पर्दाप्रथा, अनमेल विवाह, धर्म, राजनीति, अध्यात्म, समाज, राष्ट्रीयता, दुव्यवस्था का खण्डन, नारी–जागरण, गोरक्षा, शुद्धि आदि बीसियों विषय प्रदान किये। रसों की दृष्टि से आर्य समाजी भजनों में शांत, वीर, करूण, हास्यन आदि विविध रसों का निर्वाह दृष्टिगोचर होता है।

आर्य समाजी भजनीकों ने भजनों द्वारा आदर्शोन्मुख यथार्थववाद का आश्रय लिया। आर्य समाज का भजन–साहित्य विविध विषयों पर विविध शैलियों, विविध छन्दों और राग रागनियों में करूण, शांत, वीर, हास्या आदि रसों से युक्त सहस्रों पद्यात्मंक कृतियों का महासागर है।

अतः निष्कर्षत कहा जा सकता है कि आर्य समाज का हिंदी भाषा एवं साहित्य में योगदान है। आर्य समाज ने हिंदी भाषा को एक नई दिशा प्रदान की है। भाषा में परिमार्जित खड़ी बोली का स्वरूप आर्य समाज द्वारा ही संभव हुआ है। साथ ही साथ साहित्य में राष्ट्रीय आध्यात्मिकता एवं सांस्कृतिकता का पूर्ण प्रभाव आर्य समाज द्वारा ही उपलब्ध हुआ है। आर्य समाज हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए सदैव पथ–प्रदर्शक हुआ है। आर्य समाज द्वारा अपनाये गये विविध आंदोलन एवं उपादान सदैव हिंदी भाषा एवं साहित्य को दिशा प्रदान कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 सिंहल, मीनू (2009) 'स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रभात प्रकाशन।
2 गर्ग, गंगाराम (1986) 'लाइफ एण्ड टीचिंग।
3 संधु, डॉ मधु (2016) 'आर्य समाज के उन्नायक महर्षि दयानन्द्।
4 www-hi-mwikipedia.org
5 www-mdu-ac.in
6 www-ignited.in
7 www-m-bharatdiscovery.org
8 www-prabhasakshi.com
9 www-hindi-webdunia.com
10 www-ccsuniversity-ac.in
11 www-hindisamay.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 77-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद सरस्वती और आर्य समाज का हिंदी के प्रचार प्रसार में योगदान

पूर्णिमा कुमारी
शोधार्थी, ग्राम–अम्बाटॉड, पोस्ट–शिवराजपुर थाना–लावालौंग,
जिला–चतरा (झारखण्ड) पिन–825103
मो0 नं0–6202857823

स्वामी दयानंद सरस्वती गुजराती भाषी थे। परम तपस्वी दंडी स्वामी विरजानंद जी के यहाँ मथुरा में 1860 से 1863 तक रहकर उन्होंने वेदों और पाणिनी के अष्टाध्यायी का गहन अध्ययन किया था। उनके पिता वेदज्ञ थे। स्वामी जी अपने गुरु विरजानंद की आज्ञा पाकर स्वभाषास्वदेश, स्वराज्य तथा स्वदेश की उन्नति का अलख जगाने निकल पड़े। अपने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने 1875 में मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ और प्रगतिशील, और इस प्रकार आर्य समाज का अर्थ हुआ श्रेष्ठ और प्रगतिशील लोगों का समाज। पंजाब में उनके विचारों का भव्य स्वागत हुआ। यहाँ आर्य समाज की अनेक शाखाएँ खुली, और यह प्रांत आर्य समाज का गढ़ बन गया।

हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में, विशेषकर हिंदी गद्य साहित्य के विकास में आर्य समाज और महर्षि दयानंद सरस्वती का विशेष योगदान रहा है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि –"सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान दयानंद में निखरा। स्वामीजी ने वेदोत मार्ग के विरुद्ध चलने वाले हिंदू को पुनः आर्य बताने का प्रयत्न किया।"

स्वामी जी जन्मतः गुजराती भासी थे। परंतु सच्चे अर्थ में राष्ट्रीभिमान उनमें कूट–कूट कर भरा होने से आर्य समाज के राष्ट्रव्यापी प्रचार को ध्यान में रखकर गुजराती के स्थान पर हिंदी भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। स्वामी जी की दृष्टि से उनके संदेशों को राज महलों से लेकर गरीब की झोपड़ी तक पहुँचाने वाली भाषा हिंदी ही है। उन्होंने हिंदी की इस संपर्क क्षमता को देख कर उसे आर्य समाज के गरिमामय नाम से अभिहित किया था। सन 1873 ईस्वी में स्वामी दयानंद सरस्वती ने बापू केशवचंद्र सेन के परामर्श से जनभाषा हिंदी को अपनाया। उन्होंने एक बैठक में जिसमें भारतेंदु हरिश्चंद्र श्री प्रतापनारायण मिश्र, श्री बालकृष्ण श्री बद्रीनारायण चौधरी "प्रेमघन" और श्री राधाचरण गोस्वामी उपस्थित थे, तभी उन्होंने विलासिनी उर्दू की तुलना में संस्कृति और सभ्यता की भाषा हिंदी को "कुलकामिनी"कहा था।

आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन में स्वामी जी ने हिंदी भाषा को प्रमुखता दी, तथा उनके सम्मेलन तथा सत्संग हिंदी भाषा में ही होने लगी। उनके इस विचार से हिंदी–प्रसार को एक सुंदर आधार मिला। आर्य समाज द्वारा गुरुकुलों, कन्या–पाठशालाओं और महिला–विद्यालयों की स्थापना की, जिसमें हिंदी के अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिंदी में देने की सफल व्यवस्था की गई। इस विषय में श्री इंद्रविद्यावाचस्पति जी का कथन उद्धरणीय है–"भारत में पहला शिक्षणालय जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा संपूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, गुरुकुल कांगड़ी था।

स्वामी जी पहले अपने व्याख्यान संस्कृतमें देते थे, परंतु कोलकाता में ब्रह्म समाज के नेता केशवचंद्र सेन के आग्रह पर उन्होंने हिंदी को अपनाया। इस प्रकार हिंदी–प्रसार को लोकप्रिय आधार मिला। आर्य समाज के द्वारा

सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए हिंदी में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई। इन पत्र–पत्रिकाओं में स्वामी जी से ऐसे विचारों को व्यक्त किया जिससे हिंदी पर्याप्त लोकप्रिय बनी। स्वामी जी के परम सहयोगी इंद्र विद्यावाचस्पति ने स्वामी जी के हिंदी प्रेम के महत्त्व के विषय में लिखा है– "महर्षि ने लोक भाषा को उपदेश का साधन बना कर न केवल अपने मिशन को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया। भविष्य में राष्ट्रभाषा बनाने वाली आर्य को पुष्टि देकर राष्ट्र के स्वाधीनता–भवन की दृढ़ बुनियाद भी रख दी।"

आर्य समाज तथा स्वामी दयानंद सरस्वती के माध्यम से हिंदी का प्रचार भारत ही नहीं वरन भारत के बाहर मॉरीशस, फिजी, ज्ञाना, सूरीनाम, युगांडा और लंदन में भी व्यापक स्तर पर हुआ। आर्य समाज ने जैसा प्रेरक कार्य सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में किया, इसी प्रकार हिंदी के प्रचार–प्रसार में भी सर्वोत्तम कार्य किया। स्वामी दयानंद सरस्वती की आत्मकथा 1875 में प्रकाश में आई। इस आत्मकथा में स्वामी जी के जीवन के विभिन्न विविद्य पक्षों यथा–ब्रहमचार्य, स्वाघ्याय, विद्वता, यत्यनिष्ठा और निर्भीकता आदि का सजीव चित्रण हुआ है। स्वामी जी वैदिकयुग की शिक्षा के आधार पर आधुनिक शिक्षा एवं हिंदी भाषा का विकास किया।

भारत वर्ष के इतिहास में महर्षि दयानंद पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने प्राचीन भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के लिए हिंदी को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जान कर मन, वचन और कर्म से इसका प्रचार–प्रसार किया। उनके प्रयासों का ही परिणाम था, कि हिंदी शीघ्र लोकप्रिय हो गई। यह ज्ञातव्य है कि हिंदी को स्वामी दयानंद जी ने आर्य भाषा का नाम दिया था। स्वतंत्र भारत में 14 सितंबर 1949 को सर्वसम्मति से हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जाना भी स्वामी दयानंद के इस से 77 वर्ष पूर्व आरंभ किए गए कार्यों का ही परिणाम था। सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी की प्रसिद्ध रचना है जो देश विदेश में विगत 139 वर्षों से उत्सुकता एवं श्रद्धा से पढ़ी जाती है। फरवरी 1872 में हिंदी को स्वीकार करने के लगभग 2 वर्ष पश्चात ही स्वामी जी ने 2 जून 1874 को उदयपुर में इसका प्रणयन प्रारंभ किया, और लगभग 3 महीने में पूरा कर डाला। श्री विष्णु प्रभाकर इतने अल्प समय में स्वामी जी द्वारा हिंदी में सत्यार्थ प्रकाश जैसा उच्च कोटि का ग्रंथ लिखने पर इसे आश्चर्यजनक घटना मानते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात स्वामी जी ने अनेक ग्रंथ लिखे, जो सभी हिंदी में है। उनके ग्रंथ, उनके जीवनकाल में ही देश की सीमा पार कर विदेशों में भी लोकप्रिय हुए।

हरिद्वार में एक बार व्याख्यान देते समय पंजाब के एक श्रद्धालु भक्त द्वारा स्वामी जी से उनकी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद कराने की प्रार्थना करने पर उन्होंने आवेश पूर्ण शब्दों में कहा था कि अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है। देवनागरी के अक्षर सरल होने से थोड़े ही कोशिश में सीखी जा सकती है। हिंदी भाषा विसरल होने से आसानी से कुछ ही समय में सीखी जा सकती है। हिंदी न जानने वाले एवं इसे सीखने का प्रयत्न न करने वालों से उन्होंने पूछा कि जो व्यक्ति इस देश में उत्पन्न होकर यहाँ की भाषा हिंदी को सीखने में परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? श्रोताओं को संबोधित कर उन्होंने आगे कहा– "आप तो मुझे अनुवाद की सम्मति देते हैं परंतु दयानंद के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार होगा।" इस स्वर्णिम स्वपन के द्रष्टा स्वामी दयानंद ने अपने ग्रंथों में एक स्थान पर लिखा कि आर्यवर्त भर में भाषा के एक संपादन करने के लिए ही उन्होंने अपने सभी ग्रंथों को हिंदी में लिखा एवं प्रकाशित किया। अनुवाद के संबंध में अपने ह्रदय में हिंदी के प्रति संपूर्ण प्रेम को प्रकट करते हुए वह लिखते हैं– "जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी, वह इस आर्य भाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे।"

यही नहीं आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए उन्होंने हिंदी सीखना अनिवार्य किया था। भारतवर्ष की तत्कालीन अन्य संस्थाओं में हम ऐसी कोई संस्था नहीं पाते जहाँ एकमात्र हिंदी के प्रयोग की बाध्यता रही हो।

पंजाब में हिंदी की समस्या को लेकर आर्य समाज द्वारा सत्याग्रह किया गया। हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने और उसे यथोचित सम्मान प्रदान करने में संविधान सभा के आर्य समाजी सदस्यों का विशेष कृतित्व था। आर्य समाज की हिंदी पत्रकारिता ने भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में बहुमूल्य योगदान दिया है। दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेजों के अंतर्गत हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती थी। धर्म–शिक्षकों द्वारा इन संस्था में आर्य समाज ने हिंदी का प्रचार किया। आर्य समाज द्वारा संपादित स्त्री शिक्षा बड़ा क्रांतिकारी और साहसिक पग था। महर्षि और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज की दृष्टि में, नारी समाज में, सांस्कृतिक जागरण लाना आवश्यक है। स्त्री शिक्षा के कारण महिला उपयोगी पत्र–पत्रिकाओं की संख्या बढ़ी।

आर्य समाजी विद्वानों और नेताओं ने अनेक हिंदी सेवी संस्थाओं को स्थापित करने और चलाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। हिंदी भाषा शैली को संयम और सुदृढ़ बनाने के लिए सैकड़ों वर्षो की आवश्यकता होती है। आर्य समाज के प्रयक्ष–अप्रत्यक्ष दोनों प्रभावोंद्वारा हिंदी को एक सुधारवादी जन–आंदोलन की भूमिका प्राप्त हुई है। ज्ञानपरक साहित्य

प्रत्यक्ष भाषाकीसमृद्धि एवं परोक्षतः लिखित साहित्य की अभिवृद्धि का कारण होता है। आर्य समाज के विद्वानों ने राष्ट्रभाषा होने के कारण हिंदी का रसपरख ही नहीं, अपितु ज्ञान परख साहित्य का निर्माण करके हिंदी को समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वेद भाष्य की परंपरा अबाध गति से प्रवाहित हुई। अनेक आर्य समाजी विद्वानों ने वैदिक वैदिक सूक्तों, वैदिक ऋचाओं की हिन्दी भाषा में व्याख्या लिखकर हिन्दी साहित्य को वैदिक ज्ञान से भरपूर कर दिया। आर्य विद्वानों ने वेद विषयक विषयों पर विवेचन प्रस्तुत किए हैं। आर्य विद्वानों ने वेद विषयक आलोचनात्मक साहित्य की विपुल मात्रा में लिखा।

अपने जीवन काल में स्वामी ने हिंदी पत्रकारिता को भी नई दिशा दी। आर्य दर्पण, आर्य समाचार, भारत सुदशा, हितैषी आदि अनेक हिंदी पत्र स्वामी जी की प्रेरणा से प्रकाशित हुए एवं पत्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। स्वामी दयानंद ने हिंदी में जो पत्र व्यवहार किया वह भी संख्या की दृष्टि से किसी एक धार्मिक विद्वान व नेता द्वारा किए गए पत्र व्यवहार में आज भी सर्वाधिक है। स्वामी जी के पत्र व्यवहार की खोज, उनकी उपलब्धि एवं संपादन कार्य में रक्तसाक्षी पंडित लेखराम, स्वामी श्रद्धानंद का विशेष योगदान रहा। शायद ही स्वामी दयानंद से पूर्व किसी धार्मिक नेता के पत्रों की ऐसी खोज कर उन्हें क्रमवार संपादित कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया हो और जीवन चरित्र आदि के संपादन में इन पत्रों से सहायता ली गई हो।

स्वामी दयानंद संस्कृति व हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का भी आदर करते थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि–जब पुत्र–पुत्रियों की आयु 5 वर्ष हो जाए तो उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास कराएँ, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। स्वामीजी अन्य प्रादेशिक भाषाओं को हिंदी व सांस्कृति की भांति देवनागरी लिपि में लिखे जाने के समर्थक थे, जो राष्ट्रीय एकता की पूरक है।

आर्य समाज का आदर्श वाक्य है– "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" जिसका अर्थ है– विश्व को आर्य बनाते चलो। आर्य समाज के माध्यम से हिंदी अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचते गई। स्वामी दयानंद ने हिंदी को अपने प्रचार–प्रसार व लेखन की भाषा बनाकर इसको संस्कृति के समान व उससे भी अधिक गौरव प्रदान किया है। ऋषि दयानंद ने ही अपने समय में हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए अंग्रेज सरकार द्वारा गठित हंटर कमीशन के समक्ष करोड़ों लोगों के हस्ताक्षरों से युक्त ज्ञापन देने का एक आंदोलन भी चलाया था। ऋषि दयानंद के अनुयाई चाहे उर्दू प्रधान क्षेत्र पंजाब में हो या देश के किसी अन्य भाग में वह जहाँ भी रहे हैं वहाँ उन्होंने आर्य भाषा हिंदी का ही प्रयोग किया। आर्य समाज ने देशभर में डी.ए.वी. स्कूल व कॉलेज सहित गुरुकुलों की स्थापना की और अपनी सभी संस्थाओं में हिंदी को अनिवार्य भाषा के रूप में स्थान दिया था। आज भी आर्य समाजों का सभी कार्य हिंदी भाषा में ही किया जाता है। यह सब ऋषि दयानंद की प्रेरणा से ही होता आया है। दयानंद की एक देन यह भी है कि विदेशियों ने भी हिंदी भाषा का अध्ययन किया था। ऋषि दयानंद का एक ग्रंथ है ऋगवेदादिभाष्यभूमिका यह ग्रंथ चारों वेदों के ऋषि दयानंद के संस्कृत व हिंदी भाषा का भूमि का ग्रंथ है। इसमें स्वामी दयानंद ने संस्कृत व हिंदी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है। इसका यह लाभ हुआ है कि जो विद्वान संस्कृत जानते थे वह हिंदी नहीं जानते थे, वह भी भूमिका ग्रंथ के माध्यम से हिंदी से परिचित हो गए। इसका कारण यह था, कि स्वामीजी ने उन्हें हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार स्वामी जी अपने जीवन के हर क्षेत्र में हिंदी से जुड़े रहे, तथा अहिंदी भाषियों को भी हिंदी सीखने के लिए समय–समय पर प्रेरित करते रहे। आज हिंदी दिवस से या हिंदी भाषा का नाम जहाँ कहीं भी लिया जाता है, हम ऋषि दयानंद को उनके हिंदी के प्रति योगदान के लिए सादर स्मरण करते हैं, और उनका सम्मान करते हैं। महर्षि दयानंद के प्रयासों से ही आज वेद एवं समस्त शास्त्रों का अध्ययन हिंदू व इत्तर समाज की किसी भी जन्मना जाती, मन व संप्रदाय का व्यक्ति कर सकता है। आर्य समाज ने उन सब के लिए वेद अध्ययन व अपने गुरुकुलों के दरवाजे खोले हुए हैं। महर्षि दयानंद द्वारा हिंदी को लोकप्रिय बनाकर उसे राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण स्थान तक पहुँचाने में आर्य भाषा और उनके अनुयायियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

आज हिंदी देश की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है। संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। पर यह सब स्वामी दयानंद जी के प्रयास का ही परिणाम है। हम जब भी हिंदी का नाम लेते हैं, तो अनायास ही हमारी जुबां पर दयानंदजी के नाम भी आ जाते हैं। हिंदी के प्रचार–प्रसार में तथा हिंदी को लोकप्रिय बनाने में स्वामी जी का अहम भूमिका है, जो सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक हिंदी साहित्य, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1954।
2. राजा राममोहन राय एवं महर्षि दयानंद सरस्वती व्यक्तित्व और कृतित्व गीतांजलि प्रकाशन 2007 पृष्ठ संख्या 57–60
3. हिंदी साहित्य तथा भाषा को महाराष्ट्र की देन– डॉ. रणजीत जाधव, पृष्ठ संख्या वन 59
4. http://shodhganga.ac.in
5. https://-wa-org/ ndex-Ph\search) हिन्दी विकास में दयानन्द सरस्वती

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 81-84

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानन्द सरस्वती और हिन्दी

रजनी रजक
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, वर्धमान विश्वविद्यालय,
गुलाब बाग, वर्धमान, पश्चिम बंगाल
सम्पर्क–9836367145
email : rajakxrajani@gmail.com

हिन्दी भाषा (जिसे स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यभाषा से भी सम्बोधित किया है) की प्रगति और विकास में स्वामी जी का योगदान शीर्षस्थ और महत्त्वपूर्ण है। स्वामी जी का जीवन काल उन्नीसवीं शताब्दी (1825–1883) से संबंधित है जब देश अंग्रेजी शासन के अधीन था। दयानंद जी का जन्म गुजरात राज्य के मोरवी जिला के टंकारा नामक जगह में हुआ। उनकी मातृभाषा गुजराती थी बावजूद इसके वे जीवनपर्यंत हिन्दी भाषा अर्थात् आर्यभाषा के प्रचार–प्रसार में लगे रहें। यूँ तो प्रारंभ में वे वार्तालाप, प्रवचन व उपदेश आदि के लिए संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते थे परन्तु बंगाल में ब्राह्म समाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन के परामर्श पर सन् 1863 के पश्चात् से उन्होंने हिन्दी को अपने जीवन का अंग बनाकर हिन्दी भाषा में ही बोलना, उपदेश व प्रवचन करना प्रारंभ किया। उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक सत्यार्थप्रकाश हिन्दी भाषा में ही लिखित है। इतिहास में पहली बार उन्होंने वेदों का हिन्दी में भाष्य किया। सन् 1883 में उनको विष दिए जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई और ऋग्वेद का हिन्दी भाष्य कार्य अधुरा रह गया जिसे बाद में उनके ही शिष्यों ने पूरा किया। धर्माधर्म विषय पर आधारित सभी ग्रंथों को उन्होंने हिन्दी में ही लिखा। इन ग्रंथों में सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि जीवनोपयोगी ग्रंथों को हिन्दी में लिखकर उन्होंने हिन्दी भाषा के गौरव और ख्याति को खूब बढ़ाया। उन्होंने आर्य भाषा हिन्दी को ऋषियों की भाषा होने का गौरव प्रदान किया।

स्वामी दयानंद जी ने भटके हुए देशवासियों के पुनरुत्थान के लिए एक संस्था की स्थापना की जो आर्य–समाज के नाम से विकसित हुआ। इसके बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि "सामाजिक और धार्मिक विचारों की दुनिया में क्रांति ले आने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था की स्थापना 1875 ई. में हुई। इस संस्था का नाम है आर्य–समाज। आर्य–समाज ने एक ही साथ कई मोर्चों पर धावा बोल दिया। इस संस्था ने अपने महान् संस्थापक स्वामी दयानंद के नेतृत्व में रूढ़िवादी सनातनियों से, हिन्दू धर्म पर आक्रमण करने वाले ईसाइयों से, और देश में फैले हुए अनेक धार्मिक सम्प्रदायों से एक साथ ही लोहा लिया। इन दिनों शास्त्रार्थों की धूम मच गई। उत्तर–प्रत्युत्तर से, कटाक्षों से और व्यंग्यों से सामयिक पत्र भरे हुए रहते थे और हिन्दी का भावी गद्य नवीन शक्तियों से सुसज्जित हो रहा था। इन वाद–विवादों ने भाषा को बहुत समृद्ध किया, और प्रौढ़ता प्रदान करने में बड़ी सहायता पहुँचाई।"[1]

स्वामी जी ने हिन्दी भाषा को अपनाने के पश्चात् पत्र व्यवहार और पत्राचार का माध्यम हिन्दी भाषा को ही बनाया। उनके द्वारा लिखित प्रायः समस्त पत्र व्यवहार पुस्तक रूप में चार भागों में उपलब्ध है। इसके संपादन और प्रकाशन कार्य का श्रेय पंडित लेखराम जी, स्वामी श्रद्धानन्द, पंडित भगवद्दत्त जी और पंडित युधिष्ठिर मीमांसक आदि को जाता है। पत्रों के संग्रह का कार्य श्रीमान् मामराज जी ने बड़ी श्रद्धा और भक्तिभाव के साथ सम्पन्न किया। उनके पत्रों के पठन–पाठन से यह पता चलता है कि वे हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए कितने तत्पर थे। स्वामी जी की हिन्दी के प्रति आग्रह के विषय में "पंडित. युधिष्ठिर मीमांसक जी लिखते हैं कि 'आर्य भाषा (हिन्दी) के प्रचार प्रसार में ऋषि दयानंद ने कितना प्रयत्न किया था, इसे आर्य समाज के सभासद और अधिकारी भी भले प्रकार नहीं जानते। वे केवल इतना

ही जानते हैं कि ऋषि दयानंद ने मातृभाषा गुजराती और संस्कृत के पंडित होते हुए भी अपने प्रायः सभी ग्रंथ आर्यभाषा में लिखे, और उसी में उपदेश करते थे। '"[2]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अर्थात् सन् 1882 तक देश में राजकार्य के लिए प्रधानतः उर्दू फारसी तथा अंग्रेजी भाषा का चलन था। परन्तु स्वामी जी चाहते थे कि आर्यभाषा (हिन्दी) भी राजकार्य का अंग बने क्योंकि देश की बहुल संख्यक जन हिन्दी भाषा को ज्यादा समझते थे और यही इस देश की अपनी भाषा भी थी। इस बारे में लेखक मनमोहन आर्य जी ने लिखा है– "सन् 1882 में अंग्रेज सरकार ने डा. हंटर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया था। इसका उद्देश्य राजकार्य में, जो उस समय प्रधानतया उर्दू फारसी और अंग्रेजी भाषा में चल रहा था, के साथ आर्यभाषा (हिन्दी) को प्रवृत्त करना था। ऋषि दयानंद इस उपयुक्त अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। इस लिये उन्होंने राजकार्य में आर्यभाषा (हिन्दी) की प्रवृत्ति के लिए जो महान् प्रयत्न किया, उस पर ऋषि दयानंद के इस पत्र–व्यवहार से ही प्रकाश पड़ता है– 'ऋषि दयानंद 14 अगस्त 1882 को कालीचरण रामचरण को लिखे गए पत्र में लिखते हैं दृ इस समय (आर्यभाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल (स्मृति–पत्र वा ज्ञापन) छपे हैं सो शीघ्र भेजना। आपलोग जहाँ तक हो सके आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ प्रवृत्त कीजिए।"[3] ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित ऐसे अनेकों पत्रव्यवहार हैं जिसमें उन्होंने आर्यभाषा (हिन्दी) को राजकार्य में प्रवृत्त करने के लिए आवाज उठाई है। परन्तु, सन् 1883 में उन्हें विष देकर मार डाला गया और वे सर्वदा के लिए अमर हो गए। बाद के दिनों में उनके शिष्यों और अनुयायियों ने इस उद्देश्य को आगे बढ़ाया लेकिन उनके हिन्दी प्रचार–प्रसार संबंधी महत्त्वपूर्ण योगदान का बाद के दिनों में उचित मूल्यांकन नहीं हुआ। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में स्वामी दयानंद सरस्वती के विषय में बस पाँच–सात पंक्ति ही लिखी गई जो सरासर उनकी उपेक्षा मात्र है। भले ही उन्होंने हिन्दी साहित्य के अंतर्गत विभिन्न विधाओं में एक सर्जक की भूमिका नहीं निभाई है लेकिन एक विचारक, सुधारक, चिंतक के रूप में वे सर्वोपरि हैं। उनके भाषण और लेखनी ने हिन्दी को बहुत बल और सामर्थ्य प्रदान किया है। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी के शब्दों में "आर्यसमाज के प्रवर्तक होने के कारण उन्होंने हिन्दी गद्य को खण्डन–मण्डन एवं तर्क–पूर्ण शैली प्रदान की। उसमें ओज, विशदता और विरोधी पक्ष को प्रभावित करने की शक्ति है। साथ ही उनकी शैली में वक्तृता के गुण भी मिलते हैं। शास्त्रार्थी के उपयुक्त वयंग्य और हास्य उनकी शैली के प्रधान अंग हैं। हिन्दी में गद्य–प्रवाह और शैली–निर्माण की दृष्टि से स्वामीजी चिरस्मरणीय रहेंगे।"[4]

स्वामी जी ने ईसाइयों के धर्म प्रचार से प्रभावित हिन्दू जनता को स्वधर्म–रक्षा की आकुलता का पाठ पढ़ाया। उनकी संस्था ने उनकी ही भाँति हिन्दी प्रचार–प्रसार को आगे की ओर प्रगतिशील किया। हिन्दी के अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा हेतु हर संभव प्रयास किए। विजयेन्द्र स्नातक जी ने अपनी हिन्दी साहित्य का इतिहास पुस्तक में लिखा है "अपने नए सुधारक मत को देशव्यापी बनाने के लिए उन्होंने सामाजिक पुस्तकें, लेख, व्याख्यान, सुबोध तथा रोचक हिन्दी में लिखे। इससे भाषा में ओज, शाब्दिक विशुद्धता एवं रोचकता आ गयी। उनकी भाषा का उदाहरण नीचे दिया है :

पस चोटी की ऊँचाई तथा रात की–सी अँधेरी के कारण मुझे ज्ञात हुआ कि चोटी पर पहुँचना सम्भव नहीं। लाचार मैं घास और सूखी झाड़ियों को पकड़कर नाले के नीचे किनारों पर पहुँचा और एक चट्टान पर खड़े होकर जो चारों तरफ निगाह की तो सिवाय भयानक पहाड़ियों, टीलों और उन विकट जंगलों के कि जहाँ मनुष्य–मात्र का निर्वाह कठिन है और कुछ भी न देख पड़ा।"[5] दिये गये उद्धरण में स्वामी दयानंद जी की बेहद सरल, सहज, स्पष्ट भाषा का परिचय मिलता है। उनकी भाषा इतनी सहज है जिसे कि आम जन साधारण को समझ पाना बेहद आसान है। वास्तव में उनका उद्देश्य ही था आम जन तक पहुँचना और आर्यभाषा (हिन्दी) को लोक भाषा में परिवर्तित करना जिसके लिए उन्होंने अपनी शिक्षा–दिक्षा की भाषा संस्कृत और मातृभाषा गुजराती को भी पीछे छोड़ दिया। उनका हिन्दी के प्रति यह सहृदयता और महानता सर्वदा–सर्वदा के लिए अविस्मरणीय रहेगा।

स्वामी जी का समय एक ऐसा समय था जब हिन्दी भाषा का पूर्ण स्वरूप विकसित नहीं हुआ था। वह संस्कृत और उर्दू के बोझ तले दबी हुई थी। वैसे तो उन दिनों लोक भाषा बहुत सारी थी लेकिन उनमें समता नहीं थी और यह समता होनी भी नहीं चाहिए क्योंकि भारतवर्ष की अलग–अलग बोलियाँ यहाँ की विशेषता और धरोहर है लेकिन विश्व स्तर पर इन सभी बोलियों का प्रतिनिधित्व करने का एकमात्र श्रेय अधिकांशतः हिन्दी प्रेमी व विद्वजनों ने हिन्दी भाषा को ही दिया है और स्वामी दयानंद सरस्वती भी उन्हीं विद्वजनों व हिन्दी प्रेमियों में से एक हैं। उन्हें यह पता चल गया था कि जनता के मानस की गहराई तक एकमात्र हिन्दी भाषा ही प्रवेश कर सकती है और साथ ही यह अन्य सभी देशी बोलियों और लोकभाषाओं की कढ़ियों को जोड़ने में भी सक्षम है। स्वामी जी यह चाहते थे कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय जन एक भाषा को समझने और बोलने लग जायें। वे स्वभाषा, स्वधर्म, स्वसंस्कृति को

राष्ट्र की अस्मिता का आधार मानते थे। स्वामी दयानंद सरस्वती के विषय में हिन्दी साहित्य के ख्यातिपूर्ण साहित्यकार रामधारी सिंह 'दिनकर' जी ने अपनी प्रख्यात ग्रंथ संस्कृति के चार अध्याय में विस्तार से चर्चा किया है। वे ही एक ऐसे हिन्दी साहित्यकार हैं जिन्होंने स्वामी दयानन्द जी के बारे में सविस्तार वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि "केशवचन्द्र और रानाडे की तुलना में दयानन्द वैसे ही दिखते हैं, जैसे गोखले की तुलना में तिलक। जैसे राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तेज, पहले–पहल, तिलक में प्रत्यक्ष हुआ, वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानन्द में निखरा।"[6]

वास्तव में स्वामी दयानन्द जी ने हिन्दुतत्व की रक्षा में आक्रामकता का परिचय दिया है। तत्कालीन समय में ईसाइयत और इस्लाम के दुष्प्रभाव से देश की आत्मरक्षा के लिए जन मानस में हिन्दुत्व बोध का जाग्रत होना अनिवार्य था और स्वामी जी ने ऐसा ही करने का प्रयत्न किया। दिनकर जी आगे लिखते हैं "सत्यार्थ–प्रकाश में जहाँ हिन्दुत्व के वैदिक रूप का गहन आख्यान है, वहाँ उसमें ईसाइयत और इस्लाम की आलोचना पर भी अलग–अलग दो समुल्लास हैं। अब तक हिन्दुत्व की निन्दा करने वाले लोग निश्चिन्त थे कि हिन्दू अपना सुधार भले करता हो, किन्तु बदले में हमारी निन्दा करने का उसे साहस नहीं होगा। किन्तु, इस मेधावी एवं योद्धा संन्यासी ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया। यही नहीं, प्रत्युत, जो बात राममोहन, केशवचन्द्र और रानाडे के ध्यान में भी नहीं आई थी, उस बात को लेकर स्वामी दयानन्द के शिष्य आगे बढ़े और उन्होंने घोषणा की कि धर्मच्युत हिन्दू प्रत्येक अवस्था में अपने धर्म में वापस आ सकता है एवं अहिन्दू भी चाहें तो हिन्दू–धर्म में प्रवेश पा सकते हैं। यह केवल सुधार की वाणी नहीं थी, जाग्रत हिन्दुत्व का समर–नाद था। और, सत्य ही, रणारूढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भिक नेता स्वामी दयानन्द हुए, वैसा और कोई नहीं हुआ।"[7] हिन्दू–धर्म के इस लचीलेपन को सर्वप्रथम दयानन्द जी ने उजागर किया। यह हिन्दुत्व की विशालता और विराटता ही है कि यह अन्य धर्मानुयायियों को भी अपने आश्रय में लेने की क्षमता रखता है। वास्तव में स्वामी जी अन्य धर्मों एवं धर्मावलम्बियों के विरोधी नहीं थे। वे सभी–धर्मों के अंतर्गत व्याप्त अतार्किकता, कुतर्क आदि के विरोधी थे और इसीलिए हिन्दू–धर्म भी उनकी इस विरोधी स्वभाव से अछूता न रहा। दिनकर जी आगे लिखते हैं "यूरोप के बुद्धिवाद ने भारतवर्ष को इस प्रकार झकझोर डाला था कि हिन्दुत्व के बुद्धि–सम्मत रूप को आगे लाए बिना कोई भी सुधारक भारतीय संस्कृति की रक्षा नहीं कर सकता था। स्वामीजी ने बुद्धिवाद की कसौटी बनाई और उसे हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत पर निश्छल भाव से लागू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि पौराणिक हिन्दुत्व तो इस कसौटी पर खंड–खंड हो ही गया, इस्लाम और ईसाइयत की भी सैंकड़ों कमजोरियाँ लोगों के सामने आ गई।"[8]

सत्यार्थ–प्रकाश अपने आप में एक सम्पूर्ण ग्रंथ है जिसने न जाने कितने व्यक्तियों की कायापलट कर दी। उन्होंने कहा है कि मनुष्य वही है जो मननशील है। वास्तव में स्वामी जी ने सत्यार्थ–प्रकाश में वेदों के सार तत्व को ही समाहित किया है। इस ग्रंथ के महत्त्व को दर्शाते हुए डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी कहते हैं "युग निर्माता तथा चतुर्मुखी प्रगति की भावना से प्रणीत यह दिव्य ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश) एक महान प्रकाश स्तम्भ है, जिसका निर्माण महर्षि दयानन्द ने सर्व प्रथम सम्पूर्ण मानव समाज की उन्नति के लिए किया।"[9] अतः इस ग्रन्थ के अनुसरण और अनुगमन करने से मानव समाज प्रगति के पथ पर निरंतर आगे बढ़ाता चला जाएगा। साथ ही हिन्दुत्व के विकास से हिन्दीभाषा का विकास भी सम्बद्ध है। विनायक दामोदर सावरकर जी ने इस ग्रन्थ के विषय में अपना मन्तव्य इस प्रकार रखा है कि "हिन्दू जाति की ठण्डी रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला यह ग्रन्थ अमर रहे, यही मेरी कामना है सत्यार्थ प्रकाश की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।"[10] सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने स्वयं लिखा है कि "मेरा इस ग्रन्थ बनाने का प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।"[11] स्वामी जी चाहते थे कि वे मानव समाज को ऊँचा उठाए साथ ही हिन्दी भाषा को अधिक से अधिक जन अपनी भाषा के रूप में स्वीकार्य करें जिससे आर्यावर्त अर्थात् भारत भूमि विश्व में अपनी गौरवमय स्थान को प्राप्त कर ले तथा हिन्दी ही इस देश की एकमात्र पहचान बने। इसके संबंध में डॉ. नीलू कपूर लिखती हैं "राष्ट्रीय भावना या राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षा का अंतिम लक्ष्य सम्पूर्ण संसार में हिन्दुस्तान का अखण्ड साम्राज्य स्थापित करना है। आर्यसमाज की स्थापना इसी भावना, कल्पना या आकांक्षा की आधारशीला पर की गई।"[12]

स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने तत्कालीन समाज को परिवर्तित करने के लिए सफल प्रयास किया। वे मूलतः तीव्र और क्रांतिकारी ढंग से समाज को अपनी भाषणों, लेखनों, प्रवचनों आदि के द्वारा प्रभावित किया है। अगर स्थान की बात कहें तो भारत में शंकराचार्य के बाद एकमात्र स्वामी दयानंद ही संस्कृतज्ञ, दार्शनिक व तेजस्वी वक्ता के रूप में जाने जाते हैं। सारे भारतवर्ष में उनके समान हिन्दी और संस्कृत का वक्ता कोई दूसरा नहीं था।

संदर्भ सूची

1. द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1990 (तेरहवीं आवृत्ति–2014), पृ. सं. 206
2. https://www.pravakta.com (लेखक–मनमोहन आर्य)
3. वही
4. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2009, पृ. सं. 249
5. स्नातक विजयेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, संस्करण–2009, पृ. सं. 188
6. दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण–2010, पृ. सं. 404
7. वही, पृ. सं. 405
8. वही
9. सरस्वती स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, प्रकाशक–सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, संस्करण–2009, पृ. बैक फलैप
10. वही
11. वही, भूमिका, पृ. सं. 7
12. कपूर डॉ. नीलू, ऋषि दयानन्द और दर्शन, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2012, पृ. सं. 18

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 85-89

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नवजागरण काल और स्वामी दयानन्द का नारी सुधार में योगदान

रोहिणी तिवारी
(शोध छात्रा) संस्कृत विभाग,
लाला लाजपत राय महाविद्यालय, गाजियाबाद

नवजागरण का अर्थ

हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास में डॉ0 सुमन राजे जी नवजागरण को परिभाषित करते हुए खिलती है कि–परम्परागत विषयों काव्य रूढ़ियों, छन्दो, भाषा को त्यागकर नये पथ पर अग्रसर होना। कवियों ने समसामयिक समस्याओं पर लिखा, छंद तथा काव्यरूपों में नये प्रयोग किए, प्राचीन काव्यों, विषयों, दरबार और कचहरी भाषा कों त्यागकर जनभाषा को अपनाना शुरू किया।[1] नवजागरण को भगवती शर्मा ने अपने समीक्षात्मक ग्रंथ में इस प्रकार परिभाषित करते हैं–नवजागरण का शाब्दिक अर्थ है–नई चेतना अर्थात एक ऐसी चेतना जो इससे पूर्व कभी इतिहास में आई नही थी क्योंकि नवजागरण के इस युग की परिस्थितियाँ पहले से गुणात्मक रूप में एकदम भिन्न थी।[2] इस पुर्नजागरण की जगह रैनेसां के पर्याय के रूप में आजकल नवजागरण शब्द का प्रयोग मिलता है। पुनर्जागरण और नवजागरण दोनों शब्दों में प्रयोग का श्रेय प्रख्यात मार्क्सवादी आलोचक डॉ0 राम विलास शर्मा जी को है। जिन्होंने अपने समीक्षात्मक ग्रंथ महावीर प्रसाद द्विवेदी और नवजागरण में सर्वप्रथम 1977 में इसका प्रयोग किया।

नवजागरण का साहित्य एवं समाज पर प्रभाव

हिन्दी कथा साहित्य का जन्म भारतेन्दु से होता है। इस काल को हम नवजागरण का काल कहते हैं। यह काल कई दृष्टियों से महत्त्व का है–प्रथम यह कि इस अंग्रेजों के शोषणकारी नीतियों से भारतीय जनता त्रस्त हो चुकी थी। दूसरी तरफ लेखों तथा सामाजिक सुधार आंदोलनों के कारण जनता में चेतना का सृजन हो रही थी। अब जनता चेतना से युक्त होने के कारण अपना भला–बुरा को जमकर समाज के प्रति कर्तव्यों को समझने लगी। इस विकासमान नवचेतना से अंग्रेजी सरकार परेशान होकर फूट डालने का प्रयास करने लगी। हिन्दी में आधुनिकाल का आरम्भ नवजागरण के साथ ही होता है। जिनको हम भारतेन्द्र पूर्व आधुनिक साहित्य, भारतेन्दुयुगीन साहित्य तथा द्विवेदी युग के नाम से बाँट सकते हैं। इसी साहित्य में आधुनिकता, प्रगतिशीलता और जनवाद की भावना आरम्भ हो चुकी थी।

भारत में नवजागरण की एक धारा सामाजिक सुधारों तथा आधुनिकीकरण के लक्ष्य को लेकर चलती हुई भी दिखाई पड़ती है। जिसका नेतृत्व राजाराम मोहन राय कर रहे थे। जिस प्रकार युरोपीय रेनेसां इटली से आरम्भ होकर सम्पूर्ण युरोप में फैला इसी प्रकार भारत में नवजागरण की शुरूआत तो बंगाल से हुई तथा यह धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में फैल गया। पत्र–पत्रिकाओं का नवजागरण के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। राजा राममोहन राय से लेकर तिलक तक सभी ने अपने विचारों को जनमानस तक पहुँचाने के लिए पत्र–पत्रिकाओं को आधार बनाया। हिन्दी में कविवचन सुधा (1868), हरिशचन्द्र मैगजीन, हिन्दी प्रदीप, असमिया में जोना को (1888), उत्कल दीपिका (1897), मराठा में केसरी, गुजराती में सुदर्शन, बुद्धिप्रकाश, बांग्ला में संवाद कौमुदी, सिरातुल अखबार (1922) आदि प्रमुख पत्र–पत्रिकायें हैं।[3] यह वहीं समय था जब विदेशी विद्वान भारतीय पुरातत्व दर्शन तथा साहित्य के अनुशीलन में लगे हुए थे। इनमें विण्टरनिट्स, मैकडोनल्ड, कीथ, विलियम जोन्स, ग्रियर्सन। आदि के कार्यों ने नवजागरण की भावना को बल दिया। इन सभी का प्रयास यह हुआ कि भारत में एक नये शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हुआ। जिनमें उस समय तक जड़

हो चुकी हमारी गौरवशाली संस्ति के पुर्नस्थापन तथा जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। तथा लोगों के हृदय में स्वदेश प्रेम तथा राजनैतिक–सामाजिक चेतना को जगाया। समाजिक विकास के साथ–साथ साहित्य का भी विकास होना चाहिए, यह विचार सदैव नवजागरणकालीन साहित्यकारों के मन में रहा। साहित्य समाज के विकास को प्रभावित करता है और साहित्य विकसित होकर सामाजिक सांस्तिक विकास को। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सहित अधिकांशतः नवजागरण युगीन हिन्दी भाषा चिंतको, वैचारिकों ने यह प्रयास किया कि साहित्य को राष्ट्रीय, समाजिक विलय की समस्या से जोड़कर देखा और सहायक साधन के रूप में साहित्य को स्वीकारा। भारतीय नवजागरण में भारतेन्दु के साहित्यिक योगदान का अगर हम अध्ययन करतें तो इससे न केवल एक खास आधुनिक साहित्यकार बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी के तत्युगीन को समाजिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं का ज्ञान सहज ही हो जाता है।

वैदिक काल में नारी की स्थिति

संस्कृत साहित्य में नारी का स्थान सदैव श्लाघनीय रहा है। वेदों में नारी की महिला को व्याख्यित करते हुए कहता है कि पुरुष बिना नारी के किसी भी यज्ञ विधान को करने में समर्थवान् नहीं है। यही एक मात्र वाक्य के आधार पर आज पुरुष तथा स्त्री के मध्य संबंध को हम भलीभाँति आत्मसात कर सकते हैं। इसके साथ ही पाश्चात्य विद्वानों को उस मिथक को भी तोड़ा जा सकता है, जब वह कहते हैं कि भारत में स्त्री को मात्र एक वस्तु की नजर से देखा जाता है।

भारत देश में नारी सृष्टि के आरम्भतः से ही सभी गुणों की आगार के रूप वयक्त किया जाता रहा है। स्त्री में हम पृथ्वी के समान क्षमाशीलता का गुण धर्म, समुद्र के समान गाम्भीर्य, चन्द्रमा के समान प्रकाश का गुण तथा शीलता, पर्वतों के समय मानसिक दृढ़ता जैसे गुणों को स्वीकार किया गया है। यदि नारी दया, करूणा, ममता की साक्षातमूर्ति है तो वह अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए काली का रूप भी धारण कर सकती है। पुराणों में शक्ति के स्वरूपों की चर्चा का आधार स्त्री के इन गुणों के आधार पर ही किया गया है। यदि वह हमारे मंगलकरण के रूप में दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी रूपों में पुष्पित हुई तो दशकों के संहारक के रूप अख्तियार किया है। नारी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति का मूल अगर वेद है तो उसका पल्लवित रूप हमें पुराणों में नजर आता है। नारी के त्याग और बलिदान का वर्णन करते हुए जयशंकर प्रसाद लिखते हैं कि–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयुष स्त्रोत सी कहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में। [4]

इसी प्रकार मनु ने भी नारी के गुणों के ऊपर लिखते हुए मनुस्मृति में कहा है कि–

यत्र नार्यस्तु पुष्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। [5]

वैदिक काल में नारी को गृहलक्ष्मी के यप में सम्बोधित किया गया। गृह शब्द का पर्याय स्त्री को माना जाता है। अर्थात गृह केवल ईंट–पत्थरों से निर्मित भवन को प्राचीन ऋषियों ने गृह नहीं माना अपितु जहाँ नारी अपने सपरिवार जहाँ रहकर यज्ञकर्म के द्वारा सम्पूर्ण समाज के सुख के लिए सम्मानपूर्वक रहे हैं, उस स्थान को गृह माना है।

आज के समान ही प्राचीन काल में भी हमारे यहाँ स्त्री शिक्षा की व्यवस्था थी। उनहें वह सम्पूर्ण धार्मिक तथा समाजिक अधिकार मिले हुए थे, जो एक पुरुषों को प्राप्त थे। उन्हें स्वयं से पति को चुनने का अधिकार प्रापत था। नारी केवल धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में ही पुरुष की संगिनी नहीं थी। अपितु वह पुरुष के साथ युद्ध क्षेत्र में भी युद्ध का संचालन किया करती थी। रामायण में कैकेयी तथा महाभारत में गंधार नरेश की पत्नी के द्वारा युद्ध संचालन की कथाओं का वर्णन हमें प्राप्त होता है। प्राचीनकालीन नारियों की विद्वता भी उत्ष्ठ कोटि की थी। नारियों ने अपनी विद्वता से शास्त्रार्थ में पुरुषों को भी पराभूत किया। कालिदास के संबंध में प्रचलित किंवदन्ती हो या महार्षि याज्ञवल्कय की पत्नी मैत्रेयी विषयक विवरण, यह सभी इस बात को प्रमाणिक करते हैं कि भारतीय नारियों ने अपनी विद्वता के कारण पुरुष जाति को कई बार अनुतरित किया। गृहस्थाश्रम सभी आश्रम व्यवस्था का प्राण स्वीकार किया जाता है। इसका कारण यह है कि तीनों आश्रम का आधार यही है, साथ ही अर्थ की प्राप्ति के लिए व्यक्ति इसी आश्रम में आने के बाद करता है। भारतीय संस्ति में गृहस्थाश्रम का सम्पूर्ण कार्यभार नारी पर ही आधारित था। बिना नारी के पुरुष

कदापि गृहस्थ को सुचारू रूप से संचालित करने मेंसमर्थ नहीं हो सकता। मनु महाराज कहते हैं कि–

न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहम् उच्यते।
गृहं हि गृहिणी हीनं अरण्य सदृशंमतम्।। [6]

20वीं शताब्दी में नारी स्थिति

भारत के मुगल साम्राज्य के अधीन आते ही भारतीय संस्ति में नारी के अधिकारों तथा स्वतंत्रता को कम करने का प्रयास किया गया। यद्यपि इन दुर्गुणों का भारतीय संस्ति में अनुक्रम गुप्तोत्तर काल से ही नजर आने लगता है। जब नारी को उसके पति के मृत्यु के बाद सती होने का प्रमाण मिलने लगता है, फिर भी उस समय स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, स्त्रीधन आदि के संबंध में उनको पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। प्रारम्भ में दिल्ली सल्तनत के समय तथा उसके बाद मुगलों के शासनकाल के समय में तो नारी के अधिकार लगभग समाप्त ही कर दिये गये। स्त्रियाँ अब पूर्व की भाँति स्वतंत्रतापूर्वक विचरण, शिक्षा, विवाह आदि के लिए स्वतंत्र नर ही। बाल विवाह, सतीप्रथा, विधवा पुर्नविवाह, देवदासी प्रथा का आविर्भाव उनके जीवन को नरक सदृश कर दिया। महिलाओं को घर की चार दीवारी में सजावटी वस्तु की भाँति रखने वाली हो गई। वह गहनों से आभूषित तो हो सकती थी, मगर अपने अधिकारों के संबंध में बोलने से पहले ही उनको गृहस्थजीवन की जलती आग में झोंका जाने लगा।

पर्दाप्रथा, बाल विवाह, विधवाओं की हीन स्थिति, शिक्षा से दूरी, अनमेल विवाह आदि कुरीतियों ने तो इनका जीवन अत्यन्त कष्टकारी तथा नरक सुदृश कर दिया। 1857 की क्रांति के साथ ही भारत में सत्ता का परिवर्तन हुआ तथा भारत में एक नई वैचारिक क्रान्ति का अविर्भाव हुआ। जहाँ इसने देश में विद्यमान असमताओं को केन्द्र बिन्दु में लाने का प्रयास किया। इसमें गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक–समाजिक समरसता की स्थापना, महिलाओं तथा शुद्रों के जीवन स्तर में सुधार के लिए प्रयत्न किए गये। इन प्रयासों को तत्कालीन बहुत से विद्वानों का भी समर्थन प्राप्त हुआ, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इन सुधारों को जड़ तक पहुँचाने में लगा दिया। स्त्री सुधारों के लिए कार्य करने वालों में राजाराम मोहन राय (सती प्रथा का अंत) विधवा पुर्नविवाह (ईश्वर चन्द्र विद्यासागर), विधवा आश्रम तथा स्त्री शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों तथा कॉलिजों की स्थापना करने में (धोबी तथा कर्वे) प्रमुख स्थान रखते हैं।

नारी उत्थान और दयानन्द

दयानन्द ने बरसों से अधिकारविहीन तथा शोषित नारी के जीवन में प्रकाश लाने के लिए बहुत से कार्य किए उनमें से एक नारी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सर्वप्रथम कन्या गुरुकुलों की स्थापना की गई। इसका प्रभाव यह हुआ कि अबतक जो बालिकाऐं घरों में बंद थी, उनको संसार में घटित हो रही ज्ञान विज्ञान को धारित करने के लिए एक आश्रय स्थल प्राप्त हुआ। दयानन्द जी स्त्री शिक्षा के संबंध में वेदों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

यथेमां वाच्यं कल्याणीभावदानि जनेयः।
ब्रह्म राजन्यायां शुद्राय चार्याय च स्वाय चारणायच्च। [7]

उधर दयानन्द जी का कहना था कि स्त्री शिक्षा पुरुषों तथा बालिकाओं दोनों का नैसर्गिक अधिकार है। तथा यह हमारा कर्तव्य है कि इसको प्राप्त करने के लिए हम विद्यालयों की स्थापना करके उन बच्चों तथा बालिकाओं दोनों को ही श्रेष्ठ शिक्षा उपलब्ध कराई जाए। स्वामी जी ने समाज के द्वारा पुरुषों तथा स्त्री के मध्य विभाजक रेखा खींची गई थी, उसको पाटने का प्रयास किया। मध्यकाल में यह मान्यता प्रचलित हो चूकी थी कि वेद पाठ का अधिकार तो केवल पुरुषों को है। जिसका स्वामी ने पुरजोर विरोध करते हुए स्त्री व पुरुष दोनों को समान रूप से वेद पाठ के पढ़ने का अधिकार प्राप्त करने के लिए आंदोलन चलाया। जिसका परिणाम सुखद नजर आने लगा। अब लोगों के द्वारा स्त्री को भी वेद के पठन–पाठन को प्रोत्साहित करने लगे। स्वामी जी नारी को वैदिक काल वाली उन्नत और उज्जवल पदवी को प्राप्त कराना चाहते थे।

स्वामी दयानन्द नारी के सर्वागीण विकास को महत्त्व देते थे। यह तभी सम्भव था, जब बालिकाओं को अपनी योग्यता दिखाने का पर्याप्त अवसर मिले। इसके लिए दयानन्द जी ने बाल विवाह को खत्म करने के लिए जनमानस में आवाज उठाई तथा लोगों को इसके कारण होने वाले कुप्रभावों से अवगत कराया। उन्होंने अपनी जनसभाओं में बाल विवाह की भर्त्सना की तथा लोगों से 16 वर्ष से कम उम्र की बालिकाओं के विवाह को न करने के लिए प्रेरित किया। विधवा पुर्नविवाह को प्रोत्साहित किया। वे कहते थे कि जब एक विधुर व्यक्ति विवाह करके समाज में सम्मान से जी

सकता है, तब एक विधवा क्यों नहीं? स्त्री को भी अधिकार होना चाहिए कि वह अपने अनुरूप एक योग्य वर का चुनाव करके अपने जीवन को सम्मानपूर्वक बितायें।

वेश्यावृत्ति का विरोध

दयानन्द जी के समय में वेश्यावृत्ति एक जघन्य रूप ले चुकी थी। प्राचीन काल में जहाँ वेश्या शब्द का पर्याय उन स्त्रियों के लिए था, जो स्वयं से नृत्य, संगीत आदि कलाओं के द्वारा लोगों का मनोरंजन करके अपना भरण–पोषण चलाती थी। मृच्छकरिक सदृश प्रकरण ग्रंथों के लिए नायिका रूप में इनकी मान्यता इसी रूप में देखा जा सकता है। बुद्ध के समय में आम्रपालिका एक प्रसिद्ध गणिका थी। व्याकरण की दृष्टि से वेश्या का अर्थ है–जिसका संबंध वेशभुषा से हो अर्थात वेशभूषा को आधार बनाकर जो जीवनयापन करें। किन्तु मध्यकाल में पर्दाप्रथा बाल विवाह तथा महिलाओं के साथ बढ़ते अपराधों (महिला अपहरण, दुराचार, बलात्कार, दासी रूप में जीवन निर्वाह) से त्रस्त होकर लोगों ने भ्रुण हत्या, बाल हत्या करके स्त्री को संसार में आने से रोकना शुरू का दिया। इसी प्रकार विधवा पुर्नविवाह पर रोक तथा देवदासी प्रथा के कारण जो लोग निर्धन थे, उन्होंने अपनी लड़कियों को जबरन वेश्यावृत्ति में ढकेल दिया। विधवाओं के पास दो विकल्प थे–या तो वह सती हो जाये या फिर समाज के एक कोने में बेकार समान की भाँति पड़ी रहें। इन सभी समस्याओं ने भी विधवाओं को वेश्यावृत्ति की तरफ जाने को मजबूर किया।

उस समय के धनाढ्य लोगों ने प्राचीनकालीन वेश्यावृत्ति से बहुत अलग था। केवल अपनी कामवृत्ति को पुरित करने के लिए इन बालिकाओं का लगातार शोषण करते रहे। इनसे जो संतान होती थी, उनको भी जबरन देहव्यापार में धकेला जाने लगा। इससे समाज में जहाँ एक तरफ कामवृत्ति को प्रश्रय मिला वहीं दुसरी तरफ इसमें फँसी महिलाओं की जिंदगी बद से बदतर होती गई। पारिवारिक रिश्ते भी इससे प्रभावित हुए। परिवारिक कलह, घर में अशांति, घरेलू मारपीट, रिश्तों में तनातनी बढ़ती गई। यह वेश्यावृत्ति अपने साथ–साथ दरिद्रता, मध्यपान, जुआ को भी साथ ले आयी।

भारतीय समाज के मस्तक पर लगे इस कलंक को देखकर स्वामी जी का हृदय अत्यन्त दुखी हुआ। स्वामी जी ने वेश्यावृत्ति को प्रश्रय देने वाले विलासी पुरुषों को इसके लिए उत्तरदायी मानते थे। स्वामी जी ने लोगों को इस कुप्रथा को मिटाने के लिए आंदोलन चलाया। जिसमें लोगों को इससे होने वाले समस्याओं से रूबरू कराया, जिसका प्रभाव यह हुआ कि फर्रूखाबाद निवासी सेठ दीनानाथ के पुत्र ने स्वामी जी के उपदेशों से प्रभावित होकर वेश्यागमन को छोड़ दिया। इसी प्रकार उन्होंने जोधपुर के महाराजा को जो एक नन्ही जान नामक वेश्या के चंगुल में फँसे थे, इसके लिए उनको कड़ी फठकार लगाई। यह एक अलग बात है कि इसी कारण ऋषि जी को अपने प्राणों से हाथ भी धोना पड़ा। जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे–धीरे समाज से यह कुप्रथा समाप्त होने लगी।

वर्तमान समय में नारी सुधारों के संदर्भ में दयानन्द की प्रासंगिकता

स्वामी जी के द्वारा नारी सुधारों के लिए जो प्रयास प्रारम्भ किया गया था उसका ही यह परिणाम था कि भारतीय संविधान में उत्थान के लिए आवश्यक सभी प्रयासों, जिनकी वकालत स्वामी जी सदैव किया करते थे। उनको स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में स्थान दिया गया। यह स्वामी जी की जी के रूप में देखा जा सकता है कि जिस स्त्री विषयक अधिकारों को स्वामी जी प्राप्त करना चाहते थे, वह सभी अधिकार उनके करने के बाद सरकार ने महिलाओं को दिये।

इसके अतिरिक्त स्वामी जी कहते थे कि महिलायें ऐसा कोई कार्य नहीं है जो महिलायें न कर सकें बल्कि महिलायें पुरुषों से ज्यादा अच्छा तरीके से किसी कार्य को कर सकने में समर्थ है। वह महिला सशक्तिकरण के लिए स्त्री–पुरुष को समान अधिकार दिलाने के हिमायती थे। स्वतंत्रता के बाद श्रीमती सरोजनी नायडु को भारत की प्रथम गवर्नर बनने का गौरव प्राप्त हुआ, वहीं सुचेता .पलानी प्रथम मुख्यमंत्री बनी। श्रीमती गाँधी 1970 में प्रधानमंत्री के पद पर आसीन हुआ। उनके शासनकाल में भारत ने परमाणु परीक्षण करके भारत विश्व के कुछ नामचीन देशों में शामिल हुआ। इन्दिरा गाँधी के प्रयासों से ही बांग्लादेश के एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में आज विश्व पटल परिलक्षित है। दयानन्द जी चाहते है कि नारी घर की चारदीवारी से बाहर निकले। वह पुरुष के साथ कंधे से कंधे मिलाकर एक नये युग का निर्माण करें। आज वह नारी अंतरिक्ष तक पहुँचने को तैयार हैं। आज स्त्री अबला से सबला हो चुकी है तथा अपने ज्ञान कौशल से न केवल अपना जीवन निर्वाह करने में सक्षम है बल्कि घर के साथ ही देश को भी उन्नत बनाने में लगातार सहयोग दे रही है।

स्वामी दयानन्द ने नारी उत्थान के लिए जो किया उसका महिमामण्डन शब्दों में नहीं किया सकता साथ ही नारी का कर्तव्य यह भी है कि वह स्वयं अपने अधिकारों के प्रति सजग रहे। वह स्वयं आगे आकर समाजिक कुरीतियों का बहिष्कार करे। दहेज प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह, बेमेल विवाह जैसे कृत्यों के प्रति आवाज को बुलंद करें। सरकार द्वारा को केवल कानून बनाने मात्र से कुछ उद्धार नहीं हो सकता बल्कि उसको अमली जामा पहनाने की आवश्यकता है, तभी जाकर नारी वास्तव में स्वतंत्रता के साथ जीवनयापन कर पायेगी। हमारा यह दायित्व बनता है नारी के अधिकारों को दिलाने के लिए स्वामी जी ने जो लड़ाई शुरू की थी। उसको पुनः एक बार शुरू किया जाए। आज भी नारी दहेज, बलात्कार, सामाजिक असुरक्षा जैसी अनगिनत समस्याओं से ग्रसित है। उसको इन समस्याओं से मुक्त करने के लिए दयानन्द जी के दिखाये मार्ग पर चलते हुए नारी को एक सम्मान जीवन जीने के लिए आवश्यक सभी अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, डॉ0 सुमन राजे।
2. नवजागरण और प्रतापनारायण मिश्र, भगवती प्रसाद शर्मा।
3. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, डॉ0 सुमन राजे।
4. कामायनी, जयशंकर प्रसाद
5. मनुस्मृति
6. शतपथ ब्राह्मण
7. यर्जुवेद–26/2
8. आर्य समाज का इतिहास, आर्य स्वध्याय केन्द्र, दिल्ली।
9. भारतीय सामाजिक समस्यायें, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
10. महार्षि दयानन्द और स्त्री विमर्श, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली।
11. युगप्रर्वतक स्वामी दयानन्द, लाला लाजपत राय, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली।
12. नारी संसार, नारी जागरण और महर्षि दयानन्द, आर्य संदेश लेख, 06 फरवरी, 2005

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 90-92
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का हिन्दी में योगदान

संतोष कुमारी
एम.ए. हिन्दी (चौथा सेमेस्टर)
गवर्नमेंट कॉलेज, होशियारपुर (पंजाब)
Mob: 9915123089, 9417045892
E-mail: poojadonor0099@gmail.com

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आधुनिक भारत के महान चिंतक, समाज सुधारक, अखण्ड ब्रह्मचारी तथा आर्य समाज के संस्थापक थे। उनके बचपन का नाम मूलशंकर था। हिन्दीत्तर भाषी हिंदी सेवकों में महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। महर्षि दयानन्द जी ओजस्वी वाणी के प्रखर वक्ता थे। उनका तेजोमय संन्यासी व्यक्तित्व विशाल जनसमूह को अपनी ओर खींचता था। उनके सतर्क, शास्त्रार्थमयी वागिमता का जवाब नहीं था। भारत वर्ष के इतिहास में महर्षि दयानन्द पहले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अहिन्दी भाषी गुजराती होते हुए, पराधीन भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के लिए हिंदी को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जानकर मन, वचन व कर्म से इसका प्रचार प्रसार किया। उनके प्रयासों का ही नतीजा था, कि हिंदी, जिसे स्वामी दयानन्द जी ने आर्यभाषा का नाम दिया, शीघ्र लोकप्रिय हो गई। उन्होंने वेदों के प्रचार और आर्यावर्त को स्वतंत्रता दिलाने के लिए मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। वे एक संन्यासी तथा एक चिंतक थे। उन्होंने वेदों की सत्ता को सदा सर्वोपरि माना। "वेदों की ओर लौटो" यह उनका प्रमुख नारा था। स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का भाष्य किया। इसलिए उन्हें ऋषि कहा जाता है, क्योंकि "ऋषयो मन्त्र दृष्टार" (वेदमन्त्रों के अर्थ का दृष्टा ऋषि होता है) उन्होंने कर्म सिद्धांत पुनर्जन्म, ब्रह्मचर्य तथा संन्यास को अपने दर्शन के चार स्तम्भ बनाया। उन्होंने ही सबसे पहले १८७६ में स्वराज्य का नारा दिया। जिसे बाद में लोकमान्य तिलक ने आगे बढ़ाया।

स्वामी दयानन्द के विचारों से प्रभावित महापुरुषों की संख्या असंख्य है। उनके अनुयायिओं में लाला हंसराज ने १८८६ में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना की तथा स्वामी श्रद्धानन्द ने १९०१ में हरिद्वार के निकट कांगड़ी में गुरुकुल की स्थापना की। महर्षि दयानन्द जी के हृदय में आदर्शवाद की उच्च भावना, यथार्थवादी मार्ग अपनाने की सहज प्रवृति, मातृभूमि की नियति को नयी दिशा देने का अदम्य उत्साह, धार्मिक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से युगानुकूल चिंतन करने की तीव्र इच्छा तथा भारतीय जनता में गौरवमय अतीत के प्रति निष्ठा जगाने की भावना थी। उन्होंनें चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत १९३० (१८७५) को गिरगाँव मुंबई में आर्यसमाज की स्थापना की। आर्य समाज के नियम और सिद्धांत प्राणिमात्र के कल्याण के लिए है। संसार का उपकार करना, इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

उनके बारे में डॉ. भगवान दास ने कहा था कि "स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ''आर्यावर्त आर्यवर्तीयों के लिए'' की घोषणा की।''

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कई धार्मिक व सामाजिक पुस्तकें अपनी जीवनकाल में लिखी। प्रारम्भिक पुस्तकें संस्कृत में थी, किन्तु समय के साथ उन्होंने कई पुस्तकों को आर्यभाषा (हिंदी) में भी लिखा, क्योंकि आर्यभाषा की पहुँच संस्कृत से अधिक थी। हिंदी को उन्होंनें आर्य भाषा का नाम दिया था। उत्तम लेखन के लिए आर्यभाषा के प्रयोग करने वाले स्वामी दयानन्द अग्रणी व प्रारंभिक व्यक्ति थे। स्वतंत्र भारत में संविधान सभा द्वारा १४ सितम्बर १९४७ को सर्वसम्मिति से हिंदी को राजभाषा स्वीकार किया जाना भी स्वामी जी के इससे ७७ वर्ष पूर्व आरम्भ किये गए कार्यों

का ही सुपरिणाम था। प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार विष्णु प्रभाकर हमारे राष्ट्रीय जीवन के अनेक पहलुओं पर स्वामी दयानन्द का अक्षुण प्रभाव स्वीकार करते है और हिंदी पर साम्राज्यवादी होने के आरोपों को अस्वीकार करते हुए कहते है, कि यदि साम्राजयवाद शब्द का हिंदी वालों पर कुछ प्रभाव है भी, तो उसका सारा दोष अहिन्दी भाषियों का है इन अहिन्दी भाषियों का अग्रणीय वह स्वामी दयानन्द जी को मानते है, और लिखते है कि इसके लिए उन्हें प्रेरित भी किसी हिंदी भाषी ने नहीं, अपितु एक बंगाली सज्जन श्री केशव चंद्र सेन ने किया था।

गुजरातवासी पुरोधा के मुख से जब हिंदी की वकालत हुयी, तो हिंदी को जैसे फलने फूलने का आशीर्वाद मिल गया। स्वामी जी संस्कृत के प्रकांड पंडित और वक्त थे, गुजराती उनकी मातृभाषा थी, पर देश हित में उन्होंने मन में हिंदी को स्वीकार किया था। १९७९ में केशवचन्द्र सेन के आमंत्रण पर कलकत्ता गए। उन्होंने केशवचन्द्र सेन के आग्रह पर संस्कृत और गुजराती दोनों को छोड़ हिंदी में भाषण दिया। संस्कृत निष्ठ वाणी में वेद वेदांगो के प्रतिपादन से कलकत्तावासी झूम उठे। इसके बाद उन्होंने सदैव हिंदी में ही भाषण दिए। वे हिंदी में नागरी लिपि में पत्र लिखने लगे। उन्होंने कई लेख नागरी लिपि और हिंदी भाषा में लिखे आर्य बंधुयों को उन्होंने नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में पत्र पत्रिकाएँ निकालने की प्रेरणा देते हुए, स्वयं भी भारत सुदशा प्रवर्तक पत्र हिंदी में निकाला। उन्होंने अपना विख्यात ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश और हिंदी भाषा में ही लिखा पहले यह संस्कृत भाषा में लिखा गया था।

गोपाल प्रसाद कास ने उन्हें हिंदी का प्रथम सेनापति कहते हुए कहा है" यह उस शताब्दी की बात है, जब आसेतु हिमालय से कन्याकुमारी और कलकत्ता से लेकर बम्बई तक भारत की जनता हिंदी समझती और बोलती भी थी। लेकिन उसका नेतृत्व करने वाला कोई महापुरुष उस समय नहीं था। स्वामी जी ने यह गरिमामयी नेतृत्व कदाचित सबसे पहले प्रदान किया। उस समय कतिपय लोग इस दुष्प्रचार में लगे थे, कि हिंदी यहाँ की भाषा नहीं है, प्रत्युत बाहर से लायी गयी है। स्वामी दयानन्द ने इस धारणा का विरोध किया, तथा हिंदी को आर्य भाषा नाम देकर उसे प्रतिष्ठा प्रदान की''

पंडित रामचंद्र शुक्ल ने भी हिंदी साहित्य के इतिहास में उनके महत्त्व को स्वीकार किया है।

इसके अन्नतर पंडित मदन मोहन मालवीय, महात्मा गाँधी, राजृषि पुरुषोत्तम दास टंडन, चक्रवर्ति गोपालाचारी, सुभाष चंद्र बोस जैसी हस्तियां हिंदी की पताका लेकर चल पड़ी। महर्षि दयानन्द के प्रभाव से आर्य समाज और उसके गुरुकुल कांगड़ी वि. वि . ने हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की। फरवरी १८७९ में हिंदी को स्वीकार करने के लगभग ९ वर्ष पश्चात ही स्वामी जी ने ९ जून १८७४ को उदयपुर में इसका प्रणयन आरम्भ किया और लगभग ३ महीनों में पूरा कर डाला।

श्री विष्णु प्रभाकर इतने अल्प समय में स्वामी जी द्वारा हिंदी में सत्यार्थ प्रकाश जैसा उच्च कोटि का ग्रंथ लिखने पर इसे आश्चर्यजनक घटना मानते है। सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात वेदों एवं वैदिक सिद्धांतों के प्रचारार्थ स्वामी जी ने अनेक ग्रन्थ लिखे, जो सभी हिंदी में है। उनके ग्रन्थ उनके जीवन काल में ही देश की सीमा पर कर विदेशों में भी लोकप्रिय हुए।

थियोसोफिकल सोसाइटी की नेत्री मैडम बालेवेटस्की ने स्वामी दयानन्द से उनके ग्रथों के अंग्रेजी अनुवाद की अनुमति मांगी, तो स्वामी दयानन्द जी ने ३१ जुलाई १८७९ को विस्तृत पत्र लिख कर, उन्हें अनुवाद से हिंदी के प्रचार प्रसार एवं प्रगति में आने वाली बाधाओं से परिचित कराया। स्वामी जी ने लिखा कि " अंग्रेजी अनुवाद सुलभ होने पर देश विदेश में जो लोग उनके ग्रंथो को समझने के लिए संस्कृत व हिंदी का अध्ययन कर रहे है, वह समाप्त हो जायेगा। हिंदी के इतिहास में शायद कोई विरला ही व्यक्ति होगा। जिस ने अपनी हिंदी पुस्तकों का अनुवाद इसलिए नहीं होने दिया। जिससे अनुदित पुस्तक के पाठक हिंदी सीखने से विरत होकर हिंदी प्रसार में बाधक हो सकते है।''

हरिद्वार में एक बार व्याख्यान देते समय पंजाब के एक श्रद्धालु भक्त द्वारा स्वामी जी से उनकी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करने की प्रार्थना की। पर उन्होंने आवेशपूर्ण शब्दों में कहा था, कि अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है। देवनागरी के अक्षर सरल होने से थोड़े ही दिनों में सीखे जा सकते है। हिंदी भाषा भी सरल होने से आसानी से कुछ ही समय में सीखी जा सकती है। श्रोताओं को सम्बोधित कर उन्होंने आगे कहा, "आप तो मुझे अनुवाद की सम्मति देते है। परन्तु दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते है। जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार होगा।''अनुवाद के सम्बन्ध में अपने हृदय में हिंदी के प्रति सम्पूर्ण प्रेम को प्रकट करते हुए, वह लिखते है, " जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी वह इस आर्य भाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे।''यही नहीं आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए उन्होंने हिंदी सीखना अनिवार्य किया था। भारतवर्ष की तत्कालीन अन्य संस्थाओं में हम ऐसी कोई संस्था नहीं पाते, जहाँ एकमात्र हिंदी के प्रयोग की बाध्यता रही हो।

१८८0 ई. में ब्रिटिश सरकार ने डॉ. हंटर की अध्यक्षता में एक कमीशन की स्थापना कर, इससे राजकार्य के लिए

उपर्युक्त भाषा की सिफारिश करने को कहा। यह आयोग हंटर कमीशन के नाम से जाना गया। यधपि उन दिनों सरकारी कामकाज में उर्दू फारसी एवं अंग्रेजी का प्रयोग होता था। परन्तु स्वामी दयानन्द के सन १८७६ से १८८६ तक व्याख्यानों, पुस्तकों व ग्रंथों, शास्त्रार्थों तथा आर्य समाजों द्वारा मौखिक प्रचार एवं उसके अनुयायिओं की हिंदी निष्ठां से हिंदी भी सर्वत्र लोकप्रिय हो गयी थी। इस हंटर कमीशन के माध्यम से हिंदी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए स्वामी जी ने देश की सभी आर्य समाजों को पत्र लिखकर बड़ी संख्या में हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन भेजने की प्रेरणा की और जहाँ से ज्ञापन नहीं भेजे गए। उन्हें स्मरण पत्र भेज कर सावधान किया। आर्य समाज फरुखाबाद के स्तम्भ बाबू दुर्गादास को भेजे पत्र में स्वामी जी ने लिखा "यह काम एक के करने का नहीं है और चूक होने पर वह अवसर पुनः आना दुर्लभ है, जो यह कार्य सिद्ध हुआ (अर्थात हिंदी राजभाषा बन ही गयी) तो आशा है कि मुख्य सुधार की नीव पड़ जाएगी।''

स्वामी जी की प्रेरणा के परिणामस्वरूप आर्य समाज द्वारा देश के कोने –कोने से आयोग को बड़ी संख्या में लोगों के हस्ताक्षर कराकर ज्ञापन भेजे गए। कानपुर से हंटर कमीशन को दो सौ मेमोरियल भेजे गए। जिन पर दो लाख लोगों ने हिंदी को राजभाषा बनाने के पक्ष में हस्ताक्षर किये थे। हिंदी को गौरव प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द द्वारा किया गया। यह कार्य भी इतिहास में अन्यतम घटना है। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है, कि जब पुत्र पुत्रियों की आयु पाँच वर्ष हो जाये तो उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास कराएँ, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।

स्वामी जी अन्य प्रादेशिक भाषाओं को हिंदी व संस्कृत की भांति देवनागरी लिपि में लिखे जाने के समर्थक थे। तो राष्ट्रीय एकता की पूरक है। अपने जीवनकाल में हिंदी पत्रकारिता को भी आपने नयी दिशा दी।

स्वामी दयानन्द इतिहास में पहले व्यक्ति है। जिन्होंने अहिन्दी भाषी होते हुये, सर्वप्रथम अपनी आत्म कथा हिंदी में लिखी और उन्होंने वेदों का भाष्य संस्कृत के साथ साथ जन सामान्य की भाषा हिंदी में भी करके सृष्टि के आरम्भ से जारी पद्धति को बदल दिया। स्वामी दयानन्द के साथ ही उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज एवं उनके अनुयायिओं द्वारा स्थापित गुरुकुलों डी.ए.वी कॉलेज आश्रमों आदि द्वारा भी हिंदी के प्रचार प्रसार में उल्लेखनीय कार्य किया गया है। इस्लाम मजहब की पुस्तक कुरआन को प्रमाणिकता के साथ हिंदी में सबसे पहले अनुदित करने का श्रेय भी स्वामी दयानन्द जी को है। इसका प्रकाशन भी किया जा सकता था। परन्तु किन्ही कारणों से यह कार्य नहीं हो सका। यह अनुदित ग्रंथ उनकी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है।

अतः स्वामी जी का यह निष्कर्ष भी उचित है, कि हिन्दी व संस्कृत के स्थान पर अन्य देशिय भाषाओं को पढ़ने से मनुष्य वैदिक संस्कारों के स्थान पर उन उन देशों के संस्कारों से प्रभावित होता है। एक षडयंत्र के अंतर्गत विष देकर दीपावली के दिन (१८८३)स्वामी दयानन्द की जीवनलीला समाप्त कर दी गयी। यदि स्वामी जी कुछ वर्ष और जीवित रहे होते तो हिंदी को और अधिक समृद्ध करते और इसका व्यापक प्रचार करते। इससे हिंदी भाषा का वर्तमान स्वरूप व विस्तार आज से कहीं अधिक उन्नत, सरल व सुबोध होता है। लेख को निम्न पंक्तियों से विराम देते है–

"कलम आज तू स्वामी दयानन्द की जय बोल,
हिंदी प्रेमी रत्न वह कैसे थे अनमोल ''

संदर्भ

1 दयानन्द सरस्वती (अंग्रेजी में) रेफ्रेंस इंडियनेट जॉन.कॉम. मूल से 23 अक्टूबर 2007 को पुरालेखित .अभिगमन तिथि 20 सितंबर 2007 .

2 Sinhal , Meenu ,2009 Swami Dayanand Saraswati, Prabhat Prakashan, ISBN.8184300174.

3 स्वीकार पत्र 28 जून 2012, वेबैक मशीन .

4 आर्य भाषा के उन्नायक महर्षि दयानन्द 26 दिसम्बर 2016 वेबैक मशीन–डॉ. मधु संधु

5 महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का हिन्दी प्रचार प्रसार में योगदान, मनमोहन आर्य, प्रवक्ता.कॉम .

6 Garg, Ganga Ram (1986) Life and Teachings ,World prespectivs on Swami Dayanand Saraswati .

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 93-95

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी भाषा के उत्थान में महर्षि दयानन्द सरस्वती का योगदान

डॉ. सुबोध कुमार
लेक्चरर, DIET
किलाघाट, दरभंगा, बिहार

जो आज वेद ध्वनि गूंजती है।
कृपा उन्हीं की यह कूजती है।

मैथिली शरण गुप्त

महर्षि दयानन्द सरस्वती का बहुआयामी व्यक्तित्व ऐसा है जिसने विश्व के समस्त क्षेत्रों को आच्छादित कर दिया है। इसी क्रम में उनकी हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए किए गए कार्यों की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि स्वामी जी का कार्य इस क्षेत्र में अतुलनीय है।

उन्होंने हिन्दी भाषा को जो नाम दिया वह है 'आर्य भाषा'। हिन्दी के प्रचार के लिए स्वामी जी सदा प्रयत्नशील रहते थे।

उन्होंने अपने प्रचार की भाषा हिन्दी को ही बनाया और अपने सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखे। स्वामी जी के ग्रन्थों को पढ़ने के लिए लोगों ने हिन्दी भाषा सीखा। महाकवि निराला मे ंतो उन्हे राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रवर्तक माना है।

'महर्षि दयानन्द और युगान्तर (लेखक) सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' उदधृत महर्षि दयानन्द की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन, मंजुलता विद्याथी, (1999)।

महर्षि दयानन्द सरस्वती गुजराती थे तथा उनके शिक्षा की भाषा संस्कृत थी फिर भी उन्होंने जन सामान्य में वैदिक धर्म के प्रचार एवं सुधार कार्य को बढ़ाने के लिए हिन्दी का प्रयोग किया।

मंजुलता विद्यार्थी (1999), का कहना सत्य हीं है कि "हिन्दी सीखकर दस वर्ष के अल्पकाल में (1873–1883) तक" उन्होंने वह काम कर दिखाया जो बड़े से बड़ा हिन्दीभाषी भी नहीं कर सका, पृ.19। उन्होंने देश में धूम–धूम कर हिन्दी भाषा में ही प्रचार किया। आर्य समाजों को भी पत्र भेज कर हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा दी।

स्वामी जी की प्रेरणा से अनेक राजाओं ने हिन्दी को राजकाज की भाषा बनाया। इनमें उदयपुर और जोधपुर नरेशों का नाम उल्लेखनीय है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने भक्तों को हिन्दी सीखने की प्रेरणा देते थे। जवाहर सिंह नामक एक भक्त ने हिन्दी (आर्यभाषा) का पर्याप्त अभ्यास न होने पर भी हिन्दी में ही एक लम्बा पत्र लिखा, तो स्वामी जी ने उत्तर में लिखा कि "जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्यभाषा में लिखी, यही हमनें तुम्हारी शुद्धी जानी", (ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, भाग 3, पृष्ठ 504)।

इस कथन से ज्ञात होता हैं कि स्वामी जी हिन्दी भाषा को व्यक्ति के जीवन में कितना महत्त्व देते थे। वे इसे राष्ट्रीय और व्यक्तिगत जीवन दोनो के लिए उपयोगी मानते थे। वे भाषा सुधार को सब सुधारों का मूल मानते थे।

जोधपुर नरेश को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा "प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या इन दोनों को पढ़े", (ऋ.द.प.वि.ख.2, पृ.927)।

अन्यत्र भी लिखते हैं "जब पाँच–पाँच वर्ष के लड़का लड़की हो तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें", (सत्यार्थ प्रकाश, पृ.34)। हिन्दी भाषा के प्रति स्वामी जी का दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक था। इसी लिए इसे आर्यभाषा नाम दिया।

हिन्दी बोलने में कठिनाई–स्वामी जी मूलतः गुजराती थे और उनकी विद्या भाषा संस्कृत थी अतः प्रारम्भ में जब

वे हिन्दी में व्याख्यान देते थे तब वे वाक्य के वाक्य संस्कृत में ही बोल जाते थे, भारतीय, 2019।

व्याख्यान–स्वामी जी ने अपने व्याख्यान को जन–जन तक पहुँचाने के लिए ही हिन्दी भाषा को अपनाया। अन्यथा विरोधी लोग जनता को उनके कथन का उलटा समझा देते थे। अतः सम्पूर्ण भारत में उन्होंने हिन्दी में ही अपने व्याख्यान दिये।

नरेशों को उपदेश–स्वामी जी का मानना था कि भारतीय नरेशों में अब भी राष्ट्रीय स्वामी मान है और इसे जगा कर ही भारत का उत्थान किया जा सकता है, अतः वे राजस्थान आदि में राजाओं को भी स्वदेशी और हिन्दी के लिए प्रेरित करते रहते थे।

रचना कार्य–स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपना समस्त रचना कार्य हिन्दी में किये। जहाँ छोटे बच्चों के लिए व्यवहार भानु की रचना की, वहीं विद्वानों के लिए वेद भाष्य, किन्तु सब लेखन कार्य हिन्दी में किया।

सरकार को प्रतिवदेन– सन् 1882 ई. में अंग्रेरज सरकार ने हन्टर कमीशन की स्थापना की राजकार्य के लिए भाषा के प्रश्न पर भी इस कमीशन को विचार करना था। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी इस हेतु 200 मेमोरियल सरकार के पास विभिन्न आर्यसमाजों की ओर से भिजवाए। पत्रों द्वारा सभी समाजों को प्रेरित भी करते रहे ताकी सभी आर्य समाजें शीध्र मेमोरियल भेजें।

इन मेमोरियलों में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि की अरबी लिपी और फारसी भाषा से तुलना कर यह सिद्ध किया गया है कि आर्यभाषा (हिन्दी) एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक भाषा हैं तथा इसकी लिपि सरल, सहज एवं लेखन उच्चारण समान होने से वैज्ञाानिक है, ऋ.द.स.के.प.वि., खण्ड 2, पृ.1064–1073।

स्वामी जी के कार्यो का प्रभाव

सामान्य जन के धार्मिक समाजिक विचारों पर–स्वामी जी के हिन्दी में दिये व्याख्यानों को जनता पर शीध्र प्रभाव पड़ने लगा। लोगों ने भी हिन्दी भाषा को अपनाया। सामान्य जन धार्मिक पाखण्ड, अंधविश्वास, छूआछूत, बालविवाह आदि से दूर होने लगे। हिन्दु समाज अपनी परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त होकर स्वतंत्रता के लिए तैयार हो गया।

भाषा के स्वरूप पर प्रभाव–स्वामी जी के पूर्व हिन्दी भाषा को इस देश में गवारू भाषा माना जाता था एवं उस पर फारसी और अरबी का प्रभाव था। जिसे स्वामी जी ने संस्कृत के शब्दों से युक्त कर सुंदर बनाया। जिससे हिन्दी का स्वरूप पूर्ण भारतीय हो सका। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों से भी हिन्दी गद्य का स्वरूप निखरने लगा। वर्त्तमान हिन्दी सत्यार्थ प्रकाश और वेदादिशास्त्रों के लिखने से विद्वानों की भाषा बन सकी।

राजाओं के कार्य क्षेत्र पर प्रभाव–उदयपुर के राजा ने अपने यहाँ पाठशालाओं में हिन्दी भाषा को स्थान दिया तथा राजकार्य में भी हिन्दी का प्रयोग प्रारम्भ किया, उपरोक्त पृ.76। उन्होंने अपने राजकीय कार्यालयों के नाम भी हिन्दी में रखे, उपरोक्त पृ.75।

जोधपुर आदि अन्य राजाओं को भी उन्होनं हिन्दी में कार्य करने और प्रजा में भी हिन्दी प्रचार की प्रेरणा दी।

तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव

स्वामी जी के प्रचार कार्य से पूर्व पाठशालाओं में केवल संस्कृत माध्यम में पढ़ाई होती थी। मदरसों में उर्दु एवं फारसी ही माध्यम थी तथा अंग्रेजों के विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा ही माध्यम थी। किन्तु स्वामी जी ने अपनी पाठशालाओं में हिन्दी को भी स्थान दिया। जिससे हिन्दी भाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थापित हुई इसका अनुकरण बाद में सभी आर्य गुरुकुलों और विद्यालयों नें किया।

हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

प्रारम्भ में हिन्दी साहित्य में केवल पद्यात्मक रचना होती थी बाद में गद्य में केवल कहानी एवं नाटक ही होता था। स्वामी जी ने दर्शन वेद आदि को स्थान देकर हिन्दी साहित्य की उच्चतम धारा का विकास किया। उनके प्रभाव से अन्य लेखक की केवल श्रृंगारिक रचना से बचने लगे। यह वास्तव में स्वामी जी के विविध एवं उद्दात्त लेखन का प्रभाव था।

पत्रकारिता पर प्रभाव–

स्वामी जी ने आर्य समाज के पहले जो नियम लाहौर में बनाये थे उनमें पाँचवे, बारहवें और पच्चीसवें नियमों

में "आर्यप्रकाश पत्र" प्रारम्भ करने का नियम बनाया था, (विद्याथी, पृ.227)।

परोपकारिणी सभा के भी पहले ही नियम में उन्होंने पत्र निकालने का नियम रखा था, (वही पृ.227)। "कवि–वचन–सुधा" के सम्पादक मण्डल में स्वामी जी का नाम अंकित रहता था, (वही पृ.227)। स्वामी जी पत्रादि द्वारा भी लोगों को पत्र–पत्रिका निकालने की प्रेरणा देते रहते थे। जिससे आर्य समाजो द्वारा अनेक पत्रों को निकाला जाने लगा।

अपरोक्त समस्त विवेचन के आधर पर हम कह सकते हैं कि वर्तमान भारत में हिन्दी का जो भी स्वरूप है वह महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की ही देन है। अतः उन्हें हिन्दी का प्रारम्भिक निर्माता कहना उपयुक्त होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मीमांसक, युद्धिष्ठिर (1984), ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग, 1, बहाल गढ़, हरियाणः रामलाल कपूर ट्रस्ट।
2. मीमांसक, युद्धिष्ठिर (1984), ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग, 2, बहाल गढ़, हरियाणः रामलाल कपूर ट्रस्ट।
3. मीमांसक, युद्धिष्ठिर (1984), ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग, 3, बहाल गढ़, हरियाणः रामलाल कपूर ट्रस्ट।
4. भारतीय, भवानी लाल, (1997), महर्षि दयानन्द हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि में दिल्लिः आर्य प्रकाशन।
5. भारतीय, भवानी लाल, (2019), काशी शास्त्रार्थ और महर्षि दयानन्द वाराणसीः आर्य समाज लल्लापुरा।
6. विद्यार्थी, मञ्जुलता (1999) ऋषि दयानन्द की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन हिण्डौन सिटी, राजस्थानः मुनिवर गुरुदत्त संस्थान।
7. सरस्वती, स्वामी दयानन्द (2018), सत्यार्थ प्रकाश, नई दिल्लीः आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 96-98
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद सरस्वती और हिन्दी

डॉ. विजय महादेव गाडे
एसोसिएट प्रोफेसर, शोध–निर्देशक एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
बाबासाहेब चितळे महाविद्यालय, भिलवडी जि. सांगली (महाराष्ट्र)
चलभाष–09860271909
Email : vijaygade2010@gmail-com

"ओ टंकारा की ज्वलित ज्योति। तू कभी नहीं बुझने वाली
तुझसे जगमग यह जगतीतल, तुझसे भारत गौरवशाली
तू दमक रही दुनिया भर में, तू चमक रही रन में, मन में,
अभ्युदय और निःश्रेयस बन, तू रमी हुई जग जीवन में।"[1]

संकेत शब्द–महर्षि दयानंद सरस्वती, आर्य समाज, आर्यभाषा हिन्दी, वर्तमान परिप्रेक्ष्य।

उपर्युक्त पंक्तियाँ दयानंद सरस्वती के संदर्भ में लिखी गई हैं। इन पंक्तियों से दयानंद जी का व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात के जीवापूर में सन 1824 में हुआ था। दयानंद के बचपन के संदर्भ में आर्य समाज के इतिहास लेखक पं. इंद्र विद्यावाचस्पती लिखते हैं–''दयानंद के चित्त में जो–जो विचार तरंगे उत्पन्न हुई, जो–जो क्रांतियाँ खड़ी हुई, वे आकस्मिक नहीं थीं, परन्तु हमे यह मान लेना चाहिए कि उनके कारणों पर पूरा प्रकाश डालने के साधनों का अभाव है। हम नहीं जानते कि मूलशंकर के प्रारंभिक गुरु कौन थे? और न हमें निश्चय पूर्वक यही ज्ञात है कि उनके खेल के कौन साथी किस श्रेणी के थे? यह जानने का कोई उपाय नहीं है कि दयानंद के अंदर जो ढूँढता और निर्भयता थी, वह माता की ओर से प्राप्त हुई थी या पिता की ओर से।''[2] महाशिवरात्रि के दिन जब उन्होंने एक चूहे को शिवलिंग पर चढे हुए नैवेद्य का भक्षण करते हुए देखा। इस घटना के कारण उनका मूर्तिपूजा से विश्वास उठ गया। यहीं कारण था जिससे उन्हें विचार करने की प्रेरणा मिली। 10 अप्रेल 1875 के दिन मुंबई में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की और इसके माध्यम से अपने विचारों का प्रचार किया। आर्य समाज के द्वारा उन्होंने समाज में एक नई चेतना जगाने का प्रयास किया जो भविष्य में बहुत ही सफल हुआ।

किसी भी राष्ट्र की बुनियाद में स्वभाषा, ध्वज, स्वधर्म की अहमियत निहित होती है। एक भाषा का होना राष्ट्रीयता का एक बडा प्रबल अंग है। देश के मंगल और कल्याण के लिए, उसे सचेतन करने के लिए एक भाषा का होना परमावश्यक है। देश और भाषा की उन्नति ही राष्ट्र की उन्नति है। भारत जैसे महान राष्ट्र की राष्ट्रभाषा में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक माना गया है–

क. वह सरल, सुलभ, सुबोध और सुवाच्य हो।

ख. उसका देश में सर्वाधिक प्रचार और प्रसार हो।

ग. वह किसी प्रान्त विशेष से सम्बद्ध न हो।

इस सम्पूर्ण प्राक्कल्पना में अकेली हिन्दी भाषा में यह सारे गुण पाए जाते हैं। वैसे भी हिन्दी हमारी स्वाभाविक भाषा है और समुचे हिन्दुस्तान के साथ इसका सम्बन्ध है। इसलिए वहीं राष्ट्रभाषा के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। लेकिन हमारे संविधान में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया है। संविधान का 343(1) अनुच्छेद कहता है–'संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होनेवाले अंको का रूप भारतीय अंको का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।'[3] हिन्दी की प्रगति एवं उन्नति में तथा उसे राष्ट्रभाषा बनाने में आर्य समाज का महान

योगदान है। आलोचक डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने इस संदर्भ में लिखा है–"आर्य समाज ने हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है। स्वामीजी ने स्वयं गुजराती होते हुए भी इस सत्य का अनुभव कर लिया था कि भारतीय जनता की एक भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है, अतः उन्होंने इसी को अपने सिद्धान्तों एवं मत प्रचार का माध्यम बनाया। दूसरे आर्य समाज की सर्वाधिक प्रचार ही हिन्दी–भाषी प्रदेशों में हुआ, अतः इसके साहित्यकारों का भी उससे प्रभावित होना स्वाभाविक है।"[4] डॉ. श्रीकृष्ण लाल ने भी हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार का आर्यसमाज को सबसे अधिक प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली साधन स्वीकार किया है।[5]

वस्तुतः राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्थापना और प्रचार दयानंद के अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्यो में से एक है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है, इसलिए इसका देश के कोने–कोने में प्रचार होना चाहिए, आर्य समाज के हिन्दी आन्दोलन की यह अभिव्यक्ति बार–बार नजर आती है। भगवती सिंह की 'हतभागिनी' कविता में यहीं भाव दृष्टिगोचर होते हैं–

"हिन्दी तुम्हारी आर्य भाषा सर्व भाषाओं से भली
परचार इसका हिन्द में हो, ना बचे कोई गली।"[6]

स्वामी दयानंद के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होनी आवश्यक है। जो शिक्षा के माध्यम के साथ सभी राजनीतिक कार्यों में प्रयुक्त हो तथा देश के सभी प्रदेशों लोगों की सम्पर्क भाषा हो। दयानंद के जीवन काल में अंग्रेजों का साम्राज्य हिन्दुस्तान में फैला हुआ था इसलिए अंग्रेजी शासक स्कूल और कॉलेजों में अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर प्रधान स्थान दे रहे थें तथा सरकारी काम में भी इसके प्रयोग को बढावा दे रहे थे। इस समय क्षेत्रीय भाषाएँ भी विकसित हो रही थीं। दयानंद अन्य भाषाओं के विरोधी नहीं थे परन्तु वे यह मानते थे राष्ट्रीय हित के लिए सम्पूर्ण आर्यावर्त की एक भाषा अवश्य होनी चाहिए। और उनके मत से यह भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिन्दी आर्यभाषा ही हो सकती है। क्योंकि हिन्दी भारत की प्रमुख भाषा है जो भारत में सर्वाधिक बोली तथा समझी जाती है। राजनीतिक क्षेत्र तथा परस्पर व्यवहार के लिए भी दयानंद ने हिन्दी का समर्थन किया। हिन्दी को ही वे राष्ट्रभाषा बनने योग्य भाषा मानते थे।

यहाँ और एक बात हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि दयानंद की मातृभाषा गुजराती थी और वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान भी थे। वे पहले संस्कृत में ही भाषण तथा लेखन करते थे किन्तु कोलकाता में उनकी केशवचंद्र सेन से जब मुलाकात हुई उसके बाद उन्होंने हिन्दी में लेखन शुरू किया और भाषण के लिए थी हिन्दी को निर्धारित किया। अपनी रचना सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ संस्करण की भूमिका में दयानंद लिखते हैं–"जिस समय मैंने यह ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन–पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझे इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है।"[7]

दयानंद यहाँ तक आकर रूके नहीं कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए अपितु उसे राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त करने के लिए उन्होंने आन्दोलन भी किया। 14 अगस्त 1882 के एक पत्र में वे लाला कालीचरण रामशरण को लिखते हैं–"इस समय (आर्य भाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मैमोरियल छपे हैं सो शीघ्र भेजना। और आप लोग जहाँ तक हो सके आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिए।"[8]

बाबू दुर्गप्रसाद के नाम दयानंद ने 17 अगस्त 1882 को एक पत्र लिखा था। इस पत्र में उन्होंने बडी विस्तार के साथ अपनी बात रखी है। उन्होंने लिखा है–"दूसरी अतिशोक करने की यह बात है कि आज कल सर्वत्र अपनी आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ (भाषा के प्रचारार्थ जो कमीशन हुआ है) उसमें पंजाब हाथा आदि से मैमोरियल भेजे गए हैं परन्तु फर्रूखाबाद, कानपुर, बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गए ऐसा ज्ञात हुआ है। और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र आया था। उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गए और हम को लिखा है कि आप इस विषय में प्रयत्न कीजिए। अब कहिए हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं ? जो यही एक काम हो तो चिन्ता नहीं। इसलिए आप को अति उचित है कि मध्यप्रदेश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों से और जहाँ–जहाँ परिचय हो सब नगर व ग्रामों में मेमोरियल भिजवाइए। यह काम एक के करने का नहीं और अवसर चूके वह अक्सर आना दुर्लभ है। यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है मुख्य सुधार की नींव पड जाएगी।"[9]

पं. गोपालराव के नाम लिखे पत्र में दयानंद उनकी आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रचार के लिए प्रशंसा करते हे लिखा है–"आशा है आर्यभाषा के प्रचारार्थ भी आप स्वपुरुषार्थ की प्रगटता करेंगे।"[10] दयानंद की यह अवधारणा थी कि हिन्दी को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए।

तत्कालीन जोधपुर नरेश के नाम लिखे एक पत्र में उनका मंतव्य इन शब्दों में उन्होंने प्रकट किया है–

"महाराज कुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइएगा। 25 वर्ष तक ब्रह्मचारी रख के प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या जो कि सनातन आर्य ग्रंथ हैं, जिनके पढने में परिश्रम और समय कम होने और महालाभ प्राप्त हो इन दोनों को पदे। पश्चात यदि समय हो तो अंग्रेजी भी जो कि ग्रामर और फिलासफी वे ग्रंथ हैं पढाने चाहिए।"[11]

संस्कृत में अक्सर कहा जाता है 'यः क्रियावान स पंडितः' इस उक्ति के तहत दयानंद ने अपना सम्पूर्ण जीवन बीता दिया। संस्कृत के पंडित होकर भी उन्होंने अपना समुचा लेखन हिन्दी में किया और हिन्दी साहित्य को समृद्धि प्रदान की। अपनी बहुत सी रचनाएँ हिन्दी में लिखी इतना ही नहीं उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी भाषा में वेदों का भाष्य किया। उनका कथन था कि भाषा की एकता के अभाव में राजनीतिक स्वतंत्रता को प्राप्त करना संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने लिखा भी है–"भिन्न–भिन्न भाषा, पृथक–पृथक शिक्षा, सांस्कृतिक भिन्नता, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुश्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय (स्वतंत्रता प्राप्ति का उद्देश्य) सिद्ध होना कठिन है।"[12]

अंततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि उन्होंने देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिन्दी भाषा को जनसम्पर्क के लिए उपयुक्त भाषा माना और इसे आर्यभाषा माना और इसे आर्यभाषा कहा। स्वामी दयानंद सरस्वती की निम्न रचनाएँ हिन्दी में अपना अलग स्थान रखती हैं–ऋग्वेद भाष्य भाग 1 से 9 तक, यजुर्वेद भाष्य भाग 1 से 4 तक, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्याभिविनय, संस्कार विधि, व्यवहार भानु, अथ पंचमायज्ञ विधि, आर्योदेस्य रत्नमाला, वेद विरुद्ध मत खंडन, उपदेश मंजरी, लघु ग्रंथ संग्रह, और सत्यार्थ प्रकाश इन सब रचनाओं का उन्होंने हिन्दी में लेखन किया है।

यद्यपि दयानंद गुजराती थे तथापि उन्हें देश को एक करने वाली हिन्दी भाषा, से ही अधिक लगाव था। इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय उत्थान हेतु हिन्दी का समर्थन किया। उन्होंने एक बार कहा भी था–"दयानंद के नेत्र वह देखना चाहते हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा, का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रंथ आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित किए हैं।"[13]

निष्कर्ष : अंत में यह निष्कर्ष आसानी से उभरता है कि दयानंद सरस्वती सही अर्थ में क्रियावान पंडित थे। परोपदेशे पांडित्य को छोड कर उन्होंने अपने जीवन में अपने विचारों पर अमल किया। इसलिए दयानंद की कथनी और करनी में हमें कोई फर्क नजर नहीं आता यही दयानंद की सबसे बड़ी विशेषता है। अपना सम्पूर्ण जीवन आर्य भाषा के लिए व्यतीत करते हुए हिन्दी को महत प्रतिष्ठा प्रदान की और आज भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी को जो स्थान प्राप्त हुआ है सके पीछे निःसंदेह महर्षि दयानद सरस्वती का योगदान है इस कथन में शायद ही किसी को आपत्ति हो सकती है। गुरुकुल प्रणाली के द्वारा हिन्दी का प्रचार और प्रसार करने में दयानंद का योगदान अनुपम है और शिक्षा का माध्यम हिन्दी (आर्यभाषा) बनाने के कारण हिन्दी और भी फैल गई यह कथन अनुचित नहीं होगा।

संदर्भ संकेत

1. भक्तराम दृ आधुनिक हिन्दी कविता, कोणार्क प्रकाशन दिल्ली 1973 पृ. क्र. 17
2. पं. इंद्र विद्यावाचस्पती– आर्य समाज का इतिहास प्रथम भाग, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधी सभा दिल्ली 1957 पृ. 41–42
3. मल्होत्रा अशोक सं.–भारतीय संविधान, महाराष्ट्र राज्य भाषा संचालनाय मुंबई 2014 सं. 7 पृ. 140
4. गुप्त गणपतिचंद्र डॉ.–हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, भारतेंन्दू भवन, चण्डीगढ प्रथम संस्करण 1965 पृ. 612–613
5. श्रीकृष्णलाल डॉ. आधुनिक साहित्य विकास, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय, प्रयाग तृतीय संस्करण 1958 पृ. 27
6. वहीं पृ. 151
7. दयानंद सरस्वती–सत्यार्थ प्रकाश सत्यार्थ प्रकाश सोसायटी, अजमेर चतुर्थ संस्करण 1950 पृ. 8–9
8. भगवतदत्त जी पं. सम्पादक–ऋषि दयानंद के पत्र और विज्ञापन, रामलाल कपूर ट्रस्ट, लाहौर 1945 पृ. 366–367 पत्र संख्या 301
9. वहीं पृ. 368–369 पत्र संख्या 303
10. वहीं पृ. 370 पत्र संख्या 305
11. वहीं पृ. 498 पत्र संख्या 419
12. मल्होत्रा शान्ता डॉ.–स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक विचार, के के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1999 पृ. 81
13. भक्तराम, आधुनिक हिन्दी कविता, कोणार्क प्रकाशन दिल्ली 1973 पृ. क्र. 38

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 99-101
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गुरुकुल

अभय प्रताप
वार्ड नं. 1, डुमरा, सीतामढ़ी, बिहार
Mobile : 8507440700
email ID: pratapabhay35@yahoo.in

जैसा कि आप सब ने कई बार रंगमंच पर संस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम' की प्रस्तुति को देखा होगा। नाटक में अभिज्ञान शाकुंतलम् के बारे में संपूर्ण कथा रंगमंच पर दिखाई जाती है। लोग इस नाटक को देख कर अद्भुत आनंद रस को प्राप्त करते हैं। भरत वही राजा हैं, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। इनके पिता का नामरू– राजा दुष्यंत और माता का नाम शकुंतला था। अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मत दियें है। जिसमें पं. हेमन्त रिछारिया भी अपने लेख मे दर्शाते हैं, हमारे देश का नाम श्भारतश चक्रवर्ती सम्राट महाराज भरत के नाम पर पड़ा है। इस देश का नाम भारत जिन चक्रवर्ती सम्राट महाराज भरत के नाम पर रखा गया वे ऋषभदेव–जयन्ती के पुत्र थे। ये वही ऋषभदेव हैं जिन्होंने जैन धर्म की नींव रखी। ऋषभदेव महाराज नाभि व मेरूदेवी के पुत्र थे। महाराज नाभि और मेरूदेवी की कोई सन्तान नहीं थी। महाराज नाभि ने पुत्र की कामना से एक यज्ञ किया जिसके फलस्वरूप उन्हें ऋषभदेव पुत्र रूप में प्राप्त हुए। ऋषभदेव का विवाह देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती से हुआ। ऋषभदेव व जयन्ती के सौ पुत्र हुए जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम श्भरतश था। भरत चक्रवर्ती सम्राट हुए। इन्हीं चक्रवर्ती सम्राट महाराज भरत के नाम पर इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। इससे पूर्व इस देश का नाम 'अजनाभवर्ष' या 'अजनाभखण्ड' था क्योंकि महाराज नाभि का एक नाम 'अजनाभ' भी था।

अजनाभ वर्ष जम्बूद्वीप में स्थित था, जिसके स्वामी महाराज आग्नीध्र थे। आग्नीध्र स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत के ज्येष्ठ पुत्र थे। प्रियवत समस्त भू–लोक के स्वामी थे। उनका विवाह प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से हुआ था। महाराज प्रियव्रत के दस पुत्र व एक कन्या थी। महाराज प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को सप्त द्वीपों का स्वामी बनाया था, शेष तीन पुत्र बाल–ब्रह्मचारी थे। इनमें आग्नीध्र को जम्बूद्वीप का स्वामी बनाया गया था। श्रीमदभागवत (५ध७ध३) में कहा है कि–

'अजनाभं नामैतदवर्षभारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति।'

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हमें शिलालेख एवं अन्य धर्मग्रन्थों में भी मिलते हैं। इसका उल्लेख अग्निपुराण, मार्कण्डेय पुराण व भक्तमाल आदि ग्रन्थों में भी मिलता है

अकसर लोगों को कहते हुए, आपने जरूर सुना होगा। कि सपना वैसा देखो, जिसे तुम पूरा कर सकते हो। लेकिन मैं कहता हूँ सपना देखो जरूर देखो ताकि तुम कुछ अच्छा करने की कोशिश तो जरुर करोगे। और तब तूम उस कार्य को अपनी योजना द्वारा सफल बनाने का प्रयास करोगे। एवं उसके अनुरूप तुम कार्य करोगे यह तभी संभव होगा जब आप सपना को देखेंगे और उसे सफल करने का प्रयास करेंगे। अगर आप सपना नहीं देखेंगे, तो फिर आप उसमें सफलता कैसे करेंगे?

मेरा सपना स्वच्छ एवं सुंदर वातावरण में रहना।
मेरा सपना कुछ करना और करके दिखाना।।
हैं! मेरा सपना दूसरों पर कभी मत हंसना।
हैं! मेरा सपना किसी घायल की मदद करके देखना।।

हैं! मेरा सपना यहाँ न कोई किसी का अपना।
हैं! मेरा सपना यहाँ कुछ भी नहीं तुम्हारा।।
है! मेरा सपना अच्छे मार्ग पर ही चलते जाना।
है! मेरा सपना सद्गुणों को अपनाते जाना।।
हैं! मेरा सपना यहाँ मिलजुलकर आपस में खुश रहना।
हैं! भारत मां का सपना तूम सबको खुश रखना।।

आदर्श हमें महान बनाता है। हम उनके आदर्श मार्गों पर चलने का प्रयास करते हैं। एक बार कि बात है कि मेरे परम–पूजनीय गुरु दत्त सर ने मुझे और किशन को आदेश किए?

गुरु– वत्स अभय और किशन! मेरे लिये चापाकल से मिठे जल लेकर आओं। तो मैं उठा और जल्दी से चापाकल के पास जा पहुँचा और पानी भर लिया। तब मैनें किशन से कहा की तुम जल लेकर गुरु के पास जाओ। तब किशन ने कहा कि गुरु जी ने मांगा है, मीठा जल तो इसमें क्यों ना हम चीनी मिला दे.....जिससे कि गुरु जी को मीठा जल भी मिल जाएगा और हम दोनों गुरु जी के ज्यादा निकट हो जाएँगे! किशन तुम तो बिल्कुल सही कह रहे हो। अभय– लेकिन चीनी लाएगा कौन? किशन– बे चीनी लाने जा कौन रहा है? मैं तो रूह–आवजा लाने जा रहा हूँ और तब मैं अचार्य जी को रूह–आवजा की शरबत ही अर्पन करुगां.....लेकिन तुम यहाँ पर पाँच मिनट खरे रहोगें। अभयरू– तो ठीक है जा ले आजा रूह–आवजा.....और सुनों मैं केवल पाँच–मिनट तक यहाँ खरा रहूँगा। उसी का शरबत गुरु को तुम पिलाना तब तक मैं चापाकल का मीठा जल गुरु को अर्पण करके आता हूँ, क्योंकि गुरु जी को हमें जल्द से जल्द मीठा पानी अर्पण करना है, वरना गुरु जी हम दोनो से नाराज हो जाएँगे। तब मैंने गुरु जी को चापाकल का मीठा जल पीने के लिए दे दिया। तभी किशन आ पहुँचा और उसने गुस्से से रूह आवजा की बोतल से मुझे दे मारा लेकिन वह बोतल सीधा गुरु जी को लगा। यहाँ पर गुरु को लगा इसकी चिंता किशन को नहीं थी। लेकिन अब किशन मुझ पर आरोप लगाते हुए....गुरु से इंसाफ चाहता था। क्योंकि मैंने उसे 5 मिनट का टाइम जो देकर आया था? अगर मैं उसके टाइम का इंतजार करता तो, स्वाभाविक था। कि गुरु जी हमसे नाराज हो जाते। तो मैं! क्या करता? तब मैनें टाइम से पहले गुरु को मीठा जल लाकर पीने को दे दिया था। इधर किशन गुरुजी से इंसाफ मांग रहा था। गुरु जी गुस्से से लाल आंख किए हुए, हम दोनों को बाहर निकाल दियें। फिर वह बोले इंसाफ तो हमको भी चाहिए कि तुम दोनों में रुह–आवजा का आइडिया आया तो कैसे? अब तुम दोनों को सजा मिलेगी...कृतुम दोनों इस हवाई फील्ड के पाँच चक्कर लगाओगे। तब हम दोनों फील्ड का पाँच चक्कर लगा कर गुरु के पास आए। और आते ही हफ्ते–हफ्ते गुरु से पानी मांगा। गुरु– रूको! पानी कुछ देर बाद मिलेगा, क्योंकि अभी तुम दौड़ लगा कर आए हो, अगर इस वक्त तुम पानी पी लोगे तो तुम बीमार पड़ जाओगे! इसलिए पानी कुछ देर बाद मिलेगा। पहले सुस्ता लो, तब हम दोनों आरम से खरे रहें। तब गुरुदेव ने कुछ देर बाद आदेश दियें..कृतुम दोनों के लिये टेबल पर दो बोतलों में जल रखा है। गुरु ने पहले से ही पानी में नमक मिलाकर उन दोनो बोतलों मे रखवा दिया था। अब क्या था? जैसे ही हम दोनों ने जैसे ही जल पिया वैसे ही बाहर फेंक दिया। फिर मैंने पूछा गुरु जी आपने ऐसा क्यों किया? तब गुरुजी बोले कि मैंने तो तुमको पानी लाने के लिए बोला था और तुम दोनों तो बिना बात के आपस में लड़–मरने को तैयार थे और अभी से तुम महात्मा गाँधी, सुभाष चंद्र बोस, खुदीराम बोस और भगत सिंह के आदर्श मार्गों पर चलने का प्रयत्न करो। गुरुरू– मै तुम्हे महात्मा गाँधी के तीन बन्दरों के बारे मे बताता हूँ। 1.मिजारू बंदर : इसने दोनों हाथों से आंखें बंद कर रखी हैं, यानी जो बुरा नहीं देखता। 2.किकाजारू बंदर : इसने दोनों हाथों से कान बंद कर रखे हैं, यानी जो बुरा नहीं सुनता और 3.इवाजारू बंदर : इसने दोनों हाथों स मुंह बंद कर रखा है, यानी जो बुरा नहीं कहता। अब तुम सब घर जाओ। लेकिन जब मैं, बाहर निकला तो मेरे मन में बहुत से ऐसे ख्याल जो हमें विचलित कर रहें थे। मैं सोच रहा था कि बाहर निकल कर भारत को वायु प्रदूषण मुक्त बनाना होगा और जहाँ जल की कमी हो वहाँ पर कुआं की व्यवस्था व कल की व्यवस्था की जाए और साथ ही साथ बारिश के पानी को एक सुरक्षित स्थान पर संरक्षित किया जाए। ताकि हम सब समय–समय पर उसका उपयोग कर सकें। हमारें भारत में कई किसान भुखमरी से मर जाते हैं। क्योंकि वह हर साल खेती करते हैं। लेकिन किसी ना किसी कारण से उनकी फसल बर्बाद हो जाती है। तो वह किसान बैंक लोन और साहूकार के डर से आत्महत्या कर लेता है। लेकिन मैं किसानों की समस्या का समाधान कृषि विभाग के जिला पदाधिकारी को पत्र लिखकर उन्हें सूचित करूंगा और अपने भूमि की मिट्टी की गुणवत्ता की जांच करवा लूंगा। कृषि पदाधिकारी द्वारा किसानों को मिलने वाले लाभों के बारे में जानकारी प्राप्त करूंगा और उस लाभ के बारे में सबको बताउंगा। साथ ही साथ फसल बीमा भी करवा लूंगा ताकि बर्बाद हो जाए तो मुझे आधी रकम तो मिल सकें। मेरा सपना

था। कि हम–सब विद्युत ऊर्जा का सही उपयोग कम करते है। हम लोग क्या करते हैं, कि पंखा चला देते हैं, लेकिन उसे बंद करना भूल जाते हैं, बिजली का बल्ब जला देते हैं और उसे बंद करना भूल जाते हैं। इस प्रकार हम काफी सारी विद्युत ऊर्जा बर्बाद कर देते हैं। यहाँ पर हमें ध्यान देना होगा ताकि जो विद्युत ऊर्जा है। वह गाँव में रोशनी दे सके और वहाँ का बच्चा उस रोशनी में पढ़ सकें। मेरा सपना था भारत दहेज मुक्त व खुशहाल देश हो! प्रेम का संदेश, हमारा ऐसा देश हो। यहाँ के जो राजनेता हो, वह समाजसेवी हो। भारत हमारा रोजगार मुक्त देश हो, ऐसा मेरा खुशहाल मेरा देश हो। यही मेरा संदेश है, स्वर्ग के जैसा अपना भारत देश हो।

सारांश

रंगमंच पर अभिज्ञानशाकुंतलम् नाटक में भरत और उनके पिता राजा दुश्यन्त और माता शाकुन्तला के बारे में बताया जाता है। भरत वही राजा हैं, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। पं. हेमन्त रिछारिया भी अपने लेख मे दर्शाते हैं, हमारे देश का नाम श्भारतश चक्रवर्ती सम्राट महाराज भरत के नाम पर पड़ा है। इस देश का नाम भारत जिन चक्रवर्ती सम्राट महाराज भरत के नाम पर रखा गया वे ऋषभदेव–जयन्ती के पुत्र थे। ये वही ऋषभदेव हैं जिन्होंने जैन धर्म की नींव रखी। ऋषभदेव महाराज नाभि व मेरूदेवी के पुत्र थे। महाराज नाभि और मेरूदेवी की कोई सन्तान नहीं थी। महाराज नाभि ने पुत्र की कामना से एक यज्ञ किया जिसके फलस्वरूप उन्हें ऋषभदेव पुत्र रूप में प्राप्त हुए। ऋषभदेव का विवाह देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती से हुआ। ऋषभदेव व जयन्ती के सौ पुत्र हुए जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम 'भरत' था। भरत चक्रवर्ती सम्राट हुए। इन्हीं चक्रवर्ती सम्राट महाराज भरत के नाम पर इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। इससे पूर्व इस देश का नाम 'अजनाभवर्ष' या 'अजनाभखण्ड' था क्योंकि महाराज नाभि का एक नाम 'अजनाभ' भी था। गुरु हमें आशीर्वचन देते हुए हमें उपदेश देते है। कि आदर्श हमें महान बनाता है। ये शिक्षा हमदोनों को देतें है। मेरा सपना था भारत दहेज मुक्त व खुशहाल देश हो! प्रेम का संदेश, हमारा ऐसा देश हो। यहाँ के जो राजनेता हो, वह समाजसेवी हो। भारत हमारा रोजगार मुक्त देश हो, ऐसा मेरा खुशहाल मेरा देश हो। यही मेरा संदेश है स्वर्ग के जैसा अपना भारत देश हो।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 102-103
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान में गुरुकुल शिक्षा पद्धति की महत्ता

रवि कुमार
शोध छात्र, जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू कश्मीर 180006

गुरुकुल का आशय है वह स्थान या क्षेत्र, जहाँ गुरु का कुल यानि परिवार निवास करता है। प्राचीन भारत में शिक्षक ही गुरु माना जाता था और उसका परिवार उसके यहाँ शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों से ही पूर्ण माना जाता था। जब किसी बालक के पहले गुरु का प्रश्न आया तो यहाँ की परंपरा ने कहा कि मां किसी भी नवजात की पहली शिक्षक है, उसके बाद पिता का स्थान तथा तीसरे स्थान पर उस स्त्री या पुरुष को रखा गया, जो कि बालक को उसके संपूर्ण जीवन को जीने के लिए मार्गदर्शन देता तथा उसे भावी जीवन की कठिनाइयों से संघर्ष करने व जीवन की संपूर्ण जटिलताओं से मुक्त रहते हुए आनंदमय जीवन जीने की शिक्षा देता है। इसीलिए उपनिषदों में लिखा गया कि मातृ देवो भवः, पितृ देवो भवः, आचार्य देवो भवः।

यही कारण है कि सम्पूर्ण प्राचीन भारत के वांग्मय से लेकर अधुनातन तक में हमें इस गुरुकुल व्यवस्था के दिग्दर्शन होते हैं। गुरु की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए यहाँ तक कह दिया गया है कि गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वर, गुरु साक्षात् परमं ब्रह्मा तस्मै श्री गुरुवे नमरू। अर्थात– गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही भगवान शंकर है, गुरु ही साक्षात परब्रह्म है। ऐसे गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ। गुरु की महिमा का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जिसे इस ब्रह्माण्ड का कारण और नियंता माना जाता है उसके समकक्ष गुरु को स्थान दिया गया है। इस गुरुकुल व्यवस्था की परंपरा हमें बताती है कि देश में शिक्षा प्रणाली की यह व्यवस्था कितनी अधिक श्रेष्ठ थी, जिसमें कि शिक्षा के स्तर पर अमीर–गरीब का कोई भेद नहीं। श्री कृष्ण और बलराम गुरुकुल में उस ब्राह्मण बालक सुदामा के साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं, जिसके पास कोई पारिवारिक संपत्ति नहीं होती। ऐसे एक नहीं, अनेक अनुपम उदाहरण गुरुकुल शिक्षा पद्धति के दिखाई देते हैं।

स्त्री और पुरुषों की समान शिक्षा को लेकर यह गुरुकुल कितने अधिक सक्रिय थे, इसके भी कई उदाहरण हैं। उत्तररामचरित में वाल्मीकि के आश्रम में लव–कुश के साथ पढ़ने वाली आत्रेयी नामक स्त्री का उल्लेख हुआ है। जो इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि सह–शिक्षा का प्रचार भारत में प्राचीनकाल से रहा है। इसी प्रकार मालती–माधव में भी भवभूति ने भूरिवसु एवं देवराट के साथ कामन्दकी नामक स्त्री के एक ही पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने का वर्णन किया है। भवभूति आठवीं शताब्दी के कवि हैं। भवभूति के समय भी बालक–बालिकाओं की सह–शिक्षा का प्रचलन अवश्य था। इसी प्रकार पुराणों में कहोद और सुजाता, रूहु और प्रमदवरा की कथाएँ वर्णित हैं। इनसे ज्ञात होता है कि कन्याएँ बालकों के साथ–साथ पाठशालाओं में पढ़ती थीं तथा उनका विवाह युवती हो जाने पर होता था। यह प्रमाण इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ बिना पर्दे के पुरुषों के बीच रहकर ज्ञान की प्राप्ति कर सकती थीं। उस युग में सहशिक्षा–प्रणाली का अस्तित्व भी इनसे सिद्ध होता है। गुरुकुलों में सहशिक्षा का प्रचार था, इस धारणा का समर्थन आश्वलायन गृह ससूत्र में वर्णित समावर्तन संस्कार की विधि से भी मिलता है। इस विधि में स्नातक के अनुलेपन क्रिया के वर्णन में बालक एवं बालिका का समार्वतन संस्कार साथ–साथ सम्पन्न होना पाया जाता है।

ऋग्वेद में एक मंत्र है, जो कि यजुर्वेद में कर्मकाण्ड विषय के अंतर्गत पुरुष सूक्त में भी आया है, ब्राह्मणस्य मुखमासीद, बाहु राजन्य कृतः। उरु तदस्य यद्वैश्यः, पदभ्याम् शूद्रो अजायत। इस मंत्र के दो अर्थ बताए जाते हैं। पहला

यह कि ब्राह्मण यज्ञ करने के लिए, क्षत्रिय युद्ध के लिए, वैश्य व्यापार के लिए और शुद्र सेवा कार्य के लिए हैं। किंतु वहीं ऋग्वेद में एक स्थान पर एक व्यक्ति कहता है कि मैं एक कवि हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी माता चक्की चलाती है। भिन्न–भिन्न व्यवसायों से जीविकोपार्जन करते हुए हम साथ–साथ रहते हैं, जैसे पशु अपने बाड़े में। यहाँ तात्पर्य यह है कि भले ही एक परिवार में रहने वाले सदस्यों की रुची अलग हो सकती है, फिर भी वह एक साथ रहते हैं। अर्थात, यही बात किसी समाज पर लागू होती है।

इस मंत्र का दूसरा अर्थ लगाया जाता है कि ब्रह्म का मुख है ब्राह्मण, भुजायें क्षत्रिय हैं, उदर भाग वैश्य तथा ईश्वर के पैर शुद्र हैं यानि कि इन वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्म के उक्त शरीर के स्थानों से हुई है। एक बार को यह बात मान भी लें, तो स्पष्ट हो जाता है कि भारत की प्राचीन परंपरा तथा ज्ञान का चिंतन कितना अधिक श्रेष्ठ है, क्यों कि भारतीय ज्ञान परंपरा में समाज के सेवक को सबसे ऊंचा स्थान दिया गया है। हिन्दू परंपरा में हमारे यहाँ जिन्हें सम्मान दिया जाता है, उनके पैर छूने का विधान है। जिस मस्तक को ब्राह्मण कहा गया है, वह पैरों में यानि शरीर की सेवा करने वाले शुद्र के लिए सदा झुका रहता है। इसीलिए प्राचीन गुरुकुल में वनों में रहने वाले, राजा के पुत्र या धनिक वर्ग अथवा समान्य व गरीब के बच्चे एक समान, एक पद्धति से बिना किसी भेद–भाव के शिक्षा ग्रहण करते हुए दिखाई देते हैं।

किंतु जब देश में अंग्रेजी राज आया और लॉर्ड मैकाले ने बाबू बनाने वाली तथा अंग्रेज भक्त भारतीयों के निर्माण के लिए आधुनिक शिक्षा के नाम पर अपनी वैचारिकी परोसने का काम किया, साथ में योजनाबद्ध गुरुकुलों का नाश किया। उस समय गुरुकुल शिक्षा पद्धति का मखौल उड़ाते हुए अंग्रेज परस्त और कम्युनिष्ट मित्र बढ़–चढ़ कर आगे आए थे। लेकिन अब उन्होंने भी जान लिया कि आधुनिकता कि नाम पर दी जाने वाली सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा से योग्य और उत्तम पीढ़ियां नहीं बनाई जा सकती हैं। बिना संस्कार जोड़े श्रेष्ठ संततियों का निर्माण नहीं होता है। चलो देर से ही सही देश के अंग्रेजी बौद्धिक वर्ग को यह बात समझ में तो आई। भारतीय चिंतन से प्रेरित बौद्धिक वर्ग तो कब से यह मांग कर रहा है कि विद्यालयीन और महाविद्यालयों में गुरुकुल जैसी श्रेष्ठ परंपरा को जोड़ने के प्रयास शुरू किए जाएँ।

अच्छा है कि कम से कम उच्च शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों के मन में घर कर रहे तनाव, चिंता, गृह विरह और उम्दा अकादमिक प्रदर्शन के दबाव में आत्महत्या की प्रवृत्ति पर काबू पाने की ठोस कोशिशें आरंभ कर दी गई हैं। निश्चित ही जब विश्वविद्यालयों के छात्रों पर पुरातन गुरुकुल व्यवस्था की तर्ज पर शिक्षक की नजर रहेगी तथा कक्षा से बाहर विद्यार्थी की शैक्षणिक –गैर शैक्षणिक समस्याओं के निदान के लिए एक शिक्षक मार्गदर्शक के रूप में उपलब्ध होगा, तब अवश्य ही देश में शिक्षा के वातावरण में आमूलचूक सुधार आएगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ने सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों को उच्चतर शैक्षिक संस्थानों के परिसरों में तथा दूरस्थ परिसरों में छात्रों की सुरक्षा संबंधी जो दिशा–निर्देश दिए गए हैं, उन्हें हम इस रूप में देख सकते हैं। फिलहाल इसके अंतर्गत पच्चीस विद्यार्थियों के एक दल की जिम्मेदारी एक शिक्षक को दी जा रही है। शिक्षक छात्रों की चिंता, असफलता, गृह विरह तथा अकादमिक चिंताओं से उबारेंगे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से विश्वविद्यालय व उच्च शिक्षण संस्थानों में लागू की जा रही इस व्यवस्था के तहत छात्रों को उपलब्ध कराए जाने वाले शिक्षक परामर्शदाता को संरक्षक के तौर पर भी सक्रिय बने रहने का प्रशिक्षण दिया जाने वाला है। शिक्षक न सिर्फ विद्यार्थियों की हरसंभव मदद के लिए तत्पर रहेगा, बल्कि अभिभावकों से भी विद्यार्थियों से जुड़े विभिन्न विषयों पर चर्चा करेंगे। वस्तुतरू आज विश्वविद्यालय स्तर पर इस तरह की प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था की आशिंक ही सही, जरूरत इसलिए भी पड़ी है, क्योंकि बेहतर प्रदर्शन के दबाव व अन्य समस्याओं के कारण पिछले कई वर्षों में विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या करने की घटनाएँ तेजी से घट रही हैं। निश्चित ही जिसे देखकर हम कह सकते हैं कि बदलते वक्त की मांग है गुरुकुल व्यवस्था।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने जो यह पहल की है, आज उसके इस कदम को हर दृष्टिकोण से सराहनीय माना जायेगा। यूजीसी की ओर से लागू की जा रही व्यवस्था में एक शिक्षक पर पच्चीस छात्रों की जिम्मेदारी रहेगी। शिक्षक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करेगा और इसका सीधा असर विद्यार्थी के प्रदर्शन पर पड़ेगा। वस्तुतः होना तो यह बहुत पहले ही जाना था, लेकिन कोई बात नहीं, चलो देर से ही सही शिक्षा के भटकाव के मार्ग में सुधार आना तो शुरू हुआ। आशा की जाए कि आने वाले दिनों में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार शिक्षा क्षेत्र से जुड़े मसलों पर और अच्छे दिन दिखलाएगी।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 104-106
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आर्य समाज : स्वदेशीयता का पुनर्जागरण

डॉ. अतुला भास्कर
पूर्व विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
एस. एन. कॉलेज, अमृतसर

ब्रिटिश राज्य के शासन के दौरान भारत की अर्थ–नीति, शिक्षा –पद्धति, यातायात के साधनों में बुनियादी परिवर्तन हुए। इसके फलस्वरूप समाज का जो आधुनिकीकरण आरंभ हुआ, वह पुराने धार्मिक संस्कारों से मेल का नहीं था। नये यथार्थ और पुराने संस्कारों के बीच सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस सामंजस्य के साथ नये भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हुई जिसे 'पुनर्जागरण' कहा गया।

आर्य समाज का अर्थ है श्रेष्ठ पुरुषों का संगठन। आर्य समाज की स्थापना 10 अप्रैल ,1875 में महर्षि दयानंद सरस्वती ने बंबई में की थी। महर्षि असाधारण व्यक्ति, संस्कृत के अनन्य विद्वान, दृढ़ आत्मविश्वासी एवं अत्यंत मेधावी थे। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है अर्थात शारीरिक, आत्मिक उन्नति करना। आर्य समाज के प्रणेता स्वामी जी ने भारतीय राजनैतिक पुनर्जागरण को धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक दृष्टि से नया मोड़ दिया। उनकी विचारधारा वैदिक धर्म पर आधारित थी। उन्होंने भारतीयों के पतन का मूल कारण वैदिक धर्म को विस्मृत कर देना स्वीकार किया। स्वामी जी ने माना कि वैदिक धर्म के प्रचार के लिए सर्वप्रथम भारत में प्रचलित धार्मिक अंधविश्वासों व पाखंडों से जन–मानस को मुक्त करना होगा।

आर्य समाज ने स्वदेशी व स्वराज्य के विचारों का उद्‌बोधन करके भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार – प्रसार किया तथा सामाजिक एकता को स्थापित कर भारतीय राष्ट्रवाद को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय समाज को तत्कालीन निराशाजनक स्थिति से बाहर निकल कर गौरवशाली अतीत का अनुकरण करने की प्रेरणा दी। भारतीयों में स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व की भावनाओं के साथ–साथ आत्मसम्मान व राष्ट्रीयता के विकास के भी बीज बोए।

भारतीय राजनीतिक पुनर्जागरण के विकास में आर्य समाज का प्रबल योगदान रहा। आर्य समाज ने वैदिक धर्म और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का समर्थन करके भारतीयों में स्वाभिमान के भाव उत्पन्न किए। वैदिक धर्म के माध्यम से धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों के बंधन से देशवासियों को मुक्त करने का प्रयास किया।

वास्तव में स्वामी जी के सामने पहली बड़ी समस्या धार्मिक सम्प्रदायों तथा धार्मिक अंधविश्वासों से जर्जरित भारतीय समाज को पुनर्जीवन देने की थी। दूसरी समस्या इस्लाम तथा ईसाई धर्म द्वारा हिन्दू धर्म पर किए जाने वाले प्रहार की थी ,जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय अस्मिता लुप्त हो रही थी। महर्षि ने इस समस्या का निदान वैदिक धर्म में पाया। अतः वैदिक धर्म का उपदेश दिया। उनका विचार था कि किसी भी विदेशी प्रभाव को स्वीकार कर लेने मात्र से राष्ट्रीय भावना जिसका वह पोषण करना चाहते थे, संकट में पड़ जाएगी। उनका स्पष्ट कथन था–"आर्य विशिष्ट जाति है, वेद विशिष्ट ग्रंथ हैं, आर्यावर्त विशिष्ट भूमि है।" उनका मानना था कि वैदिक शिक्षा के पालन से स्वशासन एवं स्वराज्य स्वतः सुलभ हो जाएंगे। वेद अपौरुषेय हैं, वैदिक धर्म सत्य और सार्वभौम है। उन्होंने विश्व के समस्त ग्रंथों की तुलना में वेदों को प्राचीन माना। उनकी मान्यता थी कि वेद पूर्णरुपेण ज्ञान के भंडार हैं तथा उतने प्राचीन हैं जितनी कि मानव सृष्टि।

महर्षि की इस वेदवादी धारणा ने भारतीयों में आत्महीनता के स्थान पर आत्मगौरव के भाव उत्पन्न किए। उन्होंने देशवासियों को धार्मिक अंधविश्वास से मुक्त किया तथा विधर्मी होने से बचाया। उन्होंने वेदों को भारत के युगों

की चट्टान समझ कर पकड़ लिया और उन में तारुण्य की समग्र शिक्षा, समग्र पुरुषत्व तथा समग्र राष्ट्रीयता के दर्शन किए। उन्होंने राष्ट्रीय भावना को आत्मानुभूति का रुप देकर ज्योतिर्मय बना दिया।

महर्षि ने जातीय दृष्टिकोण से भी भारतीय राष्ट्रवाद को विकसित किया। उन्होंने ऋग्वेद के आधार पर केवल आर्य जाति को ही स्वीकार किया तथा वैदिक धर्मावलंबियों को अन्य जातियों से श्रेष्ठ बताते हुए 'आर्य' कहा अर्थात उत्तम पुरुष। उन्होंने देश का गुणगान करके न केवल स्वदेश का मान बढ़ाया अपितु राष्ट्रवाद को एक नयी दिशा प्रदान की। उन्होंने इस देश को 'आर्यावर्त ' कहा और इसकी प्रशंसा में लिखा कि–"आर्यावर्त ऐसा देश है जिसके सदृश्य भूलोक में दूसरा देश नहीं है।" आर्यावर्त ही सच्चा पारसमणि है, जिसका लोहे रुपी विदेशी स्पर्श मात्र करने से स्वर्ण अर्थात धनाढ्य हो जाते हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी महर्षि ने भारतीय राजनीतिक पुनर्जागरण को बल प्रदान किया। उनका मानना था कि भारत की अपनी संस्कृति, अपनी शिक्षा और अपनी राष्ट्र भाषा है। उन्होंने भारतीय संस्कृति की प्रशंसा की एवं उसके प्राचीन स्वर्णिम गौरव का गान किया। उनका विचार था कि भारतीय ही मानव जाति के मौलिक शिक्षक थे तथा उनका देश आर्यावर्त मानव सभ्यता की पवित्र भूमि थी। आर्यों ने धर्म, सत्य तथा ज्ञान का प्रसार एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका व समस्त विश्व में किया। पर वैदिक ज्ञान और संस्कृति से विहीन होने के कारण उनका पतन हो गया।

राष्ट्रभाषा व राष्ट्रीय शिक्षा का समर्थन करके महर्षि ने भारतीयों के मानसपटल पर राष्ट्रवाद की भावना को रेखांकित कर दिया। उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति तथा अंग्रेजी भाषा के स्थान पर वैदिक शिक्षा पद्धति व राष्ट्र भाषा हिंदी का समर्थन किया। राष्ट्र भाषा हिंदी को प्राथमिकता प्रदान कर और राष्ट्र की उन्नति हेतु एक भाषा हिंदी की आवश्यकता को राष्ट्रीय आंदोलन के पूर्व ही उन्होंने भांप लिया था। उनका हिंदी भाषा का प्रचार राष्ट्रवादी राजनैतिक भावना के प्रसार में सहायक सिद्ध हुआ–स्वदेशी का समर्थन तथा विदेशी का बहिष्कार। यही विचारधारा भारतीय राजनीतिक पुनर्जागरण का प्रमुख साधन सिद्ध हुई।

स्वराज का सर्वप्रथम उद्घोष महर्षि दयानंद जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश ' में किया। भारतीय राष्ट्रवाद के मौलिक विचार प्रदान करके नया स्वरूप तथा नये सिद्धांत प्रस्तुत किए। स्वधर्म, स्वदेश, स्वजाति, स्वसंस्कृति तथा स्वभाषा का समर्थन करके देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। इसी नवीन भावना एवं सिद्धांत के प्रचारक पंडित लेखराम,पंडित गुरु दत्त विद्यार्थी, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय तथा अरविंद घोष थे। आर्य समाज के मूर्धन्य स्वामी श्रद्धानंद जी ने भी स्वदेशी का प्रचार किया। उन्होंने गुरुकुलों को संचालित करने, देश की बनी वस्तुओं को लोकप्रिय बनाने, राष्ट्रभाषा को प्रयोग में लाने और वैदिक शिक्षा प्रणाली का विकास करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद जी भारत के स्वराज्य के स्वप्न द्रष्टा थे। उन्होंने स्पष्ट विचार दिया कि ' विदेशी राज्य अच्छा हो सकता है, लेकिन स्वराज्य नहीं हो सकता है।'उनके द्वारा उस समय स्वदेशी राज्य और स्वराज की बात करना जबकि देश राजनीतिक तौर पर अपरिपक्व था, विशेषतः महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने पराधीनता का मुख्य कारण धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों ,आलस्य, अज्ञानता व आन्तरिक मतभेदों को माना। उन्होंने पराधीनता से मुक्त होने के लिए वैदिक धर्म का आश्रय लिया। उनका मत था कि वैदिक शिक्षाओं का पालन करने से स्वशासन एवं स्वराज्य सुलभ हो जाएगा। उन्होंने 'वेदों की ओर वापस जाओ' का नारा दिया जिसकी निष्पत्ति 'आर्यावर्त आर्यों के लिए' के रूप में हुई।

ब्रिटिश शोषणकारी आर्थिक नीति के विरुद्ध हमारे देश में जो स्वदेशी आंदोलन संचालित हुआ उसमें आर्य समाज ने ना केवल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया जिसका तत्कालीन राजनीतिक पुनर्जागरण में चतुर्दिक प्रभाव पड़ा। महर्षि दयानंद संयासी होने के कारण सक्रिय राजनीति से दूर रहे परन्तु एक विशेषज्ञ की भांति उन्होंने देश की दासता की मूल समस्या को समझा और उसका समाधान सुझाया। राष्ट्रीय उत्थान का आंदोलन आर्य समाज हिंदुवादी दृष्टिकोण के बावजूद राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढ़ाने में आश्चर्यजनक रूप से सहायक रहा। कुछ समय तक ब्रिटिश सरकार इसे दबाने की भरपूर चेष्टा करती रही, किंतु उत्तर भारत के आचार–विचार,रहन–सहन , साहित्य और संस्कृति पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव पड़ा। आर्य समाज का प्रसार मुख्यतः मध्य वर्ग के बीच हुआ, इसीलिए इसका कार्य अधिक क्रांतिकारी सिद्ध हो सका। इसकी कार्य पद्धति एक ओर प्रगतिशील थी, तो दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी। आर्य समाज ने नारी जाति के उत्थान के लिए स्त्री शिक्षा पर बल दिया। महिलाओं को वेद पढ़ने ,यज्ञ करने,सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलन में सांझेदारी करने का सर्वप्रथम

आह्वान किया। सती प्रथा बंद करवाई और विधवा विवाह की अनुमति दी। दलित उद्धार के लिए छुआछूत का विरोध किया तथा बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहु विवाह पर पाबंदी लगवाई। शिक्षा प्रसार के लिए स्कूल, कालेज और गुरुकुल बड़ी संख्या में खोले। गऊशालाएं स्थापित की। विधवा आश्रम, अनाथालय, धर्मशालाओं और हस्पतालों का निर्माण करवाया। निःसंदेह यह सभी कार्य स्वदेशीयता के द्योतक थे और पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए।

'महर्षि' न भूलेंगे कभी हम तेरे उपकार।
सब जन मिलजुल कर नमन करें शत बार।।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 107-109
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद और हिंदी

ज्योति कुमारी
शोधार्थी
पता–हेसल देवी मंडप रोड रांची, थाना– सुखदेव नगर थाना
पोस्ट ऑफिस–हेहल
मोबाइल नंबर 9431100176

भारत में जब–जब धर्म और समाज में विकृति आई है और जनजीवन अवनति के मार्ग पर चला है तब–तब इस पुण्य भूमि पर कोई ना कोई विभूति अवतरित हुई है। ऐसी ही विभूतियों में स्वामी दयानंद का नाम भी शामिल है उन्होंने समाज में व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने में अहम भूमिका निभाई उन्होंने राष्ट्रभाषा हिंदी को मान्यता देने के लिए स्वभाषा और जाति के स्वाभिमान को जागृत किया।

स्वामी दयानंद का जन्म ऐसे समय में हुआ जब देश चारों ओर से संकट और आपदाओं से घिरा हुआ था हमें विदेशी शासकों ने अपने शिकंजे में कस सब प्रकार के अधिकारों से वंचित कर अमानवीयता के वातावरण में जीने के लिए बाध्य कर दिया था स्वामी दयानंद जी ने। मानवता विरोधी गतिविधियों का गंभीर पूर्वक अध्ययन कर उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने का दृढ़ संकल्प लिया। स्वामी दयानंद जी का जन्म गुजरात राज्य के मोरवी के टंकारा नामक ग्राम में १२ फरवरी १८२४ ईस्वी को हुआ था। उनके पिता का नाम कर्षण जी था वे गांव के बड़े जमींदारों में शामिल थे। स्वामी दयानंद जी को बचपन का नाम मूलशंकर था मूलशंकर जी बचपन से ही मेधावी थे स्वामी जी की प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत विषय में हुई १४ वर्ष की आयु में ही मूलशंकर को बहुत से शास्त्र व ग्रंथ कंठस्थ हो चुके थे। पारिवारिक घटनाओं ने उनके मन पर गहरा प्रभाव डाला और वे वैराग्य की ओर उन्मुख हो गए।

महर्षि दयानंद ने मथुरा के स्वामी विराजनंद को अपना गुरु बनाया और उनके हीनेतृत्व में ३५ वर्षों तक उन्होंने वेदों का अध्ययन किया। कहा जाता है कि गुरु विरजानंद जी अपने शिष्यों से लौंग लिया करते थे किंतु उन्होंने स्वामी दयानंद से गुरु दक्षिणा के रूप में आदेश दिया कि अब जाओ और देश में फैले हुए समस्त प्रकार की अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करो। गुरु आदेश को स्वीकार कर दयानंद जी ने अपने उत्तर दायित्व का निर्वहन करने के लिए देश के भ्रमण पर निकल पड़े। देश के विभिन्न भागों में भ्रमण करते हुए स्वामी जी ने मुंबई में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध करते हुए उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया। स्वामी जी ने एक महान ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश'की रचना की। इसके अलावा 'ऋग्वेद की भूमिका','व्यवहार भानु' तथा 'विधान प्रकाश' नामक उनके श्रेष्ठ ग्रंथ थे वे बाल विवाह के कट्टर विरोधी थे। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में विशेषकर हिंदी गद्य साहित्य के विकास में आर्य समाज और महर्षि दयानंद सरस्वती का विशेष योगदान रहा है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि "सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत का अभिमान दयानंद ने निखारा"। स्वामी जी ने वेदांतमार्ग के विरुद्ध चलने वाले हिंदू को पुनः आर्य बताने का प्रयत्न किया। स्वामी जी जन्मता गुजराती भाषी थे परंतु सच में राष्ट्र अभिमानी उनमें कूट–कूट कर भरा होने से आर्य समाज के राष्ट्रीय व्यापारी प्रचार को ध्यान में रखकर गुजराती के स्थान पर हिंदी भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। स्वामी जी की दृष्टि से उनके संदेशों को राजमहल से लेकर गरीब की झोपड़ी तक पहुँचाने वाली भाषा हिंदी है। उन्होंने हिंदी की इस संपर्क क्षमता को देखकर उसे आज समाज के गरिमामय नाम से अभिहित किया था। दयानंद जी ने बापू केशव चंद्र सेन के परामर्श से जन भाषा हिंदी को अपनाया उन्होंने एक बैठक में जिसमें भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्री प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन और श्री राधाचरण

गोस्वामी उपस्थित थे तभी उन्होंने विलासिनी उर्दू की तुलना में संस्कृति और सभ्यता की भाषा हिंदी को 'कुलकामिनी' कहा था।

स्वामी दयानंद का मूल मंत्र था कि "जनता का विकास और प्रगति सुनिश्चित करने और उनके अस्तित्व की रक्षा करने का सर्वप्रथम साधन शिक्षा है"। इसी मंत्र को गांठ बाँधकर आर्य समाज ने कार्य किया आर्य समाज ने इस तथ्य को आत्मसात कर लिया था कि शिक्षा की जड़े राष्ट्रीय भावना और परंपरा में गहरी जमी होनी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल व डीएवी कॉलेज स्थापित कर शिक्षा जगत में आर्य समाज में अग्रणी भूमिका निभाई। हमारी शिक्षा में भारतीयों और दर्शन को सर्वोपरि स्थान प्राप्त होगा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी आर्य समाज का उल्लेखनीय योगदान रहा है। १८८५ के प्रारंभ तक आर्य समाज की अमृतसर शाखा ने दो महिला विद्यालयों की स्थापना की घोषणा की थी तथा तीसरा कटरा ढोला में प्रस्तावित था। १८८० के दौरान लाहौर आर्य समाज महिला शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी बना हुआ था आर्य समाज से जुड़े लोग भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ–साथ भारत की संस्कृति भाषा शिक्षा आदि के क्षेत्र में सक्रिय रुप से जुड़े रहे। स्वामी दयानंद की मातृभाषा गुजराती थी और उनका संस्कृत का ज्ञान बहुत अच्छा था किंतु केशव चंद्र सेन की सलाह पर उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिंदी में की। दयानंद सत्यार्थ प्रकाश जैसा क्रांतिकारी ग्रंथ हिंदी में लिख हिंदी को एक प्रतिष्ठा दी। आर्य समाज ने हिंदी को आर्य भाषा कहा और सभी आर्य समाज के लिए इसका ज्ञान आवश्यक बताया। दयानंद जी वेदों की व्याख्या संस्कृत के साथ साथ हिंदी में भी की। स्वामी श्रद्धानंद ने हानि उठाकर भी अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी में किया जबकि प्रकाशन पहले उर्दू में होता था आर्य समाज हिंदी के संवर्धन के मैदान में अग्रगामी बना।

सैकड़ों गुरुकुल, डीएवी स्कूल और कॉलेजों में हिंदी भाषा को प्राथमिकता दी गई और इस कार्य के लिए नवीन पाठ्यक्रम की पुस्तकों की रचना हिंदी भाषा के माध्यम से गुरुकुल कगड़ी एवं लोहार आदि स्थानों पर हुई जिनका विषय विज्ञान, गणित, समाजशास्त्र, इतिहास आदि थे। यह एक अलग ही किस्म का हिंदी भाषा में परीक्षण था जिसके वांछनीय परिणाम निकले विदेशों में भवानी दयाल सन्यासी, भाई परमानंद, गंगा प्रसाद उपाध्याय, डॉक्टर चिरंजीव भारद्वाज मेहता, जैमिनी आचार्य रामदेव पंडित जम्मू पति आदि ने हिंदी भाषा का प्रवासी भारतीयों में प्रचार किया। जिससे वे मातृभूमि से दूर होते हुए भी उसकी संस्कृति उसकी विचारधारा से ना केवल जुड़े रहे अपितु अपनी विदेश में जन्मी संतति को भी उस से अवगत कराते रहे। आर्य समाज ना केवल पंजाब में हिंदी भाषा का प्रचार किया अपितु सुदूर दक्षिण भारत में असम, वर्मा आदि तक हिंदी को पहुँचाया गया। न्यायालय में भाषा के स्थान पर सरल हिंदी भाषा के प्रयोग के लिए भी स्वामी श् दयानंद प्रयास किए गए थे।

आर्य समाज की हिंदी पत्रकारिता ने देश को राष्ट्रीय संस्कृति धर्म चिंतन स्वदेशी का पाठ पढ़ाया। आर्य समाज के माध्यम से ज्ञानमूलक व रसात्मक दोनों प्रकार से साहित्य की अभूतपूर्व वृद्धि हुई। स्वामी दयानंद पत्रकारिता द्वारा धर्म प्रचार व्यापक रूप से करना चाहते थे स्वामी दयानंद वे स्वयं कोई पत्र नहीं निकाल सके परंतु आर्य समाज की विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रसारित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं में समान आत्म शुद्धि पत्र "वैदिक गर्जना', "आर्य संकल्प", 'वैदिक रवि', 'विश्व ज्योति' 'सत्यार्थ सौरभ', 'महर्षि दयानंद स्मृति प्रकाश' आदि मासिक पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही है। जिससे हिंदी पत्रकारिता को नव्य आलोक मिल रहा है आर्य समाज के प्रचार की भाषा हिंदी ही रही। आज समाज में हिंदी पत्रकारिता के उन्नयन में ऐतिहासिक भूमिका निभाई आर्य समाज पर आधारित वर्ण व्यवस्था का विरोध करता है और वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म को स्वीकारता है। उसका यह मानना है कि कोई भी जाति जन्मसे अछूत नहीं होता। सुधार की दिशा में इस संस्था के कारनामे में अविस्मरणीय है राजनीति के क्षेत्र में आर्य समाज स्वदेशी राज्य को सर्वोपरि मानता है। राष्ट्र के उद्धार में स्वदेशी आंदोलन का सराहनीय योगदान रहा है। स्वदेशी राज्य का समर्थन करते हुए दयानंद सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के आठवें उल्लास में लिखा है "कोई कितना ही करें परंतु स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" आर्य समाज में स्वदेश प्रेम की भावना ग्रहण करके अनेक भारतवासी देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हो गए। बिस्मिल कहते हैं कि "मैंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा उससे तख्ता ही पलट गया सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नई नवीन पृष्ठ खोल दिया"।

भारत के स्वाधीनता आंदोलन में स्वदेशी, स्वभाषा, स्वराष्ट्र आदि की गूंज को प्रचलित करने का श्रेय इसी आर्य समाज को जाता है साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद आरंभिक दौर से ही आर्य समाज और स्वामी दयानंद पर विश्वास रखते थे। हिंदी के संस्कृतिकरण या ततसमीकरण आर्य समाज का एक प्रधान कारण था हिंदी के संस्कृतिकरण और राष्ट्रभाषा पद पर स्वीकार करने के अतिरिक्त आर्य समाज ने हिंदी गद्य को एक नई शैली प्रदान की जो शास्त्रार्थ और खंडन मंडन के उपयुक्त थी। आलोचना और वाद–विवाद करने की शक्ति आई भाव व्यंजना में भी इसे सहायता मिली और तर्क शैली

के साथ–साथ व्यंग्य तथा कटाक्ष करने की शक्ति का आविर्भाव हुआ। हिंदी भाषा तथा गद्य शैली का विकास और अभूतपूर्व था क्योंकि आर्य समाज का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक था इसलिए उसने साहित्य को को तरह–तरह के विषय सुझाये। यद्यपि भारतेंदु, राधा कृष्ण दास, श्रीनिवास दास, प्रताप नारायण मिश्र जैसे कवि उपन्यासकार और नाटककार आर्य समाजी ही नहीं थे तो भी उनके द्वारा गृहित अनेक विषयवे ही है जो आर्य समाज आंदोलन अपनाए हुए थे। ऐसे अनेक तत्कालीन नाटक प्रहसन और उपन्यास उपलब्ध होते हैं जिन पर तर्क प्रणाली विषय शैली आदि की दृष्टि से आर्य समाज का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और बीसवीं शताब्दी में आर्य समाज उच्च कोटि के प्रसिद्ध नाटककार कवि या अन्य लेखक और कलाकार बहुत कम हुए बीसवीं शताब्दी में भी पदम सिंह शर्मा, नाथूराम शर्मा आदि जैसे कुछ प्रसिद्ध लेखक और कवि हुए हैं। प्रचारात्मकता आंदोलन होने की वजह से उच्च कोटि का साहित्य प्रचुर मात्रा में ना दे सका। भाषा, विषय चयन, लेखक और कवियों के दृष्टिकोण तथा उनकी विचार पद्धति पर आर्य समाज का काफी प्रभाव पड़ा। यह निसंदेह जा सकता है लगभग पिछले बीस पच्चीस वर्षों से आर्य समाज का साहित्य पर गहरा प्रभाव एक प्रकार से नगण्य है। वास्तव में आर्य समाज एक ऐसा आंदोलन था जिसने देश की एक ऐतिहासिक आवश्यकता पूरी की शिक्षा, समाज सुधार धर्म, सुधार आदि क्षेत्रों में उसके द्वारा प्रचलित लगभग सभी बातें देश द्वारा स्वीकृत हो जाने के फल स्वरुप उसकी गतिशीलता समाप्त हो गई।

आर्य समाज के माध्यम से हिंदी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। स्वामी दयानंद ने हिंदी को अपने प्रचार प्रसार व लेखन की भाषा बनाकर इसको संस्कृति के समान उससे भी अधिक गौरव प्रदान किया। ऋषि दयानंद ने अपने समय में हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए अंग्रेज सरकार द्वारा गठित हंटर कमीशन के समक्ष करोड़ों लोगों के हस्ताक्षर से युक्त ज्ञापन देने के समक्ष करोड़ों लोगों के हस्ताक्षर युक्त ज्ञापन देने का एक आंदोलन भी चलाया था। स्वामी दयानंद के हिंदी प्रचार प्रसार से अहिंदी भाषी भी हिंदी सीखने को प्रेरित हो गए। दयानंद जी के इस आंदोलन के प्रति हम सभी नतमस्तक करते हैं। दयानंद जी के द्वारा हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरवपूर्ण स्थान रहा साथी आर्य समाज और अनेक अन्य सभी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आज हिंदी देश की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है जो स्वामी दयानंद के प्रयासों का सफल परिणाम है। हिंदी को लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है दयानंद सरस्वती ने चिर स्मरणीय हैं।

आज दयानंद का एक ग्रंथ हैं'ऋग्वेददिभाष्य' भूमिका यह ग्रंथ चारों वेदों के ऋषि दयानंद के संस्कृत व हिंदी भाषा का भूमि ग्रंथ है। इसमें स्वामी दयानंद ने संस्कृत व हिंदी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है इसका यह लाभ हुआ कि जो विद्वान संस्कृत जानते थे वह हिंदी नहीं जानते थे वह भी इस भूमिका ग्रंथ के माध्यम से हिंदी से परिचित हो गए। इसका कारण क्या था कि स्वामीजी ने उन्हें हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया इस प्रकार स्वामी दयानंद अपने जीवन में हर क्षेत्र से जुड़े रहे तथा अहिंदी भाषियों को भी हिंदी सीखने के लिए समय–समय पर प्रेरित करते रहें। आज हिंदी दिवस या हिंदी भाषा का जबभी नाम लिया जाता है हम उसका सबसे बड़ा कारण स्वामी दयानंद जी ही है। हिंदी के प्रचार प्रसार में दयानंद सरस्वती ने जो योगदान दिया वह अविस्मरणीय है।

संदर्भ

महर्षि दयानंद– यदुवंश सहाय वर्मा
आर्य समाज– लाला लाजपत राय
आर्य समाज के उन्नायक महर्षि दयानंद– डॉ मधु संधू
हिंदी शब्दकोश ज्ञान गंगा
आधुनिक हिंदी साहित्य– लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1954

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 110-111
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानंद सरस्वती का हिंदी साहित्य में योगदान

सुप्रिया कुमारी
नेट, पीएच0डी0 शोध छात्रा
हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची
मो.न.–9123206975
Email : supriyasupi304@gmail.com

सारांश

हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में महर्षि दयानंद सरस्वती का योगदान अप्रतिम है। हिंदी भाषा और साहित्य को इस सुधारवादी धार्मिक नेता ने कई प्रकार से प्रभावित किया हिंदी भाषा को तत्समीकरण और संस्कृतिकरण पर स्वामी जी का ही प्रभाव है। उन्होंने इस भाषा को वाद विवाद खंडन मंडन शास्त्रार्थ के अनुकूल बनाया और तार्किकता के साथ–साथ इसे व्यंग्य और कटाक्ष की शक्ति के लिए संपन्न किया।

परिचय

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात प्रदेश के मोरवी क्षेत्र के टंकरा नामक स्थान में सन 1824 ईस्वी में हुआ था। इनके बचपन का नाम मूल शंकर था इन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत भाषा में ग्रहण की इनके गुरु विरजानंद तथा पूर्वानंद थे, इन्होंने अपने संपूर्ण देश भ्रमण के दौरान ही सन 1875 ईस्वी में आर्य समाज की स्थापना की।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती एक महान देशभक्त समाज सुधारक व चिंतक थे उन्होंने हिंदू धर्म में व्याप्त कुरीतियों व बुराइयों का खुलकर विरोध किया और महिलाओं को उनका उचित अधिकार दिलाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, साथ ही देश के लिए भी उन्होंने उल्लेखनीय योगदान दिया।

'नुकसान से निपटने में सबसे जरूरी चीज है उससे मिलने वाले सबक को ना भूलना वह आपको सही मायने में विजेता बनाता है।'

'दुनिया को अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए और आपके पास सर्वश्रेष्ठ लौटकर आएगा।'

'कोई मूल्य तब मूल्यवान है जब मूल्य का मूल्य समय के लिए मूल्यवान हो।'

'हमें पता होना चाहिए कि भाग्य भी कमाया जाता है और थोपा नहीं जाता ऐसी कोई कृपा नहीं है, जो कमाई ना गई हो।'

'मुझे इस सत्य का पालन करना पसंद है, बल्कि मैंने औरों को उनके अपने भले के लिए सत्य से प्रेम करने और मिथ्या को त्यागने के लिए राजी करने को अपना कर्तव्य बना लिया है अधर्म का अंत मेरे जीवन का उद्देश्य है।'

'कोई भी मानव हृदय सहानुभूति से वंचित नहीं है, कोई धर्म उसे सिखा पढ़ा कर नष्ट नहीं कर सकता कोई संस्कृति कोई राष्ट्र कोई राष्ट्रवाद कोई भी उसे छू नहीं सकता क्योंकि यह सहानुभूति है।'

'हालांकि संगीत भाषा संस्कृति और समय से परे है, और नोट समान होते हुए भी भारतीय संगीत अद्वितीय है क्योंकि यह विकसित है परिष्कृत है, और इस में धूल को परिभाषित किया गया है।'

'वर्तमान जीवन का कार्य अंधविश्वास पर पूर्ण भरोसे से अधिक महत्त्वपूर्ण है।'

'धन एक वस्तु है जो इमानदारी और न्याय से कमाई जाती है। इसका विपरीत है अधर्म का खजाना।'

उनके जीवन की एक, घटना ने उन्हें हिंदू धर्म के पारंपरिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में प्रश्न पूछने पर मजबूर कर दिया शिवरात्रि के शुभ अवसर पर उनका पूरा परिवार रात्रि में जागरण के लिए मंदिर में ही रुका। उस समय स्वामी दयानंद जी बालक थे, सारे परिवार के सो जाने पर भी वे जागते रहे, और शिव जी की प्रतिमा को देखकर सोचते रहे कि शिव जी प्रकट होंगे और प्रसाद ग्रहण करेंगे, परंतु वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि उनके प्रसाद को एक चूहा खा रहा था। यह देखने के बाद इनके मन में यह विचार आया कि जो ईश्वर स्वयं को चढ़ाए गए प्रसाद की रक्षा नहीं कर सकता, वह मानवता की रक्षा कैसे करेगा। इस बात पर उन्होंने अपने पिता से तर्क वितर्क करते हुए कहा कि हमें ऐसे असहाय ईश्वर की पूजा नहीं करनी चाहिए।

"लोगों को कभी भी चित्रों की पूजा नहीं करनी चाहिए मानसिक अंधकार का फैलाव मूर्ति पूजा के प्रचलन की वजह से है।"

हिंदी साहित्य में महर्षि दयानंद के योगदान

आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में ही होता था। इसलिए हिंदी प्रसार को सुंदर आधार मिला। आर्य समाज द्वारा गुरुकुल कन्या पाठशालाओं और महिला विद्यालयों की स्थापना की। जिनमें हिंदी की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिंदी में देने की सफल व्यवस्था की गई। इस विषय में इंद्र विद्यावाचस्पति का कथन है–

"भारत में पहला शिक्षणालय है जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा संपूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया है गुरुकुल कांगड़ी था। "

गुजरात भाषा–भाषी स्वामी जी के हिंदी–प्रेम से उनके अनुयायियों में अनुकरणीय हिंदी प्रेम जगा।

श्री राम गोपाल के शब्दों में –

"उनके अनुयायियों के धर्म प्रचार से जो अधिक उत्तम चीज राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त हुई वह थी राष्ट्रभाषा का प्रचार।"

आर्य समाज के माध्यम से हिंदी का प्रचार भारत से बाहर मॉरीशस, फिजी, गुयाना, सुरीनाम, त्रिनिदाद, युगांडा और लंदन में हुआ। आर्य समाज के द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए हिंदी में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रिका में प्रकाशित की गई। भारत की जनता स्वामी दयानंद के विचार पढ़ना चाहती थी। इन पत्र–पत्रिकाओं में ऐसे विचार प्रकाशन से हिंदी पर्याप्त लोकप्रिय बने स्वामी जी पहले संस्कृत में व्याख्यान देते थे, किंतु कोलकाता के ब्रह्म समाज के नेता केशव सेन के आग्रह पर उन्होंने हिंदी को अपनाया है। इस प्रकार हिंदी प्रसार को लोकप्रिय आधार मिला है। स्वामी जी के परम सहयोगी इंद्र विद्यावाचस्पति ने स्वामी जी के हिंदी प्रेम के महत्त्व के विषय में लिखा है–

"महर्षि ने लोक भाषा को उपदेश का साधन बना कर न केवल अपने मिशन को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया बल्कि भविष्य में राष्ट्रभाषा बनाने वाली आर्य की पुष्टि देकर राष्ट्र के स्वाधीनता भवन की बुनियाद भी रख दी।

स्वामी दयानंद जी के आत्मकथा में जीवन के विविध पक्षों तथा ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, विद्वत्ता, सत्य, निष्ठा और निर्भीकता आदि का सजीव चित्रण हुआ है। सत्यानंद अग्निहोत्री कृत मुझ में देव जीवन का विकास का पहला खंड सन 1909 ईस्वी में और दूसरा खंड सन 1918 ईस्वी में प्रकाशित हुआ।

निष्कर्ष

स्वामी दयानंद ने हिंदी भाषा एवं अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषाओं ने राष्ट्रीय स्वाभिमान और स्वतंत्रता संग्राम के चैतन्य का शंखनाद घर घर तक पहुँचाया स्वामी दयानंद देश की सामाजिक आवश्यकताओं से अवगत थे और इन आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा योजना बनाना चाहते थे स्वामी जी ने वैदिक युग की शिक्षा के आधार पर आधुनिक शिक्षा एवं हिंदी भाषा का विकास किया।

संदर्भ

1. राजा राममोहन राय एवं महर्षि दयानंद सरस्वतीः व्यक्तित्व और कृतित्व, गीतांजलि प्रकाशन 2007
2. आधुनिक हिंदी साहित्य, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1954
3. दयानंद सरस्वती की आत्मकथा।
4. स्वामी दयानंद सरस्वती उनके जीवन और कार्य का अध्ययन।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 112-115
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता पर महर्षि दयानंद सरस्वती का प्रभाव

डॉ. जी. मोहन नायडू
हिंदी विभाग,
प्लॉट नं. 60, एल.एस. नगर, तिरुपति–517502
चित्तूर, आन्ध्र प्रदेश

संसार में लगभग तीन हजार भाषाएँ हैं। इनको लगभग बीस परिवारों में विभाजित किया गया है। इन समस्त परिवारों में से भारोपीय परिवार सबसे बडा है। भारोपीय परिवार की दो शाखाएँ हैं केन्तुम् और सतम्। भारतीय आर्यभाषाएँ सतम् शाखा के अंतर्गत आती हैं। भारतीय आर्यभाषाओं को तीन वर्गों में बॉटा गया है प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ जैसे– वैदिक संस्कृत और संस्कृत। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ–पाली, प्राकृत, अपभ्रंश। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ– हिंदी, गुजराती, बंगाली, मराठी, उडिया, असमी, सिन्धी,पंजाबी आदि। इन समस्त आर्यभाषाओं का विकास विभिन्न अपभ्रंशों (शौरसेनी, अर्द्धमागधी, मागधी, महाराष्ट्री, ब्राचड, पैशाची) से हुआ। [१]

भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी है। हिंदी साहित्य की विकास यात्रा में कई महापुरुषों का योगदान रहा है, ऐसे महापुरुषों में महर्षि दयानंद सरस्वती का नाम आदर के साथ लिया जाता है। उनके विचारों से तत्कालीन साहित्य बहुत प्रभावित हुआ। आधुनिक हिंदी साहित्यकारों में कोई ऐसा न हो जो उनके विचारों से प्रभावित न हो। उन्होंने अपने साहित्य में बुद्धिवाद का प्रतिपादन और सामन्तवादी विचारों का विरोध किया। हिंदी साहित्य के विकास पथ में महर्षि दयानंद के योगदान को स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने लिखा –"वास्तव में यदि हिंदी साहित्य के सारे ही क्रिया कलाप पर दृष्टि डाले तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक काल की सारी राष्ट्रीयता तथा सामाजिकता का मेरुदंड आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती तथा उनके द्वारा चलाये गये आंदोलन हैं। आधुनिक काल के जितने भी प्रमुख साहित्यकार हुए हैं वे सब आर्यसमाज से प्रभावित विचारों के ही पोषक थे।"[२] भारत के कई लेखकों के वैदिक साहित्य, व्याख्याओं और चिन्तन से आज हिंदी साहित्य समृद्ध है, उस पर महर्षि दयानंद सरस्वती के हिंदी वेद भाष्य का गहरा प्रभाव पडा। हिंदी के खडीबोली गद्य और पद्य साहित्य के मौलिक विचारों को ही महर्षि दयानंद ने प्रभावित किया जिसके परिणाम स्वरूप गद्य के विषय बदले और पद्य के स्वर श्रृंगार से राष्ट्रीयता एवं सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख हुए। महर्षि के विचारों ने न केवल तत्कालीन साहित्यकारों को ही नहीं, उन साहित्यकारों की अगली पीढियों को भी प्रभावित किया। महर्षि ने हिंदी का स्वरूप जनमानस के अनुरूप बनाया और भाषा को रुचिकर बनाने के लिए उसमें हास्यविनोद, लोकोक्तियॉ, मुहावरें, देशज शब्द आदि तत्वों का समावेश किया। उनकी हिंदी सरल, सहज और जीवन्त थी। उनके सामाजिक सरोकारों और राष्ट्रीय चिन्तन से हिंदी भाषा तथा हिंदी पत्रकारिता दोनों ही अछूते नहीं रह सके। उनके प्रभाव को स्पष्ट करते हुए रामधारी दिनकर ने कहा– "रीतिकाल के ठीक बाद वाले काल में जो सबसे बडी घटना घटी थी, वह स्वामी दयानंद का पवित्रतावादी प्रचार। इस पवित्रतावादी प्रचार से घबराकर द्विवेदी युगीन कविगण नारी के कामिनी रूप से ऑखे चुराने लगे। इस युग के कवियों को श्रृंगार की कविता लिखते समय यह प्रतीत होता था कि जैसे स्वामी दयानंद पास ही खडे सब कुछ देख रहे हैं।"[३]

महर्षि दयानंद सरस्वती ने अपने प्रवचनों और लेखन से हिंदी साहित्य को बहुत प्रभावित करके उसे शक्ति और सामर्थ्य प्रदान की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाटक 'अंधेर–नगरी' पर महर्षि दयानंद का स्पष्ट छाप दिखाई देता है। यह नाटक महर्षि दयानंद द्वारा रचित 'गर्व–गंड' राजा के द्रष्टान्त पर आधारित है। जिन हिंदी साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर महर्षि के विचारों का प्रभाव पडा उनमें से कुछ प्रमुख साहित्यकार निम्नांकित हैं–

१. भारतेंदु हरिश्चन्द्र पर स्वामीजी का प्रभाव :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक नाटककार, पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध है। उन्होंने अनेक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन और संपादन भी किया। उनके नाम पर हिंदी पत्रकारिता के एक काल खंड का नाम भारतेंदु युग रखा गया है। भारतेन्दु पर महर्षि दयानंद सरस्वती का प्रभाव पडा। भारतेन्दु के पत्रों में स्वमीजी के विचारों से संबंधित विषय प्रकाशित किये गये हैं। भवानीलाल भारतीय ने लिखा है– "स्वामी दयानंद ने जब १६२७ वि.में 'अद्वैतमत खंडन' शीर्षक पुस्तक नव्य वेदांत की आलोचना में लिखी तो भारतेन्दु ने अपने पत्र 'कविवचन सुधा' के दो अंकों (१६२७ वि. के ज्येष्ठ और आषाढ) में उसे प्रकाशित किया। स्वामीजी द्वारा हुगली में पं.ताराचरण तर्करत्न से किये गये मूर्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ को भारतेन्दु ने 'प्रतिमा पूजन विचार' शीर्षक से १८७३ई. में लाइट प्रेस बनारस से छपवाकर प्रकाशित किया था। भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' में 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' नामक शीर्षक का एक लेख लिखा जिसमें स्वामीजी के कतिपय धार्मिक सिद्धान्तों से अपनी असहमति रखते हुए भी उनके सामाजिक तथा देशभक्ति से युक्त विचारों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गयी थी। भारतेन्दु की अनेक रचनाओं में धार्मिक पाखंड, सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों के प्रति जो तीव्र आलोचना का स्वर मुखरित हुआ। उसे स्वामी दयानंद के विचारों का ही प्रभाव समझना चाहिए। 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु हिंदू समाज में व्याप्त जातिभेद, जन्मपत्र के आधार पर विवाह करना, बालविवाह, कुलीनों के बहु–विवाह, विधवा विवाह निषेध आदि कुप्रथाओं का खंडन करते हैं। उन्होंने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में सांप्रदायिक पाखंडों का पर्दाफाश किया है। यह तथ्य इस बात के प्रमाण है कि परम वैष्णव भारतेन्दु अपनी वैचारिक उदारता के लिए महर्षि दयानंद के ऋणी थे।"[४]

२. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी :

हिंदी साहित्य के इतिहासकार और कवि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कविताओं पर स्वामी दयानंद सरस्वती का स्पष्ट छाप दिखाई देता है। विदेशी वस्तुओं को त्यागकर स्वदेशी वस्तुओं को स्वीकार करने पर उन्होंने बल दिया। इसका एक उदाहरण अग्रांकित है–

स्वदेशी वस्तु को स्वीकार कीजै।
विनय इतना हमारा मान लीजै।।
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो।
न जाओ पास इससे दूर भागो।।[५]

३. राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त : राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओत–प्रोत अनेक कविताएँ कवि मैथिली शरण गुप्त द्वारा रचित हैं। इन कविताओं में स्त्री के महत्त्व और एकता की भावना को दर्शाया गया है। भारत भारती कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है–

पाती स्त्रियॉ आदर जहॉ रहती वहीं सब सिद्धियॉ।
तुम विचार क्रांति के उपासक, तुम नवीनता उन्नायक।।
विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आएगी।
अर्द्धांगनियों को भी दी न जब तक जाएगी।।
सब लोग हिलमिलकर चलो पारस्परिक ईर्ष्या तजो।
भारत दुर्दिन न देखता मचता न महाभारत जो।।[6]

महर्षि दयानंद सरस्वती शूद्रों और विधवाओं के बारे में क्या सोचते थे इसके संबंध में डॉ.लक्ष्मीनारायण दुबे ने कहा–"महर्षि विधवाओं और शूद्रों के मसीहा थे। ऋषि दयानंद प्रथम पुरुष थे जिन्होंने महिलाओं को वेदाधिकार दिलाया, धर्म का विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया। मैं उनके विचारों से पर्याप्त प्रभावित हूं।"[७]

४. रामधारी सिंह दिनकर : महर्षि दयानंद द्वारा प्रतिपादित वर्ण–व्यवस्था के बारे में रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी एक कविता में स्पष्ट किया है–

ऊंच नीच का भेद न माने वही श्रेष्ठ ज्ञानी है।
दया धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।।
क्षत्रिय नहीं भरी हो जिसमें निर्दयता की आग।
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप त्याग।।[८]

५. मुंशी प्रेमचंद :

उपन्यास के सम्राट और कहानीकार मुंशी प्रेमचंद हमीरपुर आर्यसमाज के सदस्य थे। प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों के कथानकों पर स्वामी दयानंद सरस्वती की विचारधारा का प्रभाव पडा। प्रेमचंद का समस्त कथा साहित्य स्वामी दयानंद द्वारा प्रतिपादित सामाजिक कुरीतियों पर आधारित था। उनके कथा साहित्य में विधवा विवाह, अनमेल विवाह, सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता आदि विषय पाये जाते हैं। प्रेमचंद ने अपने साहित्य की रचना के आरंभ से लेकर अंत तक आर्यसमाज से संबंधित पत्रों में नियमित रूप से लिखा। प्रेमचंद के दयानंद सरस्वती से प्रभावित होने का सबसे बडा प्रमाण है कि प्रेमचंद के द्वारा उर्दू में लिखी गयी कहानी 'आपकी तस्वीर' १९२९ में लाहौर से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्र 'प्रकाश' में छपी थी। इसका हिंदी में अनुवाद प्रसिद्ध इतिहासकार और लेखक श्री राजेन्द्र जिज्ञासु ने किया। इस कहानी में 'आपका चित्र' (हिंदी का शीर्षक) महर्षि दयानंद का चित्र है। वे अपने कमरे में स्वामी दयानंद का चित्र लटका रखता है। इसलिए वे अपने कमरे में उनका चित्र लटकाए हुए हैं, जो स्वामीजी के जीवन के उच्च एवं पवित्र आचरण सदा अपने ऑखों के सामने रहें।

इस कहानी के दूसरे भाग में यह बताया गया कि एक राजा अपने एक विश्वासपात्र सेवक को एक हत्या का काम सौंपता है। उस काम के लिए बडा इनाम देने का वचन भी देता है। युवक उस समय यह काम करने के लिए विवश होकर तैयार हो जाता है। लेकिन जब वह घर जाकर स्वामी दयानंद का चित्र देखता है, तो उसे उस काम में लगनेवाले पाप को जानकर पश्चाताप का भाव उसके मन में पैदा होता है। स्वामी दयानंद का चित्र उसे साहस दिलाता है और वह राजा के पास जाकर वह काम करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है। राजा उस पर कृद्ध होकर उस युवक को आदेश देता है कि तुम अगले दिन के सूरज निकलने से पहले ही अपना राज्य छोडकर चले जाओ। स्वामीजी का वह भक्त पाप करने के स्थान पर राज्य छोडकर वहॉ से निकल जाने को प्राथमिकता देता है। आर्यसमाज के प्रमुख विद्वान और इतिहासकार प्रो.राजेन्द्र जिज्ञासु के अनुसार प्रेमचंद को आर्यसमाज के दो महासम्मेलनों में आमंत्रित किया गया था। उनका लाहौर आर्य सम्मेलन में दिया गया भाषण एवं गुरुकुल कांगडी के वार्षिकोत्सव पर दिया गया भाषण ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में जातिवाद, मूर्तिपूजा, जन्मकुंडली, फलित ज्योतिष आदि का विरोध किया गया है। स्वामी दयानंद सरस्वती के देशप्रेम का प्रभाव प्रेमचंद के साहित्य पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जिसका चरमोत्कर्ष १९०६ ई. में प्रकाशित कहानी 'सोजे वतन' है। यह कहानी संसार का सबसे अनमोल रत्न है, जिसका अंतिम वाक्य है "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।"[९]

६. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के लेखक, पत्रकार के रूप में बहुत प्रसिद्ध है। उनके नाम पर ही हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में एक काल खंड का नाम द्विवेदी युग रखा गया है। उन्होंने सरस्वती नामक प्रसिद्ध पत्रिका का संपादन भी किया। द्विवेदी के एक लेख 'आर्यसमाज का कोप' का एक अंश इस प्रकार है "हमारे पास इससे भी बढकर कुतूहलजनक पत्र आये हैं। बनावटी या सच्चा नाम देकर बी.सिंह नाम के एक महाशय ने आगरा से एक पोस्टकार्ड हमें उर्दू में भेजा है। उसमें अनेक दुर्वचनों और अभिशापों के अनंतर इस बात पर दुःख प्रकट किया है कि राज्य अंग्रेजी है, अन्यथा हमारा सर धड से अलग कर दिया जाता। भाई सिंह ! दुःख मत करो आर्यसमाज की धर्मोन्नती होती हो तो– 'कर कुठार आगे यह शीशा।"[१०]

७.. पं.बालकृष्ण भट्ट : पं. बालकृष्ण भट्ट हिंदी के निबंधकार और पत्रकार के रूप में विख्यात है। उन्होंने 'हिंदी प्रदीप' पत्रिका का संचालन भी किया। उनके लेखों पर स्वामी दयानंद के राष्ट्रवादी और सामाजिक चिंतन का प्रभाव पडा। उन्होंने बडी कठिनाईयों का सामना करते हुए भी अपने पत्रकारिता के सिद्धान्तों को नहीं छोडा। पं.बालकृष्ण भट्ट स्वामीजी को बडा देशभक्त मानते थे। प्रदीप पत्रका के अक्तूबर १८८१ ई. के अंक में बालकघ्ष्ण ने लिखा है दृ "प्रत्येक मनुष्य का अपना अपना एक आदर्श होता है। जैसे पंडितों का आदर्श केवल दक्षिणा है। स्वामी दयानंद का आदर्श प्रतिमापूजन का जडमूल से उच्छेदन है। ——————— लोगों का आदर्श अपने सेवकों से उनके तन, मन, धन का अर्पण कराना है।" प्रदीप की यह व्यंग्योक्ति इतनी लोकप्रिय हुई कि अनेक पत्रों ने उसे उदधघ्त किया। ऐसे पत्रों में नसीम (आगरा २३ दिसंबर १८८१ई.), 'उचित वक्ता' (कलकत्ता), आर्यदर्पण (शाहजहॉपुर) ने बालकृष्ण भट्ट के इस कथन को यथावत छापा।"[११]

८. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : स्वामी दयानंद के बारे में निराला लिखते हैं कि "जो लोग कहते हैं कि वैदिक अथवा प्राचीन शिक्षा द्वारा मनुष्य उतना उन्नयन नहीं हो सकता जितना अंग्रेजी शिक्षा द्वारा होता है, महर्षि दयानंद इसके

प्रत्यक्ष खंडन है। महर्षि दयानंद से भी बढकर भी मनुष्य होता है इसका प्रमाण प्राप्त नहीं हो सकता है। आर्यसमाज की प्रतिष्ठा भारतीयों में एक नये जीवन की प्रतिष्ठा है। देश में महिलाओं, पतितों, जाति–पांति के भेदभाव मिटाने के के लिए महर्षि और आर्यसमाज से बढकर इस नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया।"[१२]

निष्कर्ष : निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु, द्विवेदी और छायावादी युग के कवियों और साहित्यकारों के विचारों में तार्किकता, नैतिकता, पवित्रता, पौराणिक कथाओं की तर्कसंगत व्याख्या, रूढियों पर कटाक्ष, अंधविश्वासों पर प्रहार आदि महर्षि दयानंद का ही प्रभाव था।

संदर्भ :

१. भाषा और भाषाविज्ञान, निर्मल पब्लिकेशन्स,दिल्ली–पृ.सं.७०,७१
२. दिवंगत हिंदी सेवी, संदर्भ ग्रन्थ ,खंड–१,क्षेमचन्द्र, पृ.सं.२४८
३. काव्य की भूमिका, रामधारी सिंह दिनकर, पृ.सं.२७
४. ऋषि दयानंद के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी, प्रो.भवानीलाल भारतीय, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, पृ.सं. ३०,३१,३२
५. द्विवेदी काव्यमाला,देवीदत्त शुक्ल,पृ.सं.३७०
६. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त,पृ.सं.१४२,१४३
७. हिंदी साहित्य में आर्यसमाज की अभिव्यक्ति, डॉ.लक्ष्मीनारायण दुबे, पृ.सं.१२
८. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, प्रथम सर्ग,पृ.सं.६
९. सोजे वतन, प्रेमचंद, अमर स्वामी प्रकाशन ,गजियाबाद,२००६,पृ.सं.३०
१०. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,कौशल पब्लिशिंग हाउस,फैजाबाद, पृ.सं.३६८
११. स्वामी दयानंद सरस्वती सम–सामयिक पत्रों में, डॉ.भवानीलाल भारतीय,पृ.सं.१०६,१०७
१२. हिंदी साहित्य में आर्यसमाज की अभिव्यक्ति, डॉ.लक्ष्मीनारायण दुबे,महर्षि दयानंद और युगांतर,लेख, निराला, पृ.सं.६

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 116-117
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय शिक्षा के विकास में स्वामी दयानंद सरस्वती का योगदान

डॉ. महक
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी
चौधरी बंसीलाल, विश्वविद्यालय, भिवानी, हरियाणा
फोन न. 9802323363

शिक्षा मनुष्य की नैसर्गिक चेष्टा रही हैं। मनुष्य जन्म से सीखना आरम्भ करता हैं तथा मष्त्यु पर्यन्त सीखता ही रहता हैं। शिक्षा मानव समाज की संचित सीख हैं। शिक्षा मनुष्य को एक अच्छा इंसान बनाती हैं तथा शिक्षा के भीतर ज्ञान, उचित आचरण, विद्या प्राप्ति आदि समाहित हैं। शिक्षा वास्तव में मनुष्य की अंतर्निहित क्षमता व उसके व्यक्तित्व को विकसित करने की प्रक्रिया हैं। यही उसे समाज में एक व्यस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती हैं और समाज का एक जिम्मेदार नागरिक भी बनाती हैं। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष' का अर्थ हैं सीखना और सिखाना। शिक्षा शब्द का अर्थ हुआ सीखने–सिखाने की क्रिया।

महात्मा गांधी के भाब्दों में – ''शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से हैं।'' (1)

स्वामी विवेकानंद के भाब्दों में – ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा हैं।''

इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक विकास करती हैं। भारत विश्व में शिक्षा के क्षेत्र में विश्व गुरु के नाम से संबोधित किया गया।

इस प्रकार शिक्षा की कोई एक निश्चित परिभाषा देना सरल नहीं हैं। इसकी विभिन्न परिभाषाएं विभिन्न विद्वानों ने अपनी बुद्धिमत्ता के अनुसार दी हैं।

वैसे तो शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न मनीषियों ने समय–समय पर योगदान दिया। स्वामी विवेकानंद, राजाराम मोहन राय, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती, रविंद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी आदि अनेक विचारकों ने अपने विचारों के द्वारा ज्ञान रूपी प्रकाश की आभा फैलाई तथा इस संसार को आलोकित किया व आंनदित किया। इन्ही महापुरूषों में या विचारकों में स्वामी दयानंद सरस्वती ने शिक्षा के क्षेत्र मे जो अतुलनीय योगदान दिया वह सराहनीय हैं। ''भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था शताब्दियों से चली आ रही थी। इस जाति–प्रथा ने यदि एक ओर हिन्दु धर्म की रक्षा की तो दूसरी ओर हिंदुओं के राजनीतिक व सामाजिक पतन के लिए भी उत्तरदायी रही। प्राचीन वर्ण–व्यवस्था जन्म पर आधारित थी, जिसकी स्वामी दयानंद ने कटु आलोचना की।''(2)

स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान दिलाने में भी आर्य समाज ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके समय में स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। छोटी उम्र में ही लड़की का विवाह करने के फलस्वरूप बाल–विधवा, बहु–विवाह प्रथा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। इसलिए आर्य समाज ने बाल–विवाह, बहु विवाह, पर्दा–प्रथा का घोर विरोध किया। इसी के साथ विधवा–विवाह एवं स्त्री शिक्षा पर भी बल दिया। उन्होंने 16 वर्ष से कम आयु की लड़कियों के विवाह बंद की बात कहीं। आर्य समाज ने सती–प्रथा को पाप तथा क्रूरता बताया व स्त्रियों की समानता पर बल दिया।

शिक्षा केवल औपचारिक रूप से ही नहीं होती। वह अनौपचारिक रूप से भी होती है स्वामी दयानंद सरस्वती ने समाज को जागष्त करने के लिए जिस शंखनाद का शुभारंभ किया, वह अद्वितीय हैं। उन्होंने समाज को मूर्तिपूजा, कर्मकांड, स्वर्ग–नरक, बलि प्रथा के गर्त से बाहर निकालकर ज्ञान रूपी प्रकाश द्वारा सबके भीतर विवेक को जागष्त करने का काम भी किया। उनका मानना था कि ईश्वर निराकार हैं, अतः मूर्ति–पूजा निरर्थक हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती

ने व उनके अनुयायिओं द्वारा स्थापित आर्य समाज ने साहित्यिक व शैक्षणिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। स्वामी दयानंद ने अपने ग्रंथ हिंदी में लिखकर राष्ट्र–भाषा के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

वास्तव में ''आर्य का अर्थ होता हैं आदर्श, अच्छे ह्रदय वाला, आस्तिक, अच्छे गुणों वाला। इस तरह आर्य समाज पूरे समाज के, पूरे विश्व के लोगों का अच्छे ह्रदय वाला, चरित्रवान, गुणवान बनाना चाहते हैं।''[3] इस तरह का आर्य समाज का संकल्प है। इस आर्य समाज से जुड़े लोगों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ–साथ संस्कृति, भाषा, धर्म, शिक्षा में भी सक्रिय भागीदारी की। स्वामी दयानंद ने वेदों की व्याख्या संस्कृत के साथ–साथ हिंदी में भी की। 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा क्रांतिकारी ग्रंथ हिंदी में लिखकर हिंदी को एक प्रतिष्ठा प्रदान की। इस प्रकार आर्य समाज ने हिंदी के सम्बर्द्धन में भी अग्रगामी भूमिका निभाई।

''सैकड़ों गुरूकुलो, स्कूलों और कॉलेजों में हिंदी को प्राथमिकता दी गई और इस कार्य के लिए नवीन पाठ्यक्रम की भी रचना की गई।''[4] आर्य समाज ने न केवल पंजाब में हिंदी का प्रचार किया। अपितु सुदूर दक्षिण भारत में, असम, बर्मा आदि तक हिंदी को पहुँचाया। न्यायालय में दुष्कर भाषा के स्थान पर सरल हिंदी भाषा के प्रयोग के लिए स्वामी श्रद्धानंद्ध ने प्रयास किए।

आर्य समाज की हिंदी पत्रकारिता ने देश को धर्मचिंतन, स्वदेशी व राष्ट्रीय संस्कृति का पाठ पढ़ाया। वैदिक गर्जना, आर्य संकल्प, आर्य संदेश, आर्य जगत, आर्य मर्यादा, आर्य मातष्ण्ड कितनी ही मासिक, पाक्षिक व वार्षिक पत्रिकाएं आज भी प्रकाशित हो रही है। जिससे हिंदी पत्रकारिता को नव्य आलोक मिला है। दयानंद जी विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हुए लिखते हैं। ''छात्र की योग्यता ज्ञान अर्जित करने के प्रति उसके प्रेम, निर्देश पाने की उसकी इच्छा ज्ञानी और अच्छे व्यक्तियों के प्रति सम्मान गुरू की सेवा और उसके आदेशो का पालन करने में दिखती है। एक बात और महर्षि दयानंद की दृष्टि में माता–पिता तथा आचार्य तीनों ही शिक्षक होते हैं। कहने का आशय है कि उक्त तीनों शिक्षित होने पर ही वालक शिक्षित होती हैं। केवल आचार्य के ज्ञान से विद्यार्थी विद्वान नहीं बनता। बल्कि शिक्षा के भव्य भवन की आधारशिला तो तब होती हैं, जब वह माता के गर्भ में होता हैं। इस प्रकार स्वामी दयानंद ने पूरे संसार को अमूल्य धरोहर के रूप में अपने शैक्षिक विचार 'सत्यार्थ प्रकाश' के रूप में प्रदान किए ''वास्तव में 19वी सदी में हिंदू जनता जिन पौराणिक रूढ़ियों, जर्जर मान्यताओं एवं मूर्ति–पूजा में फंसी हुई थी। उन रूढ़ियों से साधारण जनता को निकालकर स्वामी दयानंद ने वैदिक धर्म की स्थापना की। वस्तुतः उनका चिंतन और दर्शन भारतीय जीवन के लिए संजीवनी सिद्ध हुई उन्होंने संपूर्ण उत्तरी भारत में घूम–घूमकर वैदिक धर्म संस्कृत और संस्कृति का प्रचार किया।''[5]

इस तरह समाज सुधारक का जो कार्य कबीर, सूर, तुलसीदास न कर पाए वह कार्य स्वामी दयानंद ने कर दिखाया। सच में महर्षि दयानंद ने इतने व्यापक क्षेत्रों में कार्य किया है जब हम किसी क्षेत्र विशेषज्ञ का मूल्यांकन करते हैं, तो अन्य कई क्षेत्र हमारी आंखों से ओझल ही रह जाते है। राष्ट्र की स्वतत्रंता के लिए उनके महान् योगदान पर अभी हमारी दृष्टि नही पड़ी हैं। संसार उनको एक धार्मिक महापुरुष के रूप में भी जानता है। सच में स्वामी जी एक स्वतंत्र विचारक थे, किसी पंरपरा और पूर्वाग्रह से बंधे रहना उन्हें स्वीकार न था। वेदों के प्रति उनकी निष्ठा और भक्ति इसी कारण थी, कि वेद मानव की स्वतंत्र–चिंतन के द्वारो को खोलकर उसे एक अंनत आकाश प्रदान करते हैं अंत में मैं स्वामी दयानंद के बारे में इतना ही कहना चाहूंगी ''भू पर तो वे भी जाते हैं जो जीता या हारा करते है। मिट्टी में छिपे अनल को अपनी और पुकारा करते है। जीते लपटों के बीच मचा भीषण धरती पर कोलाहल जाते–जाते दे जाते हैं, भावी युग को निज तेज अनल।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वामी दयानंद सरस्वती जीवन और दर्शन , डॉ लाल बहादुर सिंह चौहान, सावित्री प्रकाशन, संस्करण–2002
2. स्वामी दयानंद सरस्वती, मधुर अथैया, प्रभात प्रकाशन प्रथम संस्करण–2019
3. आर्य समाज एण्ड इण्डियन नैशनलिज्म, डी.जी. पाण्डे, न्यु दिल्ली
4. कन्ट्रीब्यूशन ऑफ आर्य समाज इन दा मेंकिग ऑफ मार्डन इंडिया, पारिक राधेश्याम, दिल्ली
5. दी आर्य समाज एंड इंडियन नेशनलिज्म, धनपति पांडेय, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 118-121

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी भाषा का स्वरूप

डॉ. मधु बाला सांखला
सह आचार्य – हिन्दी विभाग
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

भाषा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की अस्मिता का प्रतीक है। भाषा ही राष्ट्र संबंधी वैशिष्ट्य को स्थायित्व प्रदान करती है। भारत के संदर्भ में इस दायित्व का निर्वाह हिन्दी कर रही है। इसने देश की अस्मिता की प्रतीक से ऊपर उठकर विश्वभाषा के रूप में अपनी पहचान बनाई है। हिन्दी विश्वभाषा की क्षमताओं से सम्पन्न भाषा है। हालांकि वैश्विक फलक पर अंग्रेजी, फ्रांसीसी और स्पेनिश आदि भी विश्वभाषा के रूप में व्यवहृत होती नजर आती है, पर विश्वभाषा बनने की इनकी प्रक्रिया हिन्दी से भिन्न है। इन भाषाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के साम्राज्यवाद के आधार पर अपना प्रचार–प्रसार कर विश्वभाषा के रूप में अपनी पहचान बनाई। इससे पहले अठारहवीं सदी में ऑस्ट्रिया और हंगरी का वर्चस्व रेखांकित रहा। बीसवीं सदी में अमेरिका और सोवियत संघ का वर्चस्व रेखांकित किया जा सकता है। पिछली शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत गुलाम रहा और इसने भाषायी दबाव को झेला। लेकिन इस दौरान हिन्दी की 'अस्मिता' दबावों में भी प्रखर रही। हिन्दी के प्रति श्रमजीवियों की आत्मीयता ने इसे वैश्विक पहचान दिलाने में एक आधार प्रदान किया है।

किसी भी भाषा के वैश्विक होने के प्रमुख आधार हैं – प्रयोक्ता वर्ग की संख्या और भाषा की अंतःशक्ति तथा साहित्यिक कार्य। हिन्दी प्रयोक्ताओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। चीनी के बाद यह सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व के करोड़ों लोग हिन्दी को स्वेच्छा से अपनाए हुए हैं। मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, गुयाना, केन्या, नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैण्ड, इन्डोनेशिया, चेकोस्लोवाकिया, सिंगापुर आदि देशों में हिन्दी काफी लोकप्रिय ही नहीं, बोली भी जाती है। इसके अलावा नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, म्यांमार, बांग्लादेश, मालदीव और श्रीलंका जैसे भारत के पडोसी देशों में हिन्दी बोलने, समझने वाले भारतीयों की संख्या बहुत है। वहीं, दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैण्ड, चीन, मंगोलिया, कोरिया, जापान आदि देशों में भी हिन्दी का प्रचलन है। इनके अलावा अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड, कनाड़ा, जर्मनी आदि ऐसे देश हैं, जहाँ अनेक भारतीय आजीविका और व्यापार की दृष्टि से बस गए और हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिका में अंग्रेजी के अलावा हिन्दी ही दूसरी सबसे लोकप्रिय भाषा का स्थान प्राप्त किए हुए है। इन देशों के अलावा अरब और अन्य इस्लामी देशों में भी हिन्दी भाषा बोलने और समझने वाले लोगों की संख्या काफी है।

वर्तमान समय में वैश्वीकरण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है, उसके केन्द्र में बाजारवाद होने के कारण सारा विश्व व्यापक बाजार में परिवर्तित हो गया है। प्रायः वैश्वीकरण का अर्थ और अभिप्राय 'वसुधैव कुटुम्बकम' से जोड़ लिया जाता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' भारतीय संस्कृतिक का एक उदात्त दर्शन है। यह सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में रहने और समझने की प्रेरणा देता है। जिसमें 'सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय' की भावना निहित होती है। जबकि वैश्विकरण भूमंडलीकरण है, जिसको अंग्रेजी में 'ग्लोबलाइजेशन' के नाम से आजकल जाना जाता है।[1]

भूमण्डलीकरण के इस बाजारवाद के दौर में हिन्दी का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। अपने उत्पादों के विज्ञापन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हिन्दी का बड़े पैमाने पर उपयोग कर रही है। यह बाजार की सबसे शक्तिशाली भाषा के रूप में सामने आ रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में चार भाषाओं – अंग्रेजी, स्पेनिश, चीनी और हिन्दी का भविष्य

ही वैश्विक बाजार में उज्ज्वल है। बाजार वर्ग की मांग है कि उपभोक्ता वर्ग के साथ संपर्क करने के लिए उनकी भाषा में बेहतर संप्रेषण जरूरी है। इसलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का झुकाव हिन्दी की और बढ़ा है। वे आज अपने वैश्विक उत्पादों के विज्ञापन हिन्दी में देती हैं। आज अमेरिका, कोरिया, जापान और रूस ही नहीं, अन्य देश भी हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

हिन्दी के वैश्विक होने का दूसरा आधार इसकी अंतःशक्ति और साहित्यिक कार्य हैं। भारत की सभ्यता, संस्कृति, धर्म और दर्शन के रूप में भारतीय सांस्कृतिक गरिमा ने सदैव विश्व को आकर्षित किया है। विभिन्न आक्रमणों ओर विदेशी शासन के साथ उनकी भाषाओं के शब्द हिन्दी भाषा में घुलते–मिलते चले गए और इसी प्रकार से कई अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का भी प्रसार उनकी भाषाओं में होता रहा।

''भाषा की शक्ति कठिन नहीं, आसान शब्दों के प्रयोग से निखरती है। भाषा का सौन्दर्य तब बढ़ता है, जब लेखक उन सभी शब्दों को सहानुभूति से देखता है जो जनता की ज़बान पर चढ़े हुए हैं। कोई भी शब्द केवल इसीलिए ग्राह्य नहीं होता कि वह संस्कृत भण्डार का है, न शब्दों का अनादर केवल इसीलिए उचित है कि वे अरबी या फारसी भंडार से आए हैं। जो भी शब्द प्रचलित भाषा में चले आ रहे हैं, जो भी शब्द सुगम, सुंदर और अर्थपूर्ण हैं, साहित्यिक भाषा भी उन्हीं शब्दों को लेकर काम करती है, यह विचार आज भी समीचीन समझा जाता है।''[2]

'वैश्वीकरण के आगमन' के बाद से सूचना क्रांति के इस आक्रमण में हिन्दी भाषा और साहित्य के सामने जहाँ चुनौतियां उत्पन्न हुई है, वहीं हिन्दी के विकास हेतु उनके सुअवसर भी उपलब्ध हो रहे हैं। इस युग में औद्योगिक उत्पाद, उपभोक्ता, बाजार और तकनीक का सर्वथा नवीन संबंध बन रहा है। इसमें देशी या राष्ट्रीय कुछ नहीं है, सब कुछ बहुराष्ट्रीय है, परन्तु इस बहुराष्ट्रीय की भाषा वही है, जो हमारी–आपकी भाषा है। भारत के परिप्रेक्ष्य में यह भाषा हिन्दी है। जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वतः ही महत्त्वपूर्ण बन जाती है। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अन्तर्राष्ट्रीय हैसियत हिन्दी के लिए वरदान सदृश है। यह सच है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिन्दी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिन्दी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में हैं।''[3]

आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व में हो रहे तीव्र विकास के कारण नित नई संकल्पनाएं सामने आ रही है, नए–नए शब्द गढ़े जा रहे हैं, जिनके आधार पर हिन्दी अपने लचीलेपन के कारण नवीन शब्द भंडार विकसित कर रही है। शब्दों को आत्मसात करने की लचीली प्रवृत्ति के साथ–साथ उपसर्ग–प्रत्यय और संधि समास आदि की सहायता से नित नये शब्द गढ़ने में सक्षम भाषा के रूप में हिन्दी ने अपने शब्द भंडार में अतुलनीय वृद्धि की है। साहित्य सृजन की दृष्टि से भी देखें तो हिन्दी में सुदीर्घ साहित्य लेखन परम्परा रही है। हिन्दी ने विश्व को उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाएं दी हैं। इसी के चलते हिन्दी साहित्य को विश्व के श्रेष्ठतम् साहित्य के रूप में देखा जाता है। विश्व के अनेक देशों में भारतीय मूल के हिन्दी–प्रेमी साहित्यकार भी हिन्दी में साहित्य सृजन कर हिन्दी साहित्य भंडार को समृद्ध कर रहे हैं। हिन्दी को वैश्विक पटल पर पदस्थापित करने में 'गिरमिटिया' बनकर यूरोपीय उपनिवेशों में बसे भारतीयों की भी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वहीं अनेक लोग हिन्दी में साहित्य सृजन कर हिन्दी के विकास में अपना अतुलनीय योगदान दे रहे हैं। हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में भारतवंशियों और अप्रवासी भारतीयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

कोई भी भाषा विदेशी धरा तक अकेले यात्रा नहीं करती। उसके साथ उस देश की सभ्यता, संस्कृति, लोक विश्वास भी तरंगित होते हैं। हिन्दी के साथ भी ऐसा ही हुआ। अपनी वैश्विक यात्रा पर हमारी सभ्यता और संस्कृति ने भी अपनी पहचान विश्व पटल पर बनाई हैं।

यह सत्य है कि हिन्दी में अंग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान–विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्च स्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित और सकारात्मक प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा हिन्दी माध्यम में एम.बी.ए. का पाठ्यक्रम आरम्भ किया गया।[4]

इसी तरह 'इकोनोमिक टाइम्स' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे लोकप्रिय अखबार हिन्दी में प्रकाशित होकर उसमें निहित सम्भावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह देखने में आया है कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरम्भ हुए थे, वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णतः हिन्दी चैनल में रूपान्तरित हो गए। साथ ही 'ई. एस.पी.एन' तथा 'स्टार स्पोर्टस' जैसे खेल चैनल भी हिन्दी में कमेंट्री देने लगे हैं। हिन्दी को वैश्विक संदर्भ देने में

उपग्रह–चैनलों, विज्ञापन एजेन्सियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। हिन्दी जनसंचार माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

आज विश्व के सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है। 5 विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिन्दी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है, हिन्दी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे आज ई–मेल, ई–कॉमर्स, ई–बुक, इन्टरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिन्दी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध माईक्रोसॉफ्ट, गूगल, सन, याहू, आई.बी.एम. तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कम्पनियां अत्यन्त व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिन्दी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख–दुःख, आशा–आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिन्दी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिन्दी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन को संस्पर्श कर रहे हैं। हिन्दी के शब्दकोश तथा विश्वकोष निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।[6]

आज जब 21वीं सदी में वैश्विकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएं आदान–प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिन्दी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। उसके पास पहले से ही बहु–सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है। जिससे वह अपेक्षाकृत ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है।[7]

हिन्दी सिनेमा ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अपनी महती भूमिका निभाई है। हिन्दी सिनेमा ने भी आज अपनी वैश्विक छवि बनाई है। उसका योगदान सर्वविदित है। इसने मनोरंजन के माध्यम से जातीय एकता, प्रांतीय एकता, धार्मिक–सांस्कृतिक सद्भावना, व्यावहारिक शिक्षा, जनचेतना, जीवन स्तर के उत्थान आदि क्षेत्रों में जो कार्य किया है, वह आज तक कोई नेता, आंदोलन और सरकारें भी नहीं कर सकी हैं।[8]

आज एक–एक हिन्दी फिल्म करोड़ों का व्यापार कर रही है। वहीं दूसरी ओर सिनेमा के माध्यम से हिन्दी भी समृद्ध हो रही है। आज 'बालीवुड' नाम से मशहूर हिन्दी सिनेमा देश की वैश्विक पहचान बन चुका है। यह हिन्दी सिनेमा ही है, जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी को न सिर्फ जीवित रखा है अपितु सुदूर देशों तक इसका प्रचार–प्रसार किया है। भाषाई सिनेमा में हिन्दी सिनेमा ही ऐसा है जिसने सभी भाषाई बंदिशों को तोड़ा और हर दिल अजीज बनकर लोगों के मन–मस्तिष्क पर छा जाने में सफल रहा है।[9]

आज हिन्दी साहित्य की विधि–विधाओं में जितने रचनाकार सृजन कर रहे हैं, उतने बहुत सारी भाषाओं के बोलने वाले भी नहीं है। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही दो सौ से अधिक रचनाकार सक्रिय हैं, जिनकी कई पुस्तकें छप चुकी है। यदि अमेरिका से 'विश्वा', हिन्दी जगत तथा श्रेष्ठतम वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' हिन्दी की दीपशिखा को जलाए हुए हैं तो मॉरीशस से विश्व हिन्दी समाचार, सौरभ, वसंत जैसी पत्रिकाएँ हिन्दी के सार्वभौम विस्तार को प्रमाणिकता प्रदान कर रही हैं, संयुक्त अरब अमीरात से वेब पर प्रकाशित होने वाली हिन्दी पत्रिकाएं 'अभिव्यक्ति' और अनुभूति पिछले ग्यारह से भी अधिक वर्षों से लोकमानस को तृप्त कर रही हैं और दिन पर दिन इनके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।[10]

आज हिन्दी भाषा ने सम्पूर्ण विश्व में अपनी पहचान बनाई है। विदेशी धरा पर अब हिन्दी अध्ययन ओर अध्यापन हो रहा है। यह सब इस बात का द्योतक है कि हिन्दी का आज का स्वरूप वैश्विक सन्दर्भों से जुड़ा है। आज समय की माँग है कि हम सब मिलकर हिन्दी के विकास की यात्रा में शामिल हों ताकि तमाम निष्कर्षों एवं प्रतिमानों पर कसे जाने के लिए हिन्दी को सही मायने में विश्वभाषा की गरिमा प्रदान कर सकें।[11]

हिन्दी को आज हर जगह पहचान मिली है और इससे हम सभी की पहचान तथा हमारा अस्तित्व भी जुड़ा है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिन्दी को उचित सम्मान की दृष्टि से देखा जाए क्योंकि यह न सिर्फ भारत, अपितु विश्व में उभरती एक नई पहचान है।

संदर्भ

1. विशाल शर्मा – भाषा अनुसंधान की सामाजिक उपादेयता, समवेत, जनवरी 2015, पृ. 117
2. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2013, पृ. 325
3. जे. आत्माराम – भाषा का नियोजन और हिन्दी, मधुमती, फरवरी–मार्च, 2016, पृ. 325
4. भोपाल सिंह (सम्पादक) राजाभाषा भारती (त्रैमासिक, अप्रेल, जून 2013), पृ. 29
5. जी. गोपीनाथन–विश्वभाषा हिन्दी की अस्मिताः स्वप्न और यथार्थ, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, 2008, पृ. 45
6. महिपाल सिंह – देवेन्द्र मिश्र (सम्पादक) – विश्व बाजार में हिन्दी, ब्रह्म प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 121
7. रणधीर सिंह – वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा का भविष्य, शोध दिशा, पृ. 83
8. अनिल राही – हिन्दी फिल्म इण्डस्ट्री – दैनिक भास्कर (नवरंग), सितम्बर 2012
9. जयसिंह – सिनेमा और हिन्दी, आजकल, अक्टूबर, 2012
10. डॉ. मणिक मृगेश – भूमण्डलीकरण, निजीकरण व हिन्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 17
11. अच्युतानन्द मिश्र – वैश्विकरण, मीडिया और हिन्दी, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा 2007, पृ. 62

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 122-125
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास

डॉ. विजिता विजयन
सहायक प्राध्यापक, पी. जी. विभाग
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,मद्रास एर्णाकुलम केंद्र,केरल–682016
svijithavijayan@gmail.com
mobile-9400764391

भारत में भाषाओं की विविधता देखकर कुछ यूरोपीय विद्वानों ने इस देश को भाषाओं का अजायबघर कहा था। हिन्दी क्षेत्र की भाषाओं बोलियों की संख्या देखकर किसी को लग सकता है कि यह तो महा–अजायबघर है। हिन्दी क्षेत्र में कुल दस राज्य है –बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, छत्तीसगढ़ ,हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखड, और झारखंड। देश के विभिन्न राज्यों में हिन्दी के कई रूप है। इसके साथ ही हिन्दी के बोलचाल और व्यवहार के अनेक रूप है। हिन्दी भारत के शहरों , मुंबई ,कोलकत्ता, हैदराबाद और चेन्नई में अलग –अलग ढंग से बोली जाती रही है। हिन्दी के दक्खिनी हिन्दी, मुंबईया हिन्दी ,कलकतिया हिन्दी ,बाजार की हिन्दी जैसे रूप बताए गए है। यह मॉरीशस, फिजी ,सूरीनाम , ट्रिनिडाड ,दक्षिण अफ्रीका ,नेपाल आदि में भी विशिष्ट रूप में बोली जाती है। इस भाषा का इस्तेमाल करनेवालों की संख्या भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार लगभग 43 करोड़ है जो 2016 तक 50 करोड़ से ऊपर हो चुकी होगी। यह एक रोचक किन्तु वास्तविक तथ्य है कि हिन्दी पद का प्रयोग एक निश्चित अर्थ में नहीं होता।

हिन्दी भारत की अन्य भाषाओं के साथ तुलना करते समय भिन्न है। भाषा की भिन्नता के बारे में डॉ. बच्चन सिंह का मत है कि " हिन्दी अन्य भाषाओं में दो अर्थों में भिन्न है –क्षेत्रीयता के अर्थ में और भाषा समुच्चय के अर्थ में। अन्य भाषाएं एक क्षेत्रीय हैं जबकि हिन्दी बहु क्षेत्रीय है। यह हिमाचल प्रदेश, हरियाणा , राजस्थान , उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार तक फैली हुई है। अन्य क्षेत्रों में एक ही भाषा प्रमुख है तो हिन्दी प्रदेश अनेक भाषाओं और बोलियों –राजस्थानी , ब्रजी ,अवधी , मैथिली , भोजपुरी , बुंदेलखंडी आदि का समुच्चय है। पं. अ .वारान्निकोव इसे भाषा–व्यवस्था कहते हैं। विभिन्न प्रकार के सामाजिक सांस्कृतिक संपर्क के लिए जो लोग एक व्यवस्था का उपयोग करते हैं वे हिन्दी या हिन्दुस्तानी है।"[१]

हिन्दी शब्द का संबंध संस्कृत शब्द 'सिंधु'से माना जाता है। 'सिंधु सिंध नदी को कहते थे और उस आधार पर उसके आसपास की भूमि को सिंधु कहने लगे। यह 'सिंधु' शब्द ईरानी में जा कर 'हिन्दू' और फिर 'हिन्द' हो गया और इसका अर्थ हुआ 'सिंध प्रदेश'। बाद में ईरानी धीरे –धीरे भारत के अधिक भागों परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा हिन्द शब्द धीरे –धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से 'हिंदीक' बना, जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। यूनानी शब्द 'इंदिका' या अंग्रेजी शब्द 'इंडिया' आदि इस हिंदीक के ही विकसित रूप हैं। हिन्दी भी 'हिंदीक' का परिवर्तित रूप है और इसका मूल अर्थ है 'हिन्द का'। इस प्रकार यह विशेषण है , किंतु भाषा के अर्थ में संज्ञा हो गया है।

रामविलास शर्मा ने इस पर आपत्ति की है–"हिन्दी शब्द कैसे बना –इस के बारे में प्रचलित मान्यता यह है कि ईरान के लोग सिंधु (या सिंध) को हिन्द कहते थे और वहां के निवासियों को हिन्दू ,हिंदुई या हिन्दी कहने लगे। 'स' का उच्चारण करने में उन्हें कुछ कठिनाई होती होगी ,इसलिए उन्होंने 'स' की जगह 'ह' कहना शुरू किया। लेकिन फारसी में साल, सादिगी, साज, सागर आदि पच्चीसों शब्द हैं जिनमें ईरानियों को 'स' का उच्चारण करने में दिक्कत

नहीं होती। यही नहीं उनके क्रियात्मक शब्द भी ऐसे बहुत से हैं जो 'स' से शुरू होते हैं ,जैसे साजीदन (बनाना), सखन (तौलना) इत्यादि। इसमें ईरानियों ने 'स' के स्थान पर 'ह' का उच्चरण करना आवश्यक नहीं समझा। इसके सिवा 'श' से आरंभ होनेवाले या स–श युक्त सैकड़ों ऐसे शब्द फ़ारसी में हैं जिनके समानांतर भारतीय भाषाओं के शब्दों ने स–श का स्थान 'ह' को दे दिया है। इससे सिंध का हिन्द ईरान में बना या भारत में– इस समस्या पर प्रकाश पड़ता है।"[२]

हिन्दी शब्द का अर्थ और इतिहास विषय पर हर नजर डालेंगे तो इतिहास दृष्टि से भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग तेरहवीं शताब्दी के पूर्व नहीं मिलता। हिन्दी शब्द के रूप में प्रयोग हमें कई तरह से देखने को मिलते ईरान के सुप्रसिद्ध बादशाह नौशेरवां (531–579) ने बजारोया नामक विद्वान को पंचतंत्र का अनुवाद करने के लिए भारत भेज था। इस अनुवाद की भूमिका में पंचतंत्र की भाषा को "जबाने हिंद" कहा गया है। यहां पर जबाने हिन्द का अर्थ संस्कृत है।

तेरहवीं –चौदहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध फारसी कवि अमीर खुसरो ने (1253–1325) उत्तर की देशी भाषाओं के लिए हिन्दी हिंदवी शब्द का अनेक बार प्रयुक्त किया हैं। 'तुर्क हिन्दुस्तानीयम मन हिंदवी गोयम जवाब'। यानी मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूं और हिंदवी में जवाब देता हूं। यहां पर हिंदवी दिल्ली की आसपास की खड़ीबोली है। बाद में इसी को हिन्दी कहा जाने लगा। उस समय तक किसी विशिष्ट भाषा के लिए हिन्दी या हिंदवी शब्द का प्रचलन नहीं हुआ था। दक्खिनी हिन्दी के कुछ कवियों ने अपनी काव्य भाषा को 'हिन्दी' कहा। इस प्रकार दक्खिनी कवियों ने खड़ीबोली पर आधारित अपनी काव्य भाषा को हिन्दी कहकर पुकारा और हिन्दी –हिंदवी संज्ञा सुपरिचित बनाया। इसमें इसे स्पष्ट है कि हिंदुई ,हिंदवी हिन्दी शब्द उत्तर भारत की विभिन्न भाषाओं और बोलियों के लिए भिन्न– भिन्न समय में हुए कभी ब्रजी के लिए कभी अवधी के लिए कभी बुन्देलखंडी के लिए कभी लाहौरी और कभी देहलवी के लिए।

मालिक मुहम्मद जायसी अपने काव्यग्रंथ पद्मावत (1527–40) में अपनी भाषा को हिंदवी कहा है। उसने पद्मावत के उपसंहार में लिखा है–

तुर्की , अरबी, हिंदुई, भाषा जेते आंहि
जेहि मंह मारग प्रेम पर सबै सराहैं ताहि।[३]

यहां पर हिंदुई अवधी है। जायसी इसी को भाषा भी कहते हैं–

"आदि अंत जस गाथा अहै ,
लिखि भाषा चौपाई कहै।"[४]

हिन्दी के ठीक पहले की भाषा अपभ्रंश है। वस्तुतः भाषाओं का विकासक्रम इस प्रकार समझा जा सकता है–

वैदिक संस्कृत झलौकिक संस्कृत झपालि झप्राकृत झअपभ्रंश झहिन्दी

अपभ्रंश भाषा और साहित्य का आरंभ कब हुआ इसका निर्णय करना कठिन है। हिन्दी के अनेक विद्वान 'अपभ्रंश' और 'हिन्दी' के संबंध निर्धारण में 'पुरानी हिन्दी', 'प्रारंभिक हिन्दी' आदि अर्थों में प्रयोग करते हैं। आठवीं शताब्दी उससे पहले जिस साहित्यिक भाषा को संस्कृत के आचार्य 'अपभ्रंश' कहते थे। आठवीं शताब्दी और उससे पहले जिस साहित्यिक भाषा को संस्कृत के आचार्य 'अपभ्रंश' कहते थे। वह अपने मूलरूप में गांवों में सामान्य भाषा के रूप में बोली जाती थी। उसका एक नाम 'देशीभाषा' तो था ही। पं.चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक की अपभ्रंश भाषा को 'अपभ्रंश' और उसके बाद की अपभ्रंश को 'पुरानी हिन्दी' कहा है। गुलेरीजी ने पहली बार यह घोषित किया कि अपभ्रंश 'पुरानी हिन्दी' है। राहुल सांकृत्यायन अपभ्रंश मात्र को हिन्दी से अभिन्न मानते है। 'अपभ्रंश' और 'हिन्दी' साहित्य के इस विकास से यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि 'अपभ्रंश' का ही विकास 'हिन्दी' के रूप में हो गया। अवधी, ब्रजभाषा,मैथिली, राजस्थानी और दक्खिनी हिन्दी का प्रारंभिक साहित्य इसका प्रमाण है। इसी को हम हिन्दी साहित्य की संज्ञा देते हैं। अपभ्रंश साहित्य और हिन्दी उत्तरी भारत की लोक भाषाओं के साहित्यिक विकास के दो चरण हैं,फलतः इनमें समानताएं तो हैं पर इसके आधार पर भाषा की दृष्टि से 'हिन्दी' को अपभ्रंश का विकास मानना तर्क संगत नहीं लगता।

हिन्दी एक बड़े भूखंड के लोगों की राष्ट्रीय भाषा है। अवधी ,ब्रज ,भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी ,बुंदेली का हिन्दी से क्या संबंध है , उर्दू और हिन्दी का क्या संबंध है, मैथिली और राजस्थानी का हिन्दी से क्या संबंध है, हिन्दी का गुजराती,पंजाबी, मराठी, बांग्ला से क्या संबंध है अथवा हिन्दी क्षेत्र की जनजातीय भाषाओं के क्या संबंध है–यह देखे बिना तय करना असंभव है कि हिन्दी एक भाषा है या अनेक भाषाएं। हमें इन भाषाओं के बीच जातीय और अंतरावलंबन को समझना होगा। इसलिए सिर्फ दूरियां दिखाकर सही निष्कर्ष तक पहुँचना असंभव है। यह एक तथ्य है कि कोई भी राजस्थानी ,भोजपुरिया या मैथिली भाषी कोलकाता,मुंबई या दिल्ली जाने पर हिन्दी क्षेत्र के दूसरे जनपदों के लोगों

से हिन्दी में बात करता है। हिन्दी क्षेत्र में बोलियों के पुनरुत्थान के से कभी –कभी हिन्दी वर्चस्व की कल्पना की जाती है और अलगाववाद प्रदर्शित किया जाता है, जबकि हिन्दी ने औपनिवेशिक काल में बड़ा संघर्ष करके अपनी एक राष्ट्रीय जगह बनाई है। अभी भी उसके विकास के मार्ग़ में रुकावटें और समस्याएं नहीं हैं।

हिन्दी का तेजी से विकसित होता हुआ एक मानक रूप खड़ीबोली है। इसके साथ ही हिन्दी के बोलचाल और व्यवहार के अनेक रूप हैं। हिन्दी भारत के शहरों मुंबई, कोलकाता, हैदराबाद, पोर्ट ब्लेयर और चेन्नई में अलग–अलग ढंग से बोली जाती रही है। हिन्दी के दक्खिनी हिन्दी, मुंबइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी, बाजार की हिन्दी जैसे रूप बताए गए हैं। यह मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल आदि में भी विशिष्ट रूप में बोली जाती हैं। हिन्दी के भाषिक ढांचे में उसकी विविधता और मानकता –दोनों पर काफी चर्चा हुई है। भाषावैज्ञानिकों ने इस मामले को कई दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया है, जिनमें दो दृष्टियां प्रमुख हैं –औपनिवेशिक और राष्ट्रीय। हिन्दी को अनेक भाषाओं के रूप में देखने वालों और खड़ीबोली हिन्दी को अंग्रेजी राज की निर्मिति मानने वालों का एक वर्ग है , जो जॉर्ज ग्रियर्सन के औपनिवेशिक सर्वेक्षण का अनुगामी है। इसके विपरीत हिन्दी क्षेत्र की बोलियों –भाषाओं के बीच से जातीय विकास को मान्यता देने वाले लेखक हैं, जो मुख्य रूप से रामचन्द्र शुक्ल और रामविलास शर्मा के राष्ट्रपरक भाषा –चिंतन का समर्थन करते हैं।

हिन्दी में प्रारम्भिक साहित्य इतिहासकारों ने, जिनमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रमुख हैं हिन्दी साहित्य के अंतर्गत ब्रजभाषा , अवधी और खड़ीबोली में लिखित रचनाओं को ही नहीं,बल्कि राजस्थानी, मैथिली की कृतियों को भी शामिल किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने हिन्दी को राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश की जातीय भाषा मानने का तर्क पेश किया है। भारतीय संविधान में इन प्रदेशों के निवासियों की मातृभाषा हिन्दी मान ली गयी है।

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार हिन्दी कोई एक भाषा न होकर एक भाषा परिवार का संघ है। जिसमें ब्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली आदि उपभाषाएं समान स्तर पर अवस्थित है। हिन्दी साहित्य का इतिहासकार भी यही मानते हैं। पर, जब वे आधुनिक साहित्य का इतिहास लिखने लगते हैं तब केवल खड़ीबोली पर आधारित आधुनिक परिनिष्ठत हिन्दी को ही "हिन्दी" के रूप में स्वीकार करते हैं। आज व्यावहारिक रूप में हिन्दी का अर्थ खड़ीबोली पर आधारित आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी हो गया है। बाबू भारतेंदु हरिचन्द्र का सूत्रवाक्य है 'निज भाषा उन्नति अहै सभ उन्नति को मूल'। वे भाषा की उन्नति को देश की उन्नति का मूल कारण मानते थे और इसलिए उन्होंने हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए न केवल अपनी सारी संपत्ति वरन् अपना पूरा जीवन ही अर्पित कर दिया। हिन्दी साहित्य को हर प्रकार से समृद्ध बनाने के प्रयास के साथ –साथ भारतेंदु हरिचन्द्र और उनके सहयोगी साहित्यकारों ने हिन्दी और नागरी लिपि के जन आंदोलन को गति और शक्ति प्रदान की।

आधुनिकयुग की बौद्धिकता और विचार प्रधानता के कारण भी खड़ीबोली रूप का विशेष विकास हुआ। इसी संदर्भ में भी श्री सत्यनारायण त्रिपाठी का मत है–"आधुनिक काल के प्रारंभ में एक ओर उर्दू का प्रचार था और दूसरी ओर काव्य की भाषा ब्रज थी, इसलिए खड़ीबोली को प्रारंभ में दोहरा संघर्ष करना पड़ा –बाह्य और आंतरिक। एक ओर,उसे बाहर उर्दू से संघर्ष कर पूरे क्षेत्र पर अधिकार करना पड़ा और दूसरी ओर ,घर में ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली का मुकदमा लड़ना पड़ा। बाह्य आंदोलन के मुख्य नायक स्वामी दयानंद, राजा लक्ष्मण सिंह और भारतेन्दु जी थे। भीतरी मुकदमे को खड़ीबोली के कवि और आचार्य देख रहे थे। उनमें प्रमुख पक्षधर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे।"[५] फिर भी द्विवेदी युग के अंत तक यह संघर्ष या टकराव भी समाप्त हो गया और साहित्य के गद्य –पद्य उभय रूपों में खड़ीबोली का ही एकछत्र साम्राज्य छाता चला गया। छायावाद, प्रगतिवाद आदि वादों ने उसके रूप को और भी निखारने– संवारने में अपना अंशदान किया।

निष्कर्ष

आज खड़ीबोली नामक हिन्दी का रूप ही भारत की राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर आसीन है। इसी हिन्दी भाषा में आज कविता, कहानी ,उपन्यास ,नाटक ,निबंध,आलोचना, जीवनी,यात्रा –साहित्य ,संस्मरण–साहित्य ,रिपोर्ताज इत्यादि साहित्यिक रूपों एवं विधाओं का समुचित विकास हो रहा है। इस प्रकार हिन्दी भाषा की यह पहली जय यात्रा लगभग २ हजार वर्षों के सुदीर्घ कालायाम में पसरी परिलक्षित होती है। जिस तीव्र गति से इस भाषा का विकास हो रहा है,उसे देखते हुए हिन्दी का भविष्य विशेष रूप से समुज्ज्वल प्रतीत होता है। इस प्रकार भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दौरान

भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कराने उसे सारे देश में प्रचारित करने और उसे राष्ट्रभाषा के योग्य बनाने में गांधीजी का योगदान अद्वितीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास,डॉ.बच्चन सिंह ,राधाकृष्ण प्रकाशन,२०१८,पृ. सं.१५
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास ,डॉ .नगेन्द्र ,मयूर पेपर बैक्स ,२०१३,पृ.सं .११
३. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास,डॉ.बच्चन सिंह ,राधाकृष्ण प्रकाशन,२०१८,पृ. सं.१६
४. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास,डॉ.बच्चन सिंह ,राधाकृष्ण प्रकाशन,२०१८,पृ. सं.१६
५. हिन्दी भाषा का इतिहास,डॉ.कृष्ण भावुक ,अशोक प्रकाशन,१९९७,पृ.सं.६
६. हिन्दी साहित्य ज्ञानकोश ,प्रधान संपादक– शभुनाथ भारतीय भाषा परिषद,२०१६
७. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ,मद्रास शतमानोत्सव स्मारिका १९१८–२०१८

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 January 2021 Page No. : 126-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी और आर्य समाज

शालिनी लोढी

आर्य समाज की स्थापना से पूर्व हिन्दी भाषा की स्थिति :-

16वीं श्ताब्दी के प्रारंभ से ही मुगल शासकों के शासन काल के दौरान शासन व न्याय क्षेत्र में फारसी भाषा का प्रयोग होता चला आ रहा था अंग्रेजी शासन के दौरान सन् 1836 ई. में क्लार्कों की प्राप्ति और कामकाज किसी सुविधा की दृष्टि से कार्यालयों की भाषा हिन्दी कर दी किन्तु उर्दू भाषा समर्थकों के विरोध से सन् 1837 ई. में उसके स्थान पर उर्दू कर दी गई। उर्दू पठित व्यक्ति आदर पात्र थे। अतः जीवन निर्वाहर्थ जनता को उर्दू भाषा सीखनी होती थी, जिससे हिन्दी भाषा उन्नति में बाधा आई। पाठषालाओं में हिन्दी के प्रयोग पर पुनः विवाद उत्पन्न हुआ। पेरिस विष्वविद्यालय के हिन्दी और उर्दू के प्राध्यापक गासी द तासी ने इसका समर्थन किया 'हिन्दी में हिन्दू धर्म का आभास' कहते हूए धर्मान्धता का परिचय दिया। इसी समय एम.एस. हैवेल जा तत्कालीन सयुक्त प्रांत के षिक्षा विभाग के अध यक्ष थे ने ''भद्दी बोली हिन्दी को उर्दू के सामने सिर झुकाना पड़ेगा।'' वाक्य से उर्दू का पक्ष लिया। सर गिलाकईस्ट और सर सैयद खां हिन्दी को गवारू भाषा कहने लगें । हिन्दी में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का प्रयोग सामान्य बात थी । भारतेन्दु हरिषचन्द्र आदि के नाटकों में पद्य भाग ब्रजभाषा में और गद्य भाग खड़ी बोली में है। उर्दू हिमायती इस विसंगति का उपहास करते हुए कहते थे ''उर्दू के गद्य और पद्य की भाषा एक हैं, वह गौरव हिन्दी को प्राप्त नहीं है। भारत सरकार की सूचना ''ऐसी भाषा का जानना सब विद्यार्थियों के लिए आवष्यक ठहराना,जो मुल्क की सरकारी और कार्यालयी भाष नहीं है। हमारी राय में ठीक नही हैं। इसके सिवाय मुसलमान विद्यार्थी जिनकी संख्या देहली कॉलेज में बड़ी है। उचित दृष्टि से नही देखेगें। मुस्लिमों व अंग्रेजों ने षिक्षत हिन्दू जनता के मस्तिष्क पर एकेष्वरवाद का प्रभाव जमा दिया और उसकी ओट में अपने धर्म और भाषा का प्रचार कर रहे थे। तात्कालीन वातावरण हिन्दी के नितान्त विपरीत था। ऐसे समय में स्वामी दयानंद जी ने हिन्दी भाषा को 'आर्य भाषा' के गरिमामय षब्द से सम्मानित किया। संस्कृत के प्रकाण्ड पंड़ित,गुजराती प्रांत में जन्में स्वामी जी जिनकी षिक्षा–दीक्षा संस्कृत भाषा में हुई थी। महर्षि दयानंद जी ने सन् 1873 में बाबू केषवचंद सेन के परामर्ष से जन भाषा हिन्दी को अपनाया। विष्णु प्रभाकर ने लिखाः–मथुरा के प्रज्ञाचक्षु दण्डी विरजानंद के बाद बंगाल के महापुरूष ने ही स्वामी दयानंद की शक्ति और क्षमता का सही आकलंन किया। वह क्षण निश्चिय ही हिन्दी भाषा के इतिहास में स्वणाक्षरों में लिखा जा चुका हें। जब एक बंगला भाषा–भाषी के आग्रह पर एक गुजरती भाषा–भाषी ने प्रचलित लोक भाषा में बोलना और लिखना स्वीकार किया।

आर्य समाजी संस्थाओं द्वारा हिन्दी प्रचारः-

स्वामी दयानंद जी ने सत्यार्थ प्रकाश की रचना भी हिन्दी में की और अपने अनुयायियों को हिन्दर को अपनाने के लिए प्रेरित किया। महाकवि निराली जी ने लिखा हैः–'आज जो जागरण भारत में दीख पड़ता है उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्यसमाज को है। राष्ट्र भाषा हिन्दी के भी स्वामी जी एक प्रवर्तक हैं। आर्य समाज की स्थापना के साथ ही उसकी अनेक संस्थाएं खुलने लगी। स्वामी जी के जीवन काल में मुम्बई,लाहौर, मेरठ,आदि अनेक आर्यसमाजें स्थापित हुई। संगठन सूत्र को आबध्द करने के लिए प्रांतीय आर्य समाज संस्थाओं की स्थापना की पंजाब संयुक्त प्रांत (उ.प्र.),सन् 1886, राजस्थान, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, मुंबई, सिध हैदराबाद, मॉरिशस सन् 1920, पूर्वी, अफ्रीका, सन् 1920 में भी प्रांतीय आर्य समाज आर्य प्रतिनिधि सभा की सथापना हुई। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा जिसकी स्थापना 1914 में हुई। सभी प्रांतीय सभायें उसके अन्तर्गत हो गई। डॉ. लक्ष्मीनायारण ने लिखा–'समस्त उत्तर भारत में हिन्दी की प्रसिधि

द ओर प्रचार क श्रेय इन्ही संस्थाओं को हैं। परोपकारिणी सभा अजमेर की स्थापना स्वामी जी में की थी। उन्होंने स्वीकार पत्र में 14 नियमों में से प्रथम दो उद्देश्यों में तो हिन्दी की सेवा सपष्ट रूप व्यक्त की है। स्वामी जी द्वारा लिखित सभी ग्रंथ यही मुद्रित होते थे। आग्रमिार सभायें सैंकड़ों की संख्या में स्थापित थी। जिनके 7,8,,11वें नियम हिन्दी प्रसार से संबंधित है। 11वां नियम हिन्दी भाषा ओर नागरी लिपि के प्रचार की आज्ञा देते है। 7,8वें नियम से भी हिन्दी सेवा होती थी ,क्योकि वाद–विवाद, व्याख्यान, निबंध लेखन एवं धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय हिन्दी में ही होता हें। अगस्त 1882 में लाहौर आर्य समाज द्वारा आर्य उपदेशक मण्डली की स्थापना की गयी। इन मण्डलियों द्वारा ईसाई मत का खण्डन तथा वैदिक धर्म निरूपण के उपदेश बाजारों, मुहल्लो, चौकों पर दिये जाते थे। जिनकी भाषा शैली हिन्दी थी।

वक्ताओं द्वारा हिन्दी प्रचार

आर्य समाज ने सवामी भावनी लाल दयाल संयासी, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, स्वामी श्रद्धानंद ,लाला लाजपत राय जैसे अनेक हिन्दी के प्रतिभाशाली वक्ता दिये हैं। स्वामी श्रद्धानंद अपने समय के सर्वश्रेष्ठ मास ऑरेटरों में से थे। लाला लाजपत राय तो वाणी के जादूगर थे। ये आर्य समाजी वक्ता आग्रहपूर्वक हिन्दी में ही व्याख्यान दिया करते थे। कांग्रेस के इतिहास में सन् 1919 ईं. में अमृत कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानंद कर व्याख्यान भी हिन्दी का प्रथम व्याख्यान था। सन्1919 यूरोप की भूमि से रेडियो पर प्रथम हिन्दी व्याख्यान स्वामी सत्यदेव परिवाजक ने जर्मन रेडियो पर दिया था। स्वामी दयानंद सरस्वती के समान उनके अनुयायियों भी तीक्ष्ण भाषण शैली के धनी थे। इन वक्ताओं के भाषणों से हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार का मार्ग प्रस्तुत किया और हिन्दी भाषा बोलने वालों की संख्या में वृद्धि प्रतिदिन बढ़ती चली गयी। स्वामी दयानंद ने 1882–83 में उदयुर के महाराज सज्जन सिंह का हिन्दी में उपदेश दिए। जिसकी प्रेरणा से महाराजा ने राज्य में नागरी लिपि एवं सरल हिन्दी भाषा में कार्यालयों में कार्य करने का आदेश दिया। स्वामी दयानंद अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थें, मैडम ब्लावटस्की के अनुसार ''शंकराचार्य के बाद भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नही हुआ जो उनसे तेजस्वी वक्ता हो।'' स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने अपना पहला हिन्दी भाषण सन् 1874 ई. में काशी में दिया।

शास्त्रार्थ द्वारा हिन्दी प्रचारः-

स्वामी दयानंद सरस्वती जी शास्त्रार्थ को धर्म प्रचार का साधन बनाए हुए थे। हिन्दी भाषा अपनाने के बाद उनके सभी शास्त्रार्थ हिन्दी में हुए जिनमें चाँदपुर मेले में धर्म चर्चा, मौलवी हुसैन और पादरी स्कॉट से शास्त्रार्थ 1879 ई. आदि प्रमुख थें। जिससे स्वामी जी की भाषा में निखार आया। आगे चलकर आर्य समाजियों द्वारा भी शास्त्रार्थ हिन्दी में किए–जिनमे पंड़ित लेखराम, स्वामी दर्शनानंद, पं. बुद्धदेव विद्यालंकर, पं. रूद्रदत्त शर्मा, जैसे महारथी आर्यसमाज में जन्में। इन शास्त्रार्थ से तत्वबागध के साथ हिन्दी का हित हुआ। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा–इन वाद–विवाद ने भाषा को बहुत समृद्ध किया और प्रौढता प्रदान करने में बड़ी सहायता पहुँचायी।

आर्य समाज का वार्षिकोत्सव व हिन्दी प्रचार

वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप के प्रतिपादन एवं प्रसार के लिए आर्य समाज की स्थापना के साथ वार्षिकोत्सव की परम्परा प्रारंभ हो गई थी जिसमें न केवल स्थानीय लोग अपितु दूर–दूर से लोग बहुत बड़ी संख्या में आते थे। मेरठ के आर्य समाज के पांचवें वार्षिकोत्सव का वर्णन डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकर के अनुसार–लाहौर, रूड़की, सहारनपुर, फर्रूखाबाद, शाहजहांपुर, मथुरा, मुजफ्फरपुर नगर, परीक्षितगढ़ और बरेली के आर्य सभा सदों ने इसकी शोभा बढ़ायी। सरकारी अफसर, वकील, डॉक्टर आदि वर्गों के लोगों को कृतार्थ किया। आर्य समाज के इन वार्षिकोत्सवों की कार्यवाही हिन्दी में होती थी। इससे दूर–दराज तक हिन्दी जानने वालों की संख्या बढ़ती चली गईं।

आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाएं, मुद्रणालय और हिन्दी प्रसार

भारतेन्दु की पत्रिका 'कवि वचन सुधा' में भारतीय नवोदय के अग्रदूत दयानंद जी को लिखा करते थें। मेरठ में 1878 ई. में 'आर्य समाज'पत्रिका का प्रकाशन स्वामी जी के समय में हुआ। फरूखाबाद से प्रकाशित 'भारत कुदशा' का नाम बदलकर दयानंद जी ने 'भारत सुदशा' प्रवर्तक कर उसका सम्पादन किया। 1880ई. को लक्ष्मीकुण्ड़ विजयनगराधिपति के उद्यानगृह की दत पर वैदिक यंत्रालय की स्थापना की। सन् 1881 ई. में 'देश हैतेषी' मासिक

पत्रिका का प्रकाशन हुआ। शहाजहांपुर से निकलने वाला 'आर्य दर्पण' 1870, उनकी प्रेरणा का फल था। आर्य समाज ने अपने धर्म प्रचार का माध्यम पत्र–पत्रिकाओं को बनया। जिनकी भाषा शैली मुख्यतः हिन्दी होती थी। सन् 1822 में लाला रत्नचन्द्र बेरी द्वारा 'आर्य मैग्जीन' नामक मासिक पत्र का संपादन प्रारंभ हुआ। 'रीजेनरेटर ऑफ आर्यावर्त' और देशोपकारा पत्रिकायें प्रकाशित हुई। इन पत्रिकाओं के प्रकाशन में लाला लाजपत राय, लाला हंसराज, लाला शिवनाथ और पण्डित गुरूदत्त प्रमुख रहें। जिनमें निरंतर वृद्धि होती रही। सार्वजनिक आर्य प्रतिनिधि सभा, परोपकारिणी सभा के निजी मुद्रणालय और मुखपत्र है। इन संस्थाओं के अनुसंधान एवं प्रकाशन विभागों द्वारा प्रतिवर्ष अनेक पुस्तकें तथा विज्ञाप्तियां प्रकाशित की जाती रही है। भारत वर्षीय आर्यकुमार परिषद् आदि संस्थायें हिन्दी माध्यम से धार्मिक परीक्षायें लेती हैं, जिसमें प्रतिवर्ष हजारों विद्यार्थी सम्मिलित होते है। अन्य पत्रिकाओं में मासिक 'आर्यभूषण' 1876 ई., साप्ताहिक 'वेद प्रकाश' कानपुर 1884, 'आर्य सिद्धांत; प्रयाग 1887 ई., साप्ताहिक 'आर्य मित्र' 1897 ई.', 'भारतोदय' 1909 ई. इन पत्रों का साहित्यिक दृष्टि से भी महत्व हैं। आर्य समाज के इन प्रचार साधनों के कारण हिन्दी के प्रचार में सहायता मिली है। आर्य समाज की हिन्दी पत्रकारिता ने हिन्दी प्रचार–प्रसार में बहुमूल्य योगदान दिया है।

स्त्री शिक्षा और हिन्दी भाषा का विस्तार

आर्य समाज के प्रवर्तक दयानंद सरस्वती के कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने तक भारतीय समाज में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार नही था और यहीं सिध्दांत सर्वमान्य था। महर्षि दयानंद ने अथर्ववेद के 11–5–18, युजर्वेद के 16/2 मंत्रों आदि वैदिक प्रमाणों का समर्थन किया। शतपथ ब्राह्मण और वृहदाराण्यक उपनिषद् में वर्णित गर्गी का राजा जनक की सभा में सुप्रसिद्ध विद्ववान यज्ञवल्क्य जी के साथ शास्त्रार्थ हुआ। कैकेयी आदि स्त्रियों धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या में पारंगत होकर पति के साथ युद्ध में भाग लेती थी। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने बालकों का गुरूकुल खोलने से एक दशक पहले वैदिक आदर्शों के अनुसार कन्याओं को आर्य संस्कृति की शिक्षा देने के लिए कन्या महाविद्यालय जालंधार की स्थापना की। प्रो.हरिदत्त वेदांलकर के अनुसार– यह स्त्री शिक्षा का बड़ा क्रांतिकारी और साहसिक पग था। महर्षि दयानंद और गृहोपयोगी कलाओं के सिखाने के पक्षधर थे। कन्या गुरूकुल और पुत्री पाठशालाओं के द्वारा स्त्री शिक्षा का कार्य किया जाता है। कन्या गुरूकुल देहरादून, उत्तरप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बिहार, पंजाब, लाहौर आदि सभी राज्यों में अनेक कन्या महाविद्यालय व कन्या गुरूकुल की स्थापना होती रही जो वर्तमान में भी कार्यशील है। आर्य समाज द्वारा प्रचारित स्त्री शिक्षा के कारण पुरुषों में भी हिन्दी का प्रचार बढ़ा। इसी दृष्टि से लाला हरदयाल ने लिखा–''जितने विद्यार्थी दूर–दूर जायेंगे,उतना ही हिन्दी का प्रचार अधिक होगा। प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर ने पत्नी का पत्र पढ़ने के लिए हिन्दी सीखीं। श्री हरिवंश राय बच्चन ने आर्य कन्या पाठशाला में पढ़ी हुईं अपनी बहनों से सर्वप्रथम हिन्दी सीखी थी। स्त्री शिक्षा के कारण महिला उपयोगी पत्र–पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई। सन् 1919 ई. में दिल्ली से 'विजय' दैनिक पत्र निकला। राय बहादुर तक की पत्नियां उनको घर मे प्रवेश तक नहीं देती थी जब तक हाथ में 'विजय' का पर्चा न हों।

आर्य समाज द्वारा न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग

सन् 1900 ई. उत्तर प्रदेश के न्यायालयों को उर्दू के साथ हिन्दी को भी स्थान मिल गया। इसके बावजूद भी न्यायाधीश अपना निर्णय हिन्दी में देते थे। इस संबंध में महात्मा मुंशीराम (पश्चात् स्वामी श्रद्धानंद) ने 3 मई 1913 ई. के 'सद्धर्म प्रचारक' में सर एंटनी मैकडानल्ड को स्मरण किया था, जिनका कृपा से आर्य भाषा व देवनागरी अक्षरों को न्यायालयों में कुछ स्थान मिला। तथापि संयुक्त प्रांत आधुनिक उत्तर प्रदेश में देवनागरी अक्षरों में लिखित प्रार्थना पत्रादि लिये जाने तथा समन जारी होने की प्रथा भी प्रचलित कर दी किन्तु न्यायालय के अहलकरों ने मनमानी की और हिन्दी के छपे फॉर्म के अवशिष्ट स्थानों को उर्दू में भरने लगे। (मुंशीराम) मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि बेचारी देवनागरी जिन भारत भूषणें को अपना एक मात्र सहारा समझती है, उनकी सहानुभूति मातृभाषा के साथ कथन मात्र ही प्रतीत होती है। महात्मा मुंशीराम न्यायालय में हिन्दी प्रचलित हेतु उत्सुक थे और लगातार प्रयत्न करते रहें। रायसाहब बाबू मदनमोहन सेठ पुराने आर्य समाजी थे, जिन्होंने न्यायालय में हिन्दी के प्रयोग में बड़ी निर्भीकता और साहस का काम किया। वे हिन्दी के देवनागरी अक्षरों में ही साक्षियों के बयान लेते थे। स्थानान्तरण, चेतावनी, सब सहन कियें। सन् 1961 को ''प्रकाशवीर शास्त्री न देवनागरी को देश की सामान्य लिपि स्वीकार कराने व नागरी लिपि की लोकप्रियता एवं शुद्धता के संबंध में संसद में प्रस्ताव रखा। किन्हीं करणों वश यह प्रस्ताव पास न हा सका, परन्तु अधिकांश सदस्यों की रूचि हिन्दी के उज्जवल भविष्य की परिचायक थी, शास्त्री जी द्वारा 113 संसद सदस्यों से व्रत–पत्र भरवायें, इसके अनुसार

सदस्यों को अनिवार्य परिस्थितियों को छोड़कर हिन्दी में ही भाषण देने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी भाषा शैली का प्रचार किया।

विमानों में हिन्दी का प्रयोग

पर्यटन एवे आवागमन के लिए प्रतिदिन हजारों व्यक्ति विमानों से यात्रा करते थे। विमान के परिचायक और परिचायिकायें अंग्रेजी में ही अभिवादन और वार्तालाप करती थी। सार्वदेशिक सभा के मंत्री लाला रामगोपाल शालवालों ने पर्यटन मंत्री डॉ. कर्णसिंह को इस संबंध में पत्र हिन्दी इच्छुक व्यक्ति से हिन्दी में बातचीत करने के निर्देश दिये गयें। विमानों से की जाने वाली घोषणएं हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में की जाती थी। इस प्रकार हिन्दी के प्रचार में सहायता मिलीं।

आर्य समाज द्वारा विदेशों में हिन्दी प्रचार व प्रसार

प्राचीन काल में भारतीयों ने सांस्कृतिक दिग्विजय करके वृहत्तर भारत का निर्माण किया था। किन्तु आधुनिक वृहत्तर भारत की दासता के परिणामस्वरूप बना। सन् 1933 ई. में उपनिवेशों में वसने वाले भारतवासियों में हिन्दी का प्रसार करने का श्रेय भी आर्य समाज को ही हैं–

1. मॉरिशस – भारत के अतिरिक्त विश्व में मॉरीशस ही एकमात्र ऐसा देश है जिसे हिन्दी भाषा–भाषी कहा जा सकता है,यह स्थिति आर्य समाज का ही परिणाम है। सन् 1920 ई. में यहां 75 हिन्दी विद्यालय आर्य समाज द्वारा चलाये जा रहें थे, वर्तमान में इनकी संख्या 300 से भी अधिक हो गयी है। हिन्दी भाषा विकास में मोती मास्टर, श्येमलाल, मणिक लाल, डॉ. भरद्वाज, डॉ. चिरंजीव भारद्वाज, पं. आत्माराम विश्वनाथ आदि का योगदान सराहनीय हैं। पं. आत्माराम जी का हिन्दी में लिखित 'मॉरिशस का इतिहास', 'आर्य पत्रिका', 'हिन्दुस्तान प्रेस' मुद्रणालय, 'वैदिक जनरल'आदि पत्र–पत्रिकाओं ने हिन्दी भाषा का विकास किया।

2. दक्षिण अफ्रीका – 1860 ई. से दक्षिण अफ्रीका आज तक हिन्दी भाषा कायम है। हिन्दी शिक्षा संघ और आर्यसमाज के प्रयत्नों से दक्षिण अफ्रीका के सरकारी शिक्षणालयों में हिन्दी को स्थान मिलना प्रारंभ हो गया, नेशनल सीनिया सर्टिफिकेट की परीक्षा के पाठ्यक्रम में हिन्दी को अत्यतम विषय के रूप में स्थान दिया गया। डरबन वेस्टबील यूर्निवर्सिटी के बी.ए. के पाठ्यक्रम में भी हिन्दी व्यवस्था हैं। श्री भवानी लाल संन्यासी जी सन् 1913–1941 तक दक्षिण अफ्रीका मे रहें। उनके प्रयत्न से सन् 1915 में नेटाल में, 1916 को लेडीस्मिथ में,1917 को पीटर मेरित्सवर्ग में हिन्दी सम्मलेन किए। जिससे जनता में हिन्दी प्रेम व उत्साह उत्पन्न करने में सहायता मिली।

3. पूर्वी अफ्रीका – सन् 1908 में नौरोबी में हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाली कन्या पाठ्यशाला की स्थापना आर्य समाज की देन हैं। पं.सत्यापाल का हिन्दी प्रचार के त्याग और तप सराहनीय है। जंजीबार आर्य समाज ने आर्यपुत्री पाठ्यशाला, व्यायामशाला, पुस्तकालय स्थापित किए थे। रेहोडेशिया के अन्यतम नगर बुलावादी में शिक्षण संस्था स्थापित हुई। उषर्बुध जी के पत्र के अनुसार –नैरोबी में कन्या पाठ्यशाला है जिनकी संख्या 1400 है,जिनका शिक्षण कार्य हिन्दी में होता है।

4. फिजी – सन् 1916 मे आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई,1929 में नसोवा मे कन्या गुरूकुल स्थापित किया। श्री अमीचंद्र विद्यालंकर ने 35 वर्ष रहकर हिन्दी की अविथरणीय सेवा की ।

5. सूरीनाम – सन् 1929 में श्री मेहता जैमिनी जी ,पं. सत्याचरण ने वहां प्रचार किया। 'भारतोदय' नामक सभा बनाई। इनके माध्यम से दक्षिण अमेरिका के इस देश में भी हिन्दी भली–भांति फूल रही हैं।

निष्कर्षः– स्वामी जी हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के पद पर आसानी देखन चाहते थे। हिन्दी भाषा के प्रति जा जागरण भारत मे दिखाई पड़ता है, उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्य समाज को हैं आर्य समाज के माध्यम से ज्ञानमूलक और रसात्मक दोनों प्रकार के वाड़.मय की अभूतपूर्व अभिवृद्धि हुई। आर्य समाज का हिन्दी प्रचार का कार्य देश की सीमाओं में ही आबद्ध न रहा बल्कि मॉरिशस, नैरोबी, सूरीनाम, गयाना आदि में हिन्दी का प्रचार किया। आर्य समाज की प्रत्येक संस्थाओं, पत्र–पत्रिकाओं वर्तमान में भी हिन्दी सेवा एवं उन्नति में संलग्न है। दयानंद एंग्लोवैदिक कॉलेजों, कन्या गुरूकुलों, स्त्री शिक्षा ने भी हिन्दी भाषा के प्रचार में योगदान दिया। आर्य समाजी विद्वानों और नेताओं ने अनेक हिन्दी सेवी संस्थाओं को स्थापित करने और चलाने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। आर्य समाज के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष दोनों प्रभावों द्वारा हिन्दी को एक सुधारवादी जन आंदोलन की भूमिका प्राप्त हुईं हैं।

संदर्भ सूची

आचार्य रामचंद शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास,1929, पृष्ठ संख्या 435।
डॉ. लक्ष्मी नारायण गुप्त, हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन,संवत् 2018 विक्रम पृष्ठ संख्या 56।
श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, महर्षि दयानंद सरस्वती का जीवन चरित, पृष्ठ संख्या 227।
श्री विष्णु प्रभाकर माचवे, स्वामी दयानंद सरस्वती–भारतीय साहित्य के निर्माता, 1988, पृष्ठ संख्या 08।
सत्यदेव विद्यालंकर, स्वामी श्रद्धानंद, 1933, पृष्ठ संख्या 434।
महर्षि दयानंद,सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, स्वामी वेदानंद का संस्करण पृष्ठ संख्या 228।
डॉ. सत्यकेतु, आर्य समाज का इतिहास, 1990 पृष्ठ संख्या 230।
लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य 1854, पृष्ठ संख्या 116

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
January 2021 Page No. : 131-132

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि दयानन्द सरस्वती का हिंदी साहित्य में योगदान

नीतू कुमारी
एम. फिल, नेट, पी एच डी, शोध छात्रा
मोबाइल नं. 9065952292
Email - nitukashyap1207@gmil.com

प्राचीन काल से ही हमारे भारतवर्ष में अनेक महापुरुष हुए हैं और उन महापुरुषों ने भारतवर्ष में अपना आदित्य योगदान भी दिया है। उन्हीं महापुरुषों में एक स्वामी दयानंद सरस्वती हैं। जिनका जन्म 14 फरवरी 1825 को गुजरात राज्य के राजकोट जनपद में हुआ था। उनकी मातृ भाषा स्वाभाविक रूप से गुजराती थी। उनका अध्ययन अध्यापन संस्कृत में हुआ था। इसी कारण वे संस्कृत में ही वार्तालाप, व्याख्यान, लेखन, शास्त्रार्थ शंका, समाधान आदि किया करते थे।

गुजरात उत्तर प्रदेश और पंजाब में आर्यसमाज का प्रभाव था। सन् 1867 ई. में दयानंद सरस्वती ने मुंबई में आर्यसमाज की स्थापना की, दयानंद असाधारण व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व अतिशय संकलपित और समझौतावादी था। उनके विचारों में कहीं भी अस्पष्टता और रहस्यवादिता नहीं मिलती थी। उन्होंने आर्य समाज लिए वेदों को आधार माना, उनके अनुसार वेद अपॉरुषेय हैं और वैदिक धर्म ही सत्य और सार्वभौम है।

सामाजिक और नैतिक मूल्यों को देखते हुए आर्य समाज ने एक आचार संहिता बनाई थी। इसमें जाति–भेद और मनुष्य–मनुष्य, स्त्री–पुरुष में असमानता के लिए कोई स्थान नहीं था। इनकी दृष्टि लोकतांत्रिक थी। भारतवर्ष के इतिहास में महर्षि दयानंद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के लिए हिंदी को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जान कर मन,वचन व कर्म से इसका प्रचार प्रसार किया। उनके द्वारा किए गए प्रयासों का ही परिणाम था कि हिंदी जिसे स्वामी दयानंद जी ने आर्यभाषा का नाम दिया। शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। स्वतंत्रता के बाद भारत संविधान सभा द्वारा 14 सितंबर 1947 को सर्वसम्मति से हिंदी को राजभाषा स्वीकार किया जाना उन्हीं के 77 वर्ष पूर्व आरंभ किए गए कार्यों का ही सुपरिणाम था।

प्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर हमारे राष्ट्रीय जीवन के अनेक पहलुओं पर स्वामी दयानंद का अक्षुण प्रभाव स्वीकार करके हिंदी पर साम्राज्यवादी होने के आरोपों को अस्वीकार करते हैं। और कहते हैं कि, यदि साम्राज्यवाद शब्द का हिंदी वालों पर कुछ प्रभाव है, भी तो उसका सारा दोष अहिंदी भाषियों का है। इन हिंदी भाषियों का अग्रणीये स्वामी दयानंद को मानते हैं। और लिखते हैं कि, इसके लिए उन्हें प्रेरित भी किसी हिंदीभाषी ने नहीं अपितु एक बंगाली सज्जन श्री केशव चंद ने किया था।

16 दिसंबर 1872 को स्वामी जी वैदिक मान्यताओं के प्रचारार्थ भारत की तत्कालीन राजधानी कोलकाता पहुंचे थे और वहां उन्होंने अनेकों सभाओं में व्याख्यान दिए। ऐसे ही एक सभा में स्वामी दयानंद के संस्त भाषण का बंगला में अनुवाद गवर्नमेंट संस्त कॉलेज कोलकाता के उपाचार्य पंडित महेशचंद्र न्यायरत्न कर रहे थे। दुभाषिये वा अनुवादक का धर्म वक्ता के आशय को स्पष्ट करना होता है परंतु श्री न्याय रत्न महाशय ने स्वामी जी के वक्तव्य को अनेक स्थानों पर व्याख्यान को अनुदित ना करके अपनी उनसे विपरीत मान्यताओं को सम्मिलित कर वक्ता के आशय के विपरीत प्रकट किया। जिससे व्याख्यान में उपस्थित संस्त कॉलेज के छात्रों ने उनका विरोध किया। विरोध के कारण न्यायरतन बीच में ही सभा छोड़ कर चले गए थे। प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी नेता श्री केशव चंद्र सेन भी इस सभा में उपस्थित थे बाद में इस घटना का विवेचन कर उन्होंने सुझाव दिया कि वह संस्कृत के स्थान पर लोक भाषा हिंदी को अपनाये। दयानंद जी

ने सुझाव स्वीकार कर लिया, एक 48 वर्षीय गुजराती मातृभाषा के संस्कृत के विद्वान ने हिंदी को अपना लिया। इसके पश्चात स्वामी जी ने जो प्रवचन किए उनमें वह हिंदी का ही प्रयोग करने लगे।

सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी की प्रसिद्ध रचना है, जो देश विदेश में 139 वर्षों से उत्सुकता एवं श्रद्धा से पढ़ी जाती है। फरवरी अट्ठारह सौ बहत्तर में हिंदी को स्वीकार करने के लगभग 2 वर्ष पश्चात ही स्वामी जी ने 2 जून 1874 को उदयपुर में इसका प्रणयन आरंभ किया और लगभग 3 महीनों में पूरा कर डाला। सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात वेदों एवं वैदिक सिद्धांतों के प्रचारार्थ स्वामी जी ने अनेक ग्रंथ लिखे जो सभी हिंदी में है। उनके ग्रंथ उनके जीवनकाल में ही देश की सीमा पार कर विदेशों में भी लोकप्रिय हुए। प्रोफेसर मैक्समूलर ने स्वामी दयानंद की पुस्तक 'ऋग्वेदादिभास्य भूमिका' पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा कि वैदिक साहित्य का आरंभ ऋग्वेद से एवं अंत स्वामी जी की, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर होता है। स्वामी दयानंद के सत्यार्थ प्रकाश एवं अन्य ग्रंथों को इस बात का गौरव प्राप्त है, कि धर्म दर्शन एवं संस्कृति जैसे क्लिष्ट विषय को सर्वप्रथम उनके द्वारा हिंदी में प्रस्तुत कर सर्वजनसुलभ किया। जबकि इससे पूर्व इस पर संस्कृत निषनात ब्राह्मण का ही अधिकार था जिसने इन्हें संकुचित कर दिया था। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका संस्कृत हिंदी दोनों भाषाओं में हैं।

आर्य समाज ने हिंदी के उपन्यासकार, साहित्यकार, गद्य, काव्य लेखक और नाटककार को उत्पन्न किया जो आर्य समाज के धार्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय विचारों को कलात्मक ढंग से अपनी रचनाओं द्वारा जनता तक पहुँचाएं। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ग्रंथ में स्वामी दयानंद जी ने लिखा है कि, जो व्यक्ति जिस देश भाषा को पड़ता है उसका उसी का संस्कार होता है अंग्रेजी या अन्यदेशीय भाषा का व्यक्ति सत्य, ज्ञान व विज्ञान पर आधारित विश्वसनीय वैदिक संस्कृति से सर्वथा दूर देखा जाता है। उन्होंने कहा भी है, वेदों की ओर लौटो।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी व संस्कृत के स्थान पर अन्य देशीय भाषाओं को पढ़ने से मनुष्य वैदिक संस्कारों के स्थान पर उन देशों के संस्कारों से प्रभावित होता है। इसलिए आर्य समाज ने हिंदी एवं साहित्य के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इनके द्वारा हिंदीभाषा को नई दिशा और तीव्र गति मिली तथा राष्ट्रीयता, अध्यात्मिकता एवं सांस्कृतिकता का विकास व्यापक पैमाने पर हुआ। आज भी आर्य समाज हिंदी भाषी के विकास एवं संवर्धन के लिए पथ प्रदर्शक की भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1) महाकवि निराला लेख, महर्षि दयानंद और युगांतर ग्रंथ ,पृष्ठ संख्या –9
2) कमलापति त्रिपाठी पत्र और पत्रकार, पृष्ठ संख्या –13
3) सत्यदेव विद्यालंकार समाचार पत्र सूची की प्रस्तावना, पृष्ठ संख्या –6

❐❐❐